प्राइमरी शिक्षक

८ अंक १ जनवरी १९८३

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का अभीष्ट केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित आधिकारिक जानकारी को शिक्षकों और सम्बद्ध प्रशासकों तक पहुँचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रों में चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय-समय पर इसमें सूचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। शिक्षा-जगत में होने वाली हलचलों पर विचार-विमर्श करने के लिए यह एक मंच का भी काम करती है।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ हैं :

(१) प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित शैक्षिक नीतियाँ
(२) प्रश्न और उत्तर
(३) राज्यों के शैक्षिक समाचार
(४) कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री

एक प्रति का मूल्य एक रुपया पचास पैसे और वार्षिक चन्दा मय डाक खर्च छः रुपये है।

स्कूल शिक्षकों की रचनाएँ प्रकाशनार्थ आमन्त्रित हैं। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अंग्रेजी में कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ साफ सुन्दर अक्षरों में लिखी रचना की दो प्रतियाँ भेजें।

इस पत्रिका के मुखपृष्ठ और पाठ्य-सामग्री के लिए प्रयोग किया गया कागज यूनीसेफ से भेंट में प्राप्त हुआ है।

प्रधान सम्पादक : प्रो० राजेन्द्र पाल सिंह
सहायक सम्पादक : राजकुमार गुप्त

मुख्य उत्पादन अधिकारी : प्रभाकर राव
सहायक उत्पादन अधिकारी : शिव कुमार
उत्पादन सहायक : कल्याण बनर्जी

चित्रकार : बाघ

कृपया अपना चन्दा मुख्य व्यवसाय प्रबन्धक प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली ११००१६ को भेजें।

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष ८ अंक २ अप्रैल १९८३

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित **प्राइमरी शिक्षक** एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का अभीष्ट केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित आधिकारिक जानकारी को शिक्षकों और सम्बद्ध प्रशासकों तक पहुंचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रो मे चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमो आदि के बारे मे समय-समय पर इसमे सूचनाए प्रकाशित होती रहती हे। शिक्षा-जगत मे होने वाली हलचलों पर विचार-विमर्श करने के लिए यह एक मच का भी काम करती है।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ है -

(1) प्राथमिक शिक्षा से संबधित शैक्षिक नीतिया।

(2) प्रश्न और उत्तर।

(3) राज्यो के शैक्षिक समाचार।

(4) कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री।

एक प्रति का मूल्य एक रुपया पचास पैसे और वार्षिक चन्दा मय डाक खर्च छ. रुपये है।

स्कूल शिक्षकों की रचनाए प्रकाशनार्थ आमन्त्रित है। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अग्रेजी मे कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ-साफ सुन्दर अक्षरों मे लिखी रचना की दो प्रतिया भेजे।

इस पत्रिका के मुख पृष्ठ और पाठ्य-सामग्री के लिए प्रयोग किया गया कागज यूनिसेफ से भेंट में प्राप्त हुआ है।

प्रधान सम्पादक — प्रो० राजेन्द्र पाल सिंह

सहायक सम्पादक — राज कुमार गुप्त

मुख्य उत्पादन अधिकारी — प्रभाकर राय

सहायक उत्पादन अधिकारी — शिव कुमार

उत्पादन सहायक — कल्याण बनर्जी

कृपया अपना चन्दा असिस्टेंट बिजनेस मैनेजर पत्रिका प्रभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 को भेजें।

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 8 अंक 4 अक्तूबर 1983

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का अभीष्ट केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियो से संबधित आधिकारिक जानकारी को शिक्षकों और सम्बद्ध प्रशासको तक पहुचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रो में चल रहे पाठ्यक्रमो और कार्यक्रमो आदि के बारे मे समय-समय पर इसमे सूचनाए प्रकाशित होती रहती है। शिक्षा-जगत मे होने वाली हलचलो पर विचार-विमर्श करने के लिए यह एक मच का भी काम करती है।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ है:

(1) प्राथमिक शिक्षा से सबधित शैक्षिक नीतिया।

(2) प्रश्न और उत्तर।

(3) राज्यो के शैक्षिक समाचार।

(4) कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री।

एक प्रति का मूल्य एक रुपया पचास पैसे और वार्षिक चन्दा मय डाक खर्च छ रुपये है।

स्कूल शिक्षको की रचनाए प्रकाशनार्थ आमन्त्रित है। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अग्रेजी मे कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ-साफ सुन्दर अक्षरो मे लिखी रचना की दो प्रतिया भेजें।

इस पत्रिका के मुख पृष्ठ और पाठ्य-सामग्री के लिए प्रयोग किया गया कागज यूनीसेफ से भेट मे प्राप्त हुआ है।

कृपया अपना चन्दा असिस्टेंट बिजनेस मैनेजर, पत्रिका प्रकोष्ठ, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 को भेजें।

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष ८ अंक १ जनवरी १९८३

इस अंक में

सम्पादकीय ... ३

नैतिक शिक्षा—एक अद्वितीय प्रयोग
—राजेन्द्रपाल सिह ... ४

वातावरण द्वारा विज्ञान सीखना
—ए० एलिजावेथ ... ६

प्राथमिक स्कूल के बच्चों मे आत्मनिर्भरता का विकास
—एम० एल० कौल ... ११

आदेशको का शिक्षण कब और कहा
—जे० एस० ठाकुर ... १५

लिखित अभिव्यक्ति-विभिन्न पक्ष
—इन्द्रसेन शर्मा ... १८

प्राथमिक शिक्षा का लोकव्यापीकरण
—एस० परिहार ... २४

तीसरे आयाम की खोज
—कल्याण बनर्जी ... २७

प्राथमिक विद्यालयो मे गणित का अध्यापन
—सच्चिदानन्द शर्मा ... ३०

उद्देश्य आधारित ज्ञान सामग्री क्यो और कैसे
—एस० पी० मलिक ... ३३

प्राथमिक शिक्षा को रचनात्मक बनाने के उपाय
—भवर नागदा ... ३६

सशोधन विधि

समाचार और विचार

अध्यापकों एवं शिक्षाविदों के सूचनार्थ

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

द्वारा प्रकाशित

एक त्रैमासिक पत्रिका

प्राइमरी शिक्षक

मे प्रकाशनार्थ

मौलिक, प्राथमिक स्तर पर स्कूली शिक्षा से सम्बन्धित गतिविधियों वाले लेख, नवीन प्रयोग तथा नवाचार और शिक्षकों के लिए अध्यापन सम्बन्धी शिक्षण सामग्री आमन्त्रित है। प्रत्येक प्रकाशित सामग्री पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है।

सम्पादकीय

कक्षा के नए आयाम

क्या हम बच्चो को अनिच्छा से स्कूल जाते हुए नही देखते है ? क्या हमे स्कूल से बाहर आते समय उनके चेहरे पर मुस्कान और प्रसन्नता दिखाई देती है ? शायद हम सभी ने यह देखा है और उनके इस व्यवहार को अपने परिदृश्य और सामाजिक व्यवहार के रूप मे स्वीकार कर लिया है। हमने शायद ही कभी यह महसूस किया होगा कि उनका यह आचरण हमारे द्वारा उनको दी जाने वाली शैक्षिक लहर और हमारे निम्न स्तर के स्कूलो के कारण ही है। जब हममे से कुछ को इस सम्बन्ध मे सही जानकारी ही नही है तब स्कूल जाते समय बच्चो के चेहरे पर मुस्कान देखने के लिए उचित कदम उठाने के लिए हम जागरूक नही हो सकते। इस परिवर्तन को किस प्रकार लाया जाए। यह एक बडी समस्या है। सभवत हमारे स्कूलो मे थोडा बहुत परिवर्तन करने की आवश्यकता है। उनमे पढने के लिए किताबें कम रखी जाए, याद करने के लिए काम कम दिया जाए और खेलने व दिल खोल कर हसने के लिए अधिक अवसर दिए जाए। यदि स्कूल एक अच्छा खासा खेल का मैदान बन जाए तथा क्रोधित और अनुशासित दिखाई देने वाले अध्यापक दोस्त के रूप में परिवर्तित हो जाए तो इसमे हर्ज ही क्या है। इससे एक डर यह है कि कही इस परिवर्तन मे अराजकता न फैल जाए जिससे उनकी योग्यता के विकास को बाधा पहुचे। टैगोर, गाधी, बर्ट्रेन्ड रसैल अथवा मरिआ मान्टेसरी द्वारा सचालित स्कूलो मे इस पद्धति को व्यवहार मे लाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त अब तक इन पद्धतियो को सामान्य रूप से अभिग्रहण करने के लिए कोई कार्य-प्रणाली भी नही है।

शायद हमे यह डर है कि इन अपेक्षाओ को एक साधारण अध्यापक पूरा नही कर सकता और वह अपने इस प्रयास मे असफल हो जाएगा। किसी नवीन प्रक्रिया की कोशिश मे व्याप्त असुरक्षा और भय की भावना, किसी को भी तूफानी समुद्र के अशान्त पानी मे नाव खेने की भाति रोकती है। लेकिन हम यह भूल जाते है कि प्रचलित दुर्गन्ध-युक्त और पुराना हो जाता है, इसीलिए अस्वास्थ्यकर भी। हम निश्चय ही विदित और अपनाए गए व्यवहार के परिवेश मे सुरक्षित और आत्मसन्तुष्ट रहना चाहते है। उनके अन्य व्यवहारो को भी अपना कर देखा गया, फिर हम किस प्रकार एक व्यवहार को अन्य की तुलना मे उच्च मानते है। नए दीप्तमान उज्ज्वल आचरण के हित मे हमे परपरागत आचरण से हटाने के लिए एक तकाजे की आवश्यकता है। इस सब की आवश्यकता आने वाले बच्चों के लिए है। क्या हम उनके भविष्य के लिए यह कोशिश नही करेंगे ? □
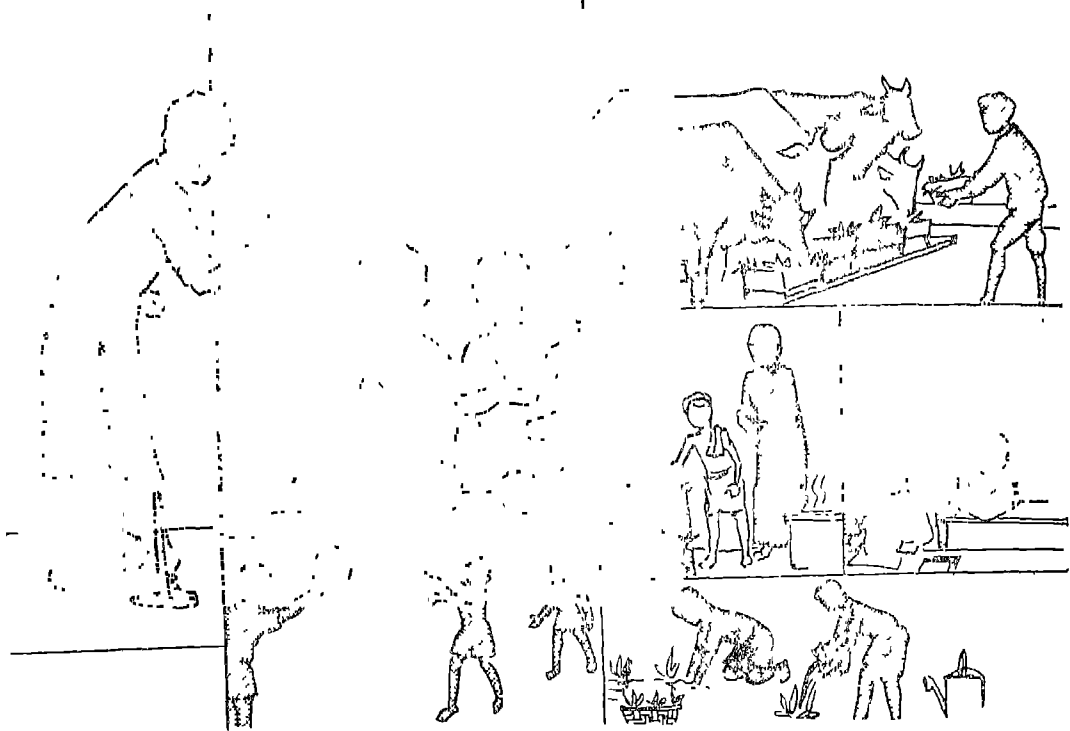
नैतिक शिक्षा—एक अद्वितीय प्रयोग

—प्रो० राजेन्द्रपाल सिंह
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्,
नई दिल्ली

ईश्वरपरक शिक्षा से भिन्न होते हुए भी नैतिक शिक्षा आधुनिक शिक्षा का एक अतिरिक्त आयाम है। सक्रामित और आत्मा को नष्ट करने वाले समसामयिक जीवन के प्रभाव के विरुद्ध कुछ कदम उठाने के लिए यकायक यूनेस्को के साथ ही विकसित और विकासशील राष्ट्र इस ओर आकर्षित हुए है। भारत अपनी धार्मिक परम्पराओ के लिए प्रसिद्ध रहा है और यही कारण है कि एक या अनेक प्रकार से सभी धर्म अपने अनुयायियो को सदाचार और भगवान से भयभीत होने वाला जीवन गुजारने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते आए है और कर रहे है। इस क्षेत्र मे किए गए प्रयोगो की पूरी जानकारी न हो, ऐसा नही है।

इस पृष्ठभूमि के विरुद्ध गुजरात के एक अनुभव मे काफी प्रसन्नता प्राप्त हुई जो कि बिल्कुल अभिनव और शिक्षाप्रद था। यह सच है कि यह प्रयोग एक साम्प्रदायिक धार्मिक अनुष्ठान मे वेशभूषा के लिए किया गया था पर यह अभी तक अन्य व्यक्तियो के अनुकरण के लिए एक पाठ है।

अद्वितीय संस्थान

प्राचीन गुरुकुलो की परम्परा मे राजकोट मे स्थापित स्वामीनारायण गुरुकुल की जूनागढ और

अहमदाबाद मे स्थित है जो कि एक अद्वितीय आवासीय प्रशिक्षण संस्थान है। अन्य स्थानों पर स्थापित अपनी अन्य संस्थाओं की भांति यह संस्था भी मठवासियों द्वारा चलाई जाती है जिनकी कुल संख्या एक स्थान पर पचास होती है। संस्था के संस्थापक का कहना था कि "शिक्षा और ज्ञान का प्रसार एक महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य है।" इसके संस्थापक श्री स्वामी-नारायण उत्तर प्रदेश के एक ब्राह्मण थे। जिनकी भगवान कृष्ण के दर्शन में गहन आस्था थी। स्वामी जी का जन्म अयोध्या में २ अप्रैल सन् १७८१ में हुआ और वह बचपन में ही तपस्या और धार्मिक अध्ययन की ओर प्रवृत्त हो गए। अपनी पैतृक सम्पत्ति के रूप में वे अपने अनुयायियों के लिए सूक्तियों में लिखी हुई एक पुस्तक छोड़ गए हैं, जो उनकी कल्पना और ज्ञान को प्रस्तुत करती है।

आजकल सभी गुरुकुल स्वामीजी के जीवन और शिक्षा से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इस ओर एक आधुनिक प्रेक्षक का ध्यान आकर्षित होता है कि किस प्रकार इस आवासीय प्रशिक्षण संस्था की सम्पूर्ण व्यवस्था मठवासियों की देखरेख में सुचारु रूप से चलती है। मठ के सहवासियों को सुबह जल्दी उठना होता है और एक साथ पूजा करनी होती है तथा सादा और कठोर वातावरण में पढ़ना, खेलना और सोना होता है। एक विवेचनात्मक प्रेक्षक को मठ का साधारण जीवन और मठवासियों की देख-रेख ही आकर्षित नहीं करती बल्कि मठ का सम्पूर्ण वातावरण भी उसे प्रभावित करता है। वे बच्चे जो मठ में ही पलते और बढ़े होकर नागरिक बनते हैं, उनके नैतिकतापूर्ण व्यवहार विशेष रूप से आकर्षण का केन्द्र होते हैं। पाठ्यक्रम और शैक्षिक सिद्धान्तों दोनों में कोई अलग व्यक्तित्व नहीं है। यह गुरुकुल गरीबों के लिए एक अन्य किसी पब्लिक स्कूल के समान ही है। किन्तु इसके बावजूद जिस प्रकार से यहां शिक्षा दी जाती है उस रूप में यह अन्य किसी संस्था से उत्तम है। यह प्रशिक्षण ही वास्तव में नैतिक शिक्षा है। वे एक साथ जीना और आज्ञा पालन करना सीखते हैं। झूठ बोलना और चोरी करने का उन्हें अवसर ही नहीं मिलता। वस्तुतः जीवन में ये आदतें सामान्य होते भी इस गुरुकुल के जीवनकाल में सहायक नहीं होती।

बच्चों को गुरुकुल में साधारण और कठोर जीवन के साथ उपयुक्त नैतिक और आध्यात्मिक प्रशिक्षण का मिश्रित रूप सही शिक्षा का वास्तविक अर्थ सीखने में मदद करता है। गुरुकुल जीवन धर्मनिरपेक्ष जीवन व्यतीत करने का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है क्योंकि यहां पर जाति, धर्म और वर्ग के आधार पर भिन्नता नहीं पाई जाती। उनके प्रवेश पत्र में उनकी जाति, धर्म और वर्ग की घोषणा को वर्जित रखा जाता है। भारत अपनी व्यवस्थित जाति और वर्ग व्यवस्था के लिए प्रसिद्ध है लेकिन इन छोटी-छोटी मान्यताओं से किस तरह ऊपर उठा जा सकता है, इसका सर्वोत्तम उदाहरण गुरुकुल प्रस्तुत करता है। गुरुकुल में होस्टल, स्कूल, पाकशाला, मुद्रणालय, एक डेरी फार्म, पशुशाला आदि की व्यवस्था है। इन सुविधाओं को उपलब्ध कराने का उत्तरदायित्व मठवासियों और वरिष्ठ छात्रों पर रहता है। इस उत्तरदायित्व को निभाने का लाभ यह होता है कि उनमें परिश्रम की गरिमा का आभास बना रहता है। इस तथ्य से सभी अवगत हैं कि आवासीय स्कूलों में एक साथ रहने से सहकारिता का जीवन व्यतीत करने में मदद मिलती है लेकिन गुरुकुल में इसके अलावा और भी लाभ प्राप्त होते हैं। इस सहकारितापूर्ण जीवन व्यतीत करने से भौतिक और आध्यात्मिक स्तर पर वृद्धि का लाभ प्राप्त होता है।

स्कूल में योगासनों को करने के अतिरिक्त प्रार्थना और एकाग्रता द्वारा बच्चों को रोग और अस्वस्थता से बचाए रखने में मदद की जाती है। इस गुरुकुल में दिया जाने वाला यह नैतिक प्रशिक्षण वास्तव में एक ऐसा प्रयोग है जिसका अन्य व्यक्तियों द्वारा अनुकरण करना चाहिए। भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी गणतंत्र के लिए यह आवश्यक है कि इस प्रयोग को विशेषकर इसके सहयोग-भाव और तनाव मुक्त सामाजिक वातावरण को व्यापक स्तर पर लागू किया जाए। आज के आधुनिक, संघर्षपूर्ण और उबाऊ जीवन में यह गुरुकुल एक अन्य प्रकार की स्कूली शिक्षा और जीवन के विकल्प का एक नमूना प्रस्तुत करता है। □
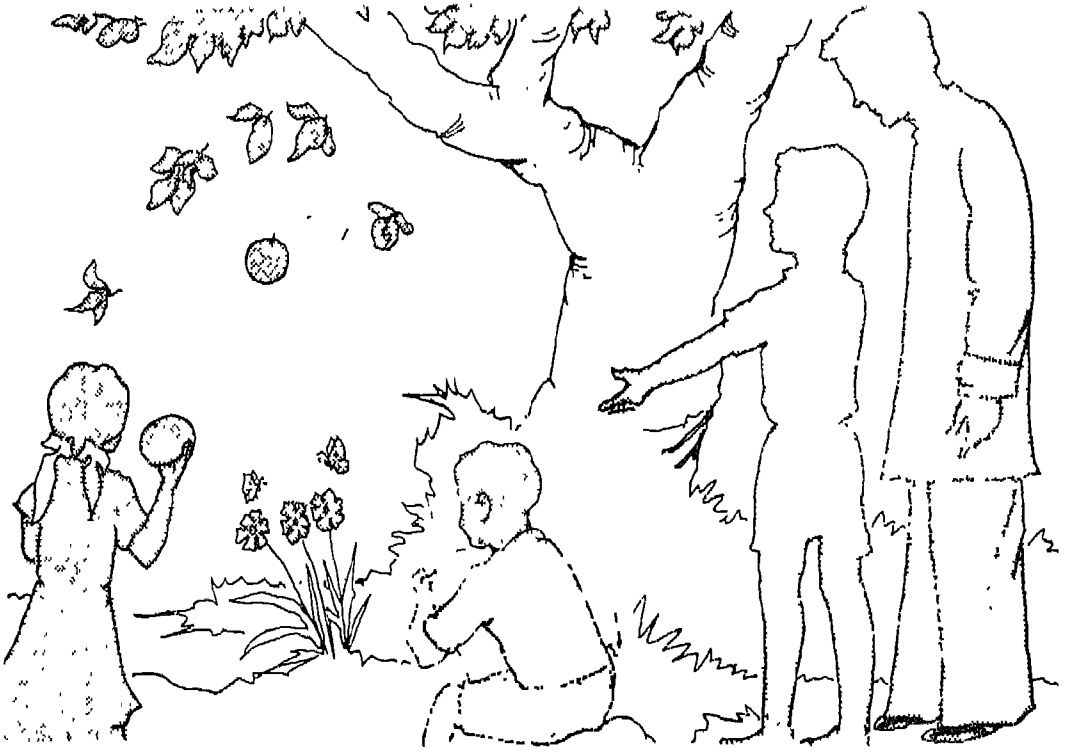
वातावरण द्वारा विज्ञान सीखना

—श्रीमती ए. एलिजाबेथ
वाइस प्रिंसीपल
कोन्कोडिया टीचर ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट,
अम्बूर-२
(नार्थ अर्कोट डिस्ट्रिक्ट तामिलनाडू)

विज्ञान को वातावरण के व्यवस्थित ज्ञान के रूप मे परिभाषित किया गया है। केवल ज्ञान ही नहीं बल्कि ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया भी विज्ञान है। ज्ञान अर्जन करने के लिए बालक अथवा वयस्क, शिक्षित अथवा अशिक्षित समाज के सभी वर्गो द्वारा एक व्यवस्थित तरीका अपनाया जाता है। जीवन से विज्ञान का बहुत निकट का सम्बन्ध है।

यह कहना ठीक नही है कि बच्चे केवल परिष्कृत उपकरणो और साधनो द्वारा ही भली प्रकार सीख पाते हैं। वास्तविकता तो यह है कि बच्चे अपने आस-पास के वातावरण में उपलब्ध सामग्री द्वारा प्रभावशाली और प्राकृतिक ढग से सीख पाते हैं। अपने

आस-पास के वातावरण की वस्तुओं से कुछ सीख पाना बच्चो के लिए रूचिकर होता है क्योंकि वे उनके जीवन से सबधित होती हैं। इस प्रकार प्राकृतिक और आनन्दपूर्ण वातावरण मे बच्चे शिक्षा ग्रहण करते है और वे वातावरण मे उपलब्ध सामग्री का प्रसन्नतापूर्वक उपयोग करते है। अगर बच्चे कुछ सीखने मे आनन्द प्राप्त करते हे तो वे वास्तव मे कुछ सीख पाते है।

बच्चो के अन्दर कुछ सीखने मे वैज्ञानिक तरीकों को अपनाने की एक प्राकृतिक क्षमता होती है। यहा तक कि एक नवजात शिशु परिकल्पनाओ द्वारा समझने, और वर्गीकरण करने योग्य होता है तथा निष्कर्ष पर पहुंच सकता है। अगर वह इस प्रकार नही कर पाए तो वह अपने माता-पिता को नही पहचान सकता। वह आनन्द देने वाली और कष्ट पहुचाने वाली वस्तुओ मे भिन्नता कर सकने योग्य होता है। भिन्न-भिन्न आवाजे उसके द्वारा पहचान ली जाती है। कुछ आवाजो को सुनकर वह मुस्कराता और प्रसन्न होता है और कुछ से वह भय अथवा घृणा दर्शाता है।

इसी प्रकार स्कूल जाने वाला बच्चा अपने वातावरण से कुछ सीख पाने की क्षमता रखता हे। अध्यापकों के लिए यह आवश्यक है कि वे बच्चे को वातावरण से सीधा सम्पर्क रखने का अवसर प्रदान करें जिससे कि बच्चा उस वातावरण से सीख सके। सही योजना बनाकर अध्यापक बच्चे को प्रयोग करने और सीखने में मार्गदर्शन कर सकता है। वास्तविकता यह है कि प्रायोगिक शिक्षण का स्थान अन्य कोई शिक्षण नही ले सकता। "विज्ञान प्रशिक्षण के लिए यूनेस्को सोर्स बुक मे व्यक्त किया गया है।"

"यदि विज्ञान को प्रभावशाली ढग से सीखना है तो इसे अनुभव करके देखना चाहिए। प्रत्येक लडके अथवा लड़की के जीवन से विज्ञान का इतना निकट का सम्बन्ध है कि अध्यापक को विज्ञान का अध्ययन करने के लिए प्रारभिक सामग्री की कमी महसूस नहीं होती। हमारे नजदीक, नीचे, आस-पास और ऊपर, ससार के किसी भी भाग से असीम तथ्य उपलब्ध होते है जिनका उपयोग विज्ञान प्रशिक्षण के लिए विषय-सामग्री के रूप मे और सामग्री को वैज्ञानिक उपकरण और शिक्षण साधन के निर्माण में प्रयोग किया जा सकता है।"

प्रभावी शिक्षक के रूप में वातावरण

कक्षा एक के अपने लम्बे अध्यापन अनुभव के आधार पर लेखक ने पाया कि अधिकतम अपने स्कूलों मे पढ़ाई का मौखिक ढंग ही प्रचलित है। कक्षा मे पढाने के लिए प्रत्यक्ष साधनों का अभाव रहता है और कक्षाएं खाली पडी रहती है। कक्षा मे ऐसे चार्ट अथवा तस्वीरें पडी रहती है जिनका उस दिन अथवा सत्र के अध्यापन से कोई संबध नही होता। अध्यापकों से जब यह पूछा गया कि वे मौखिक रूप से पढाना कम करके बच्चो को स्वत: अनुभव और प्रयोग के आधार पर कुछ सीखने का अवसर क्यो नही देते? इस पर शिक्षको का जवाब था कि उनके पास शिक्षण साधनो की कमी है तथा प्रबन्धक उन्हें खरीदने के लिए राशि भी उपलब्ध नही कराते। शिक्षको की इस प्रकार की जानकारी पर आश्चर्य हुआ क्योंकि उसमे से अनगिनत शिक्षण साधनो को खोज निकाला जा सकता हैं। इसके लिए आवश्यकता है अध्यापक की ऐसी दृष्टि की जो कि उसे ढूढ निकाले और ऐसी सधी हुई उंगलिया जो उन्हे चुन सके।

एक अध्यापक ने प्रश्न किया कि "विज्ञान की शिक्षा देने के लिए क्या किया जाए। क्या इसके लिए यन्त्र और उपकरण खरीदने की आवश्यकता नहीं होगी।"

विज्ञान के शिक्षण के लिए वातावरण की पहचान करनी होगी। लेखक ने शिक्षकों के एक समूह के समक्ष वातावरण आधारित कुछ निम्नलिखित पाठ प्रदर्शित किए :

वातावरण मे उपलब्ध सामग्री का प्रभावी रूप से उपयोग अध्यापन के लिए किया जा सकता है।

वातावरण मे उपस्थित वस्तुओं का इस्तेमाल करके कक्षा एक के बच्चों मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित किया जा सकता है।

कक्षा एक के बच्चो के लिए खोज द्वारा कुछ सीखना सभव है।

उचित निर्देशन द्वारा कक्षा एक के बच्चों को भी प्रयोग करने मे शामिल किया जा सकता है।

इस अवस्था मे भी बच्चो के अन्दर प्रेक्षण, वर्गीकरण और सिद्धान्तीकरण की प्रवीणता विकसित की जा सकती है।

अपने वातावरण से सीख पाने मे बच्चे आनन्द का अनुभव कर सकते है।

अगर अध्यापक अपने आस-पास के वातावरण को खुली दृष्टि से देखें तो वे भी स्वत साधन सम्पन्न बन सकते है।

कोई खर्च किए बिना ही अध्यापन को एक ठोस प्रारूप दिया जा सकता है और विभिन्न प्रकार की अध्यापन-शिक्षण सामग्री द्वारा कक्षा को भरा जा सकता है।

ठोस अवस्था मे पदार्थ को प्रदर्शन पाठ का विषय इस उद्देश्य से चुना गया ताकि बच्चो के अन्दर निम्नलिखित विषय के ज्ञान को विकसित किया जा सके।

प्रकृति मे बहुत से पदार्थ ठोस अवस्था मे उपस्थित होते है।

ठोस पदार्थ का एक निश्चित आकार होता है।

विभिन्न तरीकों का उपयोग कर ठोस पदार्थ के आकार को परिवर्तित किया जा सकता है।

ठोस पदार्थ जगह घेरते है।

कुछ ठोस पदार्थ भारी और कुछ हल्के होते है।

कुछ भुरभुरे होते है और कुछ नही।

कुछ ठोस पदार्थ पानी मे तैरते है और कुछ डूब जाते है।

जब ठोस पदार्थ पानी मे डूबता है तो पानी की सतह ऊपर उठ जाती है।

ठोस पदार्थ अपने आप मे स्थिर होते है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर नही जा सकते।

ठोस पदार्थ विभिन्न रग के होते है।

कुछ ठोस ऊष्मा को सचालित करते है और कुछ नही।

कुछ ठोस पदार्थ शीघ्र ही गर्म हो जाते है और कुछ नही।

कुछ ठोस आग मे जल जाते है और कुछ नही।

प्रयोग की गई प्रणाली

कक्षा एक के ३५ बच्चों को तीन समूहो मे बांटा गया फिर उन्हे कक्षा से बाहर ले जाकर विभिन्न प्रकार, रग और आकार के पत्थर और चट्टान के टुकडे एकत्र करने के लिए कहा गया। उनमे से एक समूह बगीचे की ओर, दूसरा रास्ते के किनारे की ओर और तीसरा स्कूल के प्रागण की ओर गया। पन्द्रह मिनट तक वे इधर-उधर घूमते रहे और उन्होने अच्छी सामग्री एकत्र की।

१. अपनी दिन भर की खोज यात्रा मे जो सामग्री एकत्र होती है उसे हाथ मे लेकर बच्चे कक्षा मे आते है। प्रत्येक समूह एक गोल घेरे मे बैठ जाता है। बच्चो से कहा कि पहले वे पत्थरो को उनके आकार के अनुरूप समूहो मे बाटे।

२. इसके बाद उन्हे अपनी हथेलियो के बीच पत्थर को दबाकर रखने के लिए कहा गया। उसे छू लेने भर से उन्हे पत्थर की कठोरता का आभास हो गया।

३ बच्चों से पत्थर को जमीन पर रखने के लिए कहा गया, फिर कहा गया कि वे देखें कि पत्थर मे कोई गति होती है अथवा नही। इस प्रकार वे यह समझ सके कि जब तक पत्थर को अपने हाथो से एक स्थान से दूसरे स्थान पर नही ले जाया जाता वह स्थिर रहता है। इसका उत्तर नकारात्मक मिला।

४ उन्हे इस बात की भी जानकारी मिली कि प्रत्येक पत्थर का अपना एक निश्चित आकार होता है जिसे केवल बाहरी शक्ति के प्रयोग द्वारा ही बदला जा सकता है।

५ बच्चो ने पत्थरो को अपने हाथ में लेकर यह अनुमान किया कि पत्थरों में भी भार होता है।

६. भार के अनुसार जब पत्थरों को पानी से भरी बाल्टी या ग्लास मे डाला गया तो पानी का तल ऊंचा उठता गया और अधिक पत्थर डालने पर ग्लास से पानी बाहर निकलने लगा। इस प्रयोग द्वारा अध्यापक बच्चों को "प्यासे कौए" की कहानी की सार्थकता अत्यधिक उत्साह के साथ सिद्ध कर सकते है।

उपर्युक्त बातो को ध्यान मे रखकर बच्चों ने निम्नलिखित तथ्यो को कण्ठस्थ कर लिया

पत्थर ठोस होते है।

उनका निश्चित आकार होता है।

उनके आकार को केवल बाहरी शक्ति द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है।

जब तक कि बाहरी शक्ति द्वारा उन्हे प्रभावित नही किया जाता वे स्थिर अवस्था मे रहते है।

पानी मे पत्थर घुलते नही है।

पानी मे वे नीचे बैठ जाते हैं।

पानी मे जैसे ही वे नीचे बैठते है पानी का तल ऊचा उठ जाता है।

पत्थर स्थान घेरते है

कुछ पत्थर भारी होते है और कुछ नही।

घर के लिए कार्य

बच्चों से निम्नलिखित वस्तुओ के साथ इसी प्रकार के प्रयोग करने को कहे -

पत्तिया, फूल, बीज, अनाज, सब्जिया : बैंगन, आलू, फल. नीबू, टमाटर, डडी और लकडी के टुकड़े आदि तथा धातु से निर्मित वस्तुए जैसे-रील, पेच बोल्ट सिक्का, पहिया, टूटे खिलौने और बेकार चाविया आदि।

बच्चो ने निम्नलिखित तथ्यों की खोज की

पौधो से प्राप्त सामग्री का एक निश्चित आकार होता है।

कुछ वस्तुओ के आकार को मोड कर, फाड कर, चुन कर, चाकू से काटकर और तोड़कर सरलता से परिवर्तित किया जा सकता है।

कुछ पदार्थ तैरते है और कुछ नीचे बैठ जाते है। बीज नीचे बैठ जाते है, जड़े जैसे आलू नीचे बैठ जाते है; और कुछ फल तैरते है, लकडी के टुकडे, डडियां और छाल तैरती रहती है।

कुछ पदार्थ हलके होते है और कुछ भारी।

सभी पदार्थ स्थान घेरते है।

अगर उन्हे छेडा नही जाए तो वे स्थिर अवस्था मे रहते है।

इन पाठो के देखने के पश्चात बच्चो ने निम्नलिखित नए सिद्धान्तो की जानकारी प्राप्त की और सीखी

पर्यावरण में अनेक वस्तुए ठोस अवस्था में रहती हैं।

सभी ठोस एक निश्चित आकार के होते हैं।

सभी ठोस स्थान घेरते है।

ठोस स्वय कभी अपना आकार नही बदलते।

जब तक कि बाहरी शक्ति से ठोस के स्थान को परिवर्तित नही किया जाए वे स्थिर रहते है।

अधिकाश ठोस पानी मे डूब जाते है पर कुछ तैरते भी है।

जब ठोस पानी मे डूब जाते है तो पानी का तल ऊचा उठ जाता है।

कुछ ठोस आग मे जल जाते है और बहुत से नही।

कुछ ठोस शीघ्र ही गर्म हो जाते है और कुछ धीरे-धीरे गर्म होते है।

ठोस धातुओ मे से ताप शीघ्रता से प्रवाहित होता है।

प्रयोग मे

विषय से सम्बन्धित पुर्नानवेशन प्रश्नों को भी प्रत्येक सत्र मे बच्चो को बताया गया। बच्चो ने प्रयोग मे भाग लेने की ही तरह उत्सुकतापूर्ण प्रश्न का उत्तर दिया। प्रश्न उत्तर सत्र के परिणाम निम्नलिखित हैं।

तेईस बच्चो ने पन्द्रह से अधिक प्रश्नों का उत्तर बिलकुल ठीक दिया, ६६ प्रतिशत बच्चो ने ६० प्रतिशत से अधिक प्रश्नो का उत्तर सही दिया।

दस बच्चो ने दस से चौदह प्रश्नो का उत्तर दिया, २८.५ प्रतिशत बच्चों ने लगभग ४० प्रतिशत से ६५ प्रतिशत के बीच प्रश्नो का उत्तर दिया।

केवल दो बच्चो ने सात से दस प्रश्नों का उत्तर दिया। ४.५ प्रतिशत बच्चो ने २३ से ३९

प्रतिशत तक प्रश्नों का उत्तर दिया।

प्राप्तांकों का औसत ६५.२ है, बच्चे २५, ६५ से ६३ प्रतिशत प्रश्नो मे से लगभग १६ अथवा १७ प्रश्नो का उत्तर दे सके।

आवृत्ति विवरण का मानक व्यक्तिक्रम लगभग १५.२ निकलता है जो कि अपने मे काफी महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

पर्यावरण शिक्षण सामग्री के लिए असीमित स्रोत उपलब्ध करता है। इस स्रोत सामग्री की महत्ता इस पर निर्भर करती है कि उसका उपयोग किस कुशलता के साथ किया जाता है। पर्यावरण मे सामग्री इतनी अधिक मात्रा मे उपलब्ध है कि प्रत्येक बच्चा उसके साथ अनेक प्रयोग कर सकता है और उसका उपयोग करना सीख सकता है। प्रत्येक सामग्री का उपयोग किसी विशेष उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए जिससे कि वांछित सिद्धान्त अथवा दस्तकारी सीखी जा सके।

यदि बच्चो को इस ओर प्रेरित किया जाए तो वे अपने पर्यावरण से बहुत कुछ जल्दी ही सीख सकते है। बच्चे का खोजी दिमाग कुछ सीख पाने के लिए बहुत उत्सुक होता है और उनका विश्लेषण करने वाला दिमाग वैज्ञानिक रूप से सोचता है। बच्चे का दिमाग हर पल नए अनुभव, प्रयोग और वस्तुओ की खोज करने मे लगा रहता है और आधुनिक ज्ञान के बढते हुए विस्तृत क्षेत्र के साथ ताल मेल बैठाने मे समर्थ रहता है। तकनीकी शब्दो और क्लिष्ट वैज्ञानिक परिभाषाओ को प्रयोग किए बिना वैज्ञानिक सिद्धान्तो और नियमो की मूल आधारशिला बच्चों के अन्दर प्रारम्भिक अवस्था मे ही रखी जा सकती है। इस प्रकार प्रारंभिक अवस्था से ही पर्यावरण का सही उपयोग करने मे उचित मार्गदर्शन देकर हम अपने ही बच्चो मे से महान वैज्ञानिक आविष्कारकर्ता और तकनीज्ञ बना सकते है। □

प्राथमिक स्कूल के बच्चों में आत्मनिर्भरता का विकास

—एम. एल. कौल
ए० २०८ कटवरिया सराय,
नई दिल्ली

प्रस्तावना

विद्यार्थी के व्यवहार और प्रकृति मे आए हुए परिवर्तन का पता मूल्याकन क्रिया द्वारा ही लगाया जा सकता है। वाछित दिशा मे छात्र के विकास के सम्बन्ध में तथ्य एकत्रित करने मे मूल्याकन की तकनीक एक साधन है।

साधारणतया इस बात से सभी सहमत है कि बच्चो के प्रारभिक वर्षो मे उसके व्यक्तित्व का विकास सरल रूप से किया जा सकता है। अगर बच्चे की देखभाल और शिक्षा सही हो तो उसके व्यक्तित्व को किसी भी दिशा में ढाला जा सकता है।

बच्चों के अन्दर प्रारभिक वर्षो मे विकसित हुई आदते उनके अन्दर काफी वर्षो तक बनी रहती है। अतः बच्चों के विकास की यह अवस्था काफी महत्वपूर्ण है। अतः बच्चो के प्रारभिक वर्षो के विकास पर काफी ध्यान दिया जाना चाहिए। बच्चे के व्यक्तित्व को बनाने मे उसका परिवार और स्कूल महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। अत. समय-समय पर बच्चे के व्यक्तित्व का मूल्यांकन कर उसके विकास को देखना चाहिए।

आजकल यह महसूस किया जा रहा है कि हमारे मूल्याकन कार्यक्रमों मे विशेषकर प्राथमिक अवस्था से ही सभी क्षेत्रो मे बच्चों के व्यक्तित्व के विकास पर वाछित बल दिया जाना चाहिए। मूल्याकन द्वारा इस बात की जानकारी मिली है कि बच्चे के व्यक्तित्व के विकास की ओर प्राथमिक अवस्था मे विशेष ध्यान नही दिया जाता अत इस बात को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक अवस्था मे बच्चे के व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए निम्न लिखित उद्देश्यो को अध्ययन के लिए लिया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

१ यह जानना कि प्राथमिक स्कूल के बच्चों मे व्यक्तित्व विशेषक की ओर किस सीमा तक ध्यान दिया जाता है और यह किस हद तक विकसित है।

२. यह देखना कि क्या बच्चो मे लिंग के आधार पर उनके व्यक्तित्व विशेषक मे कोई भिन्नता है।

३ यह देखना कि क्या अभिभावको का आर्थिक स्तर प्राथमिक स्कूल के बच्चो के व्यक्तित्व विशेषक के विकास में किसी रूप में सम्बन्धित है।

४. यह देखना कि अभिभावको का शैक्षिक स्तर प्राथमिक स्कूल के बच्चो के व्यक्तित्व विशेषक के विकास से सम्बन्धित है।

उपयोग में लाए गए साधन

इस क्षेत्र मे किए गए गहन अनुसधान के फल-

स्वरूप एन.सी.ई आर.टी ने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ उपयोगी मूल्य निर्धारण पैमाने विकसित किए है। शिक्षक द्वारा इन मूल्यनिर्धारण पैमानो का उपयोग अध्ययन के लिए करके बच्चो का निम्नलिखित तीन तथ्यों के आधार पर निर्धारण किया जाए .

१. (क) आत्मनिर्भरता के साथ बोलते व पढते हैं।
   (ख) उच्च इच्छा शक्ति प्रदर्शित करते है।
   (ग) कक्षा मे प्रश्नो के उत्तर देते समय सकोच अनुभव नही करते।

२. (क) अकेले होने पर भी आत्मविश्वास के साथ काम करते है।
   (ख) किसी भी उत्तरदायित्व को सहर्ष स्वीकार करते है।

३. (क) विभिन्न खेलों को निर्भीकता के साथ खेलते है।
   (ख) नए सीखे गए शारीरिक व्यायामो और खेलो का उस समय प्रदर्शन करते है।

कुछ स्कूल के स्थितिपरक व्यवहार को सही रूप मे जाचने के लिए कुछ अन्य साधनों जैसे खिलौने, उपस्थिति-पंजिका, सह-पाठ्यक्रम-क्रियाकलाप-पजिका, खेलकूद-पजिका, कक्षा व्याख्यान-पजिका और छात्रो की गोपनीय रिपोर्ट रिकार्ड आदि का उपयोग किया गया।

अध्ययन किया गया एक नमूना

यह ध्यान मे रखते हुए कि ६-११ वर्ग के बच्चो के व्यवहार को घर और स्कूल का वातावरण बहुत अधिक प्रभावित करता है, यह आवश्यक समझा गया कि प्रस्तुत अध्ययन के लिए समाज के विभिन्न वर्गों के छात्रो को इसमे सम्मिलित किया जाए। इसलिए एक अध्ययन के लिए एक शहरी सह-शिक्षा प्राथमिक स्कूल का चयन किया गया जिसमें गरीब, मध्यमवर्ग, अमीर वर्ग के परिवारों के बच्चे पढते थे। इस अध्ययन के लिए कक्षा एक से पाच को लिया गया जिसमे कुल मिलाकर १५० छात्र थे जिनमें ७५ लडके और ७५ लड़किया थी।

परिणाम

एकत्रित किए गए परिणामों से पता चलता है कि यह परिणाम एक कक्षा से दूसरी कक्षा मे भिन्न-भिन्न है। जहा तक बच्चो मे आत्मविश्वास के स्तर का प्रश्न है तो ज्यादातर उनमे आत्मविश्वास की कमी ही पाई गई।

प्राप्त जानकारी के अनुसार चार प्राइमरी कक्षाओ के १५० छात्रो मे से ५८ ६७ प्रतिशत छात्र अत्यधिक आत्मविश्वासी अथवा आत्मविश्वासी और ४१ ३३ प्रतिशत बिरले ही आत्मविश्वासी पाए गए।

अब हम निश्चय रूप से यह बताने की स्थिति मे हैं कि अध्ययन से जो परिणाम प्राप्त हुए है वे स्कूल के अधिकारी अथवा अभिभावक द्वारा किए गए जा रहे निरन्तर प्रयासो का ही फल है अथवा नही। अत में हम यह कह सकते हैं कि आत्मविश्वास-विशेषक के सम्बन्ध में जो स्थिति पाई गई है वह अध्यापक और अभिभावक दोनो का ध्यान अपनी ओर आकर्षिक करेगी।

सूची

सभी चार कक्षाओ के आत्मविश्वास मे लिग-भिन्नता

	कक्षाए							
	५		४		३		२	
	लडके	लडकिया	लड़के	लडकियां	लडके	लडक्रिया	लडके	लडकियां
एन	३०	३०	१५	१५	१५	१५	१५	१५
एम	१.९२२	२ ०२२	१.९८९	२.२६८	१ ८९५	२.०९५	१ ६१५	१.७८८
एस डी	.७२६	.७५३	.७२६	६१०	६५३	६३२	४४९	.५८१
महत्ता	एन एस		एम एस		एन एस		एन एस	

प्रस्तुत अध्ययन द्वारा यह पता चलता है कि चारों प्राइमरी कक्षाओ मे से प्रत्येक कक्षा के लडके-लडकियो की आत्मनिर्भरता के अक लगभग बराबर मे है। अत यह कहा जा सकता है कि आत्मविश्वास विशेषक के विकास मे लिंग-भिन्नता का अधिक प्रभाव नहीं पडता। यदि कोई थोड़ी बहुत भिन्नता दिखलाई पडती है तो ये भिन्नताए आश्रित नही है बल्कि अचानक हो सकती है।

निम्नलिखित सूची के अनुसार छात्रों के आत्म-विश्वास के स्तर मे भिन्नताए

सूची

सभी चारो कक्षाओं के आत्म विश्वास के स्तर पर वर्ग भिन्नता

	कक्षाए			
	५	४	३	२
एन	६०	३०	३०	३०
एम	१ ९७२	२.२१८	१ ९९५	१ ७०१
एसडी	७५३	६८४	६४९	५२६
महत्ता	५.४ एनएस	४ ३ एनएस	३ २ एनएस	

कक्षा पाच और चार, चार और तीन तथा तीन और दो के बीच आत्मविश्वास के आधार पर अको मे भिन्नता अधिक महत्वपूर्ण नही है। तब आत्मविश्वास और विशेषक के विकास में कक्षा अधिक प्रभावशाली नही दिखाई पडती है और न ही माहवार प्राप्ताकों मे कोई विशेष भिन्नता दिखाई पडती है।

सूची

सभी चारो कक्षाओ के आत्मविश्वास के प्राप्ताकों में माहवार भिन्नता

	कक्षाए							
	५		४		३		२	
	दिसबर	जनवरी	दिसबर	जनवरी	दिसबर	जनवरी	दिसबर	जनवरी
एन	६०	६०	३०	३०	३०	३०	३०	३०
एम	२.७४८	१.९७२	१.८९५	२.१२८	१.६६२	१.९९५	१ ७५५	१.७०१
एसडी	७१९	७५३	.५३६	.६८४	५१९	६४९	.४६७	-५२६
भिन्नता के चिह्न	एन एस.		एन एस.		एन. एस		एन. एस.	

यदि हम निम्नलिखित सूची पर ध्यान दे तो पता चलेगा कि अभिभावको का शैक्षिक स्तर भी बच्चो के अन्दर आत्मविश्वास विशेषक के विकास मे कोई महत्वपूर्ण भूमिका अदा नही करता।

सूची

पिता का शैक्षिक स्तर और उनके बच्चो मे आत्मविश्वास की मात्रा

पिता का शैक्षिक स्तर	अत्यधिक आत्मविश्वासी वास्तविक	प्रतिशत	आत्मविश्वासी वास्तविक	प्रतिशत	बिरले ही आत्मविश्वासी वास्तविक	प्रतिशत
स्नातक और इससे अधिक	९	३३.३३	१२	४४ ४४	६	२२ २२
मैट्रिक से लेकर स्नातक से कम शिक्षा वाले	१५	३८ ४८	१४	३५ ८८	१०	२५ ६४
मैट्रिक से नीचे	१६	१० ०५	३५	४१ ६७	३३	३९ २९

X^2=७ ७६३ (एन एस.)

तथापि उपर्युक्त सूची से यह जानकारी अवश्य मिलती है कि निम्न शिक्षित परिवार के बच्चो की तुलना में मध्यम शिक्षित परिवार और उच्च शिक्षित परिवार के बच्चे अधिक आत्मविश्वासी होते है।

सूची से यह भी पता चलता है कि बिरले आत्म-विश्वासी बच्चो मे अधिकतम प्रतिशत उन बच्चो का है जो मैट्रिक से कम शिक्षा प्राप्त परिवारो से आते है।

सूची

पिता का आर्थिक स्तर और उनके बच्चो मे आत्मविश्वास की मात्रा

पिता का आर्थिक स्तर	अत्यधिक आत्मविश्वासी वास्तविक	प्रतिशत	आत्मविश्वासी वास्तविक	प्रतिशत	बिरले आत्मविश्वासी वास्तविक	प्रतिशत
५०० से ऊपर	५	२९ ४१	७	४१ १८	५	२९.४१
२००-५००	२६	३५ १४	३३	४४ ५९	१५	२० २७
२०० से नीचे	८	१३ ५६	२३	३८ ९८	२८	४७ ४६

X^2=१३ ८३४ .०१ स्तर पर महत्वपूर्ण

उपर्युक्त सूची के परिणाम से यह पता चलता है कि प्राथमिक कक्षा के छात्रो के अन्दर आत्मविश्वास विशेषक के विकास मे पिता का आर्थिक स्तर महत्व-पूर्ण प्रभाव डालता है।

इसके अतिरिक्त निम्न आय स्तर से आने वाले बच्चों की तुलना में मध्यम और उच्च स्तर के परिवार से आने वाले बच्चो मे अत्यधिक आत्मविश्वासी और आत्मविश्वासी बच्चो का प्रतिशत अधिक है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन द्वारा इस बात पर जोर देने की सिफारिश की गई है कि प्राइमरी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य स्कूल के पाठ्यक्रम द्वारा विद्यार्थी का सभी स्तर पर विकास करना है और इसी बात को ध्यान मे रख कर ही स्कूल के कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

इसके अतिरिक्त बच्चो के अन्दर आत्मविश्वास का विकास उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास का एक महत्वपूर्ण भाग है। अतः शिक्षको तथा अभिभावको दोनों द्वारा बच्चो के अन्दर आत्मविश्वास को विकसित और सुरक्षित बनाए रखने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहने की आवश्यकता है। □
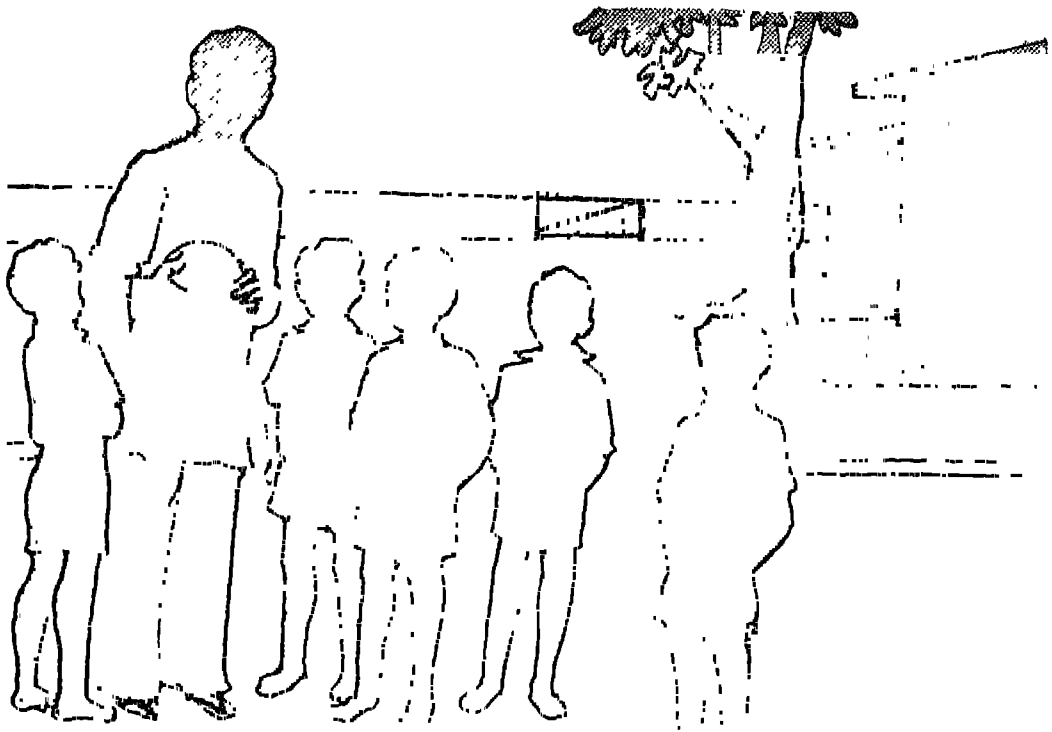
आदेशकों का शिक्षण कब और कहां

—जे. एस. ठाकुर
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय,
भोपाल

यह एक वास्तविकता है कि छात्रों को कक्षा की अपेक्षा खेल का मैदान अधिक आकर्षित करता है। खेल-खेल में कुछ सीखने की प्रवृत्ति प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों में विशेषकर देखी जाती है। एक होशियार प्राध्यापक छात्रों को भाषा के विविध पक्षों की शिक्षा देने में इस तथ्य की जानकारी का सदुपयोग कर सकता है। किन्तु इसके लिए उसे स्वयं को अग्रिम रूप से तैयार करने की आवश्यकता है।

खेल के मैदान पर दिये जाने वाले आदेशक

आदेशकों की शिक्षा कक्षा की अपेक्षा खेल के मैदान में ठीक प्रकार से तभी दी जा सकती है, यदि इसके लिए केवल अध्यापक द्वारा शारीरिक शिक्षण अध्यापक की मदद से उचित योजना बनाई जाए। वह कुछ शारीरिक व्यायाम अथवा खेल का चयन कर सकता है और उनके माध्यम से छात्रों को साधारण

आदेशक सीखने के लिए व्यायाम करवा सकता है।

उस समय जबकि अध्यापक को छात्र निरूत्साहित दिखाई दें वह छात्रो को कुछ उपयोगी ज्ञान देने के लिए खेल के मैदान मे ले जा सकता है। वास्तविकता यह है कि खेल के मैदान का विचार ही छात्रो को इतना अधिक प्रसन्न और उत्साहित कर देता है कि वे उस स्वस्थ वातावरण में सब कुछ सीखने के लिए स्वेच्छा से तत्पर रहते है।

एक अध्यापक अपने पाठ की शुरूआत इस प्रकार कर सकता है : "आज हम अपना पाठकक्षा मे नही, खेल के मैदान मे पढ़ेंगे।" यह घोषणा ही बच्चो को तुरन्त चुस्त और स्वस्थ बना देगी। वे पूर्ण रूप से उत्साहित हो जाएगे। इस प्रकार अध्यापक पूर्व-नियोजित और चयनित साधारण आदेशको के माध्यम द्वारा कक्षा का निर्देशन कर सकता है।

वह कहता है "कृपया अपनी कक्षा से बाहर आओ। शोर मत मचाओ और दूसरी कक्षा को परे-शान मत करो। एक-दूसरे से धक्का-मुक्की मत करो। एक कतार मे शात आगे बढो। कृपया, कतार मत तोडो।"

खेल के मैदान मे

"ठहर जाओ। अपनी-अपनी लम्बाई के अनुसार कतार मे खडे हो जाओ।" वह अपनी सुविधानुसार इन साधारण आदेशकों का उपयोग कर उन्हे चार-पाच कतारों में खडे होने का आदेश देता है। उनके सम्मुख खडे होकर वह साधारण अनुदेशको का स्वय उपयोग कर एक साधारण नियोजित व्यायाम का प्रदर्शन करता है। छात्र उन निर्देशो को सुनते और ध्यान से देखते है। इसके पश्चात् अध्यापक निर्देश देता है और छात्र उन क्रियाओ को उसी प्रकार करते है।"

उदाहरणतः वह कहता है : "सावधान। बाएं मुड़ो। दाए मुड़ो। ऊपर उछलो और प्रथम व्यायाम के लिए तैयार हो जाओ। अपना बाया हाथ आगे की ओर लाओ। उसे अपने कधे के बराबर रखो। फिर उसे ऊपर उठाओ। उसे एक ओर सीधा तानो और फिर नीचे लाओ। हिलो नही। सामने की ओर देखो।"

वह बच्चो को यह व्यायाम तीन अथवा चार बार पुन. करवाता है। वह हर बार स्पष्ट और धीरे-धीरे बोलते हुए निदश देता है जिससे कि बच्चे उन सब निर्देशो को समझ कर कुछ आदेशको को सीख सकें। इसके पश्चात वह दो अथवा तीन छात्रो को बुलाकर अन्य छात्रो के सम्मुख (वही व्यायाम सिखाने का निर्देश देता है। किन्तु इस दौरान) भी अध्यापक आवश्यकता पड़ने पर उस बच्चे की मदद करना नही भूलता।

अब उसी व्यायाम को एक बार फिर दोहराया जाता है। पहले दाए हाथ से और फिर दोनो हाथो से। अध्यापक और फिर छात्र लीडर द्वारा लगभग वही आदेशक उपयोग मे लाए जाते है। इस प्रकार बच्चो को उन आदेशको को अनेक बार सुनने का अवसर मिल जाता है। वे उन्हें समझकर इसी प्रकार करते है। अगले दिन अध्यापक उन आदेशको को बोर्ड पर लिखता है। छात्र उन्हें पढ़कर अपनी कापियो मे नोट कर लेते है। छात्र यह जानते है कि अगर इस व्यायाम को वे सही कर पाएगे तो उन्हें अन्य छात्रों को इसे सिखाने का अवसर प्राप्त होगा और वे उन्हे व्यायाम सिखाने के लिए निर्देश देगे, इसलिए वे उन व्यायामो का अभ्यास स्वतत्र रूप से करते है। बच्चो द्वारा व्यायाम तेजी से सीखने के लिए यह एक उत्प्रेरक के रूप मे काम करता है इसके पश्चात अध्यापक आदेशको मे नई क्रियाओ का उपयोग कर अन्य व्यायामो की ओर बढ सकता है, किन्तु यह सब उसे बच्चो का आत्मविश्वास जीतने के बाद सहजता और सावधानी से करना चाहिए। हर बार वही प्रक्रिया उपयोग मे लाई जानी चाहिए।

छात्रो को नए आदेशकों की शिक्षा देने के लिए कभी-कभी अध्यापक को खेल को एक माध्यम के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए। बच्चों के लिए यह परिवर्तन सुखदायी होता है और उनकी उत्सुकता बनी रहती है।

"अध्यापक कहता है, "यह गेद लो। गेंद को अपने बाएं हाथ मे पकडो। उसे ऊपर उछालो। उसे

जमीन पर फेंको। उसे उठाओ। उसे मुझे दो। अब पीछे खडे हो जाओ।''

एक अन्य दूसरा उदाहरण '

''एक बडे गोले के आकार मे खडे हो जाओ। तुम सभी दो वर्गो मे बंट जाओ। अपने नेता का चुनाव करो। टाम करो। टीम न० १ बिखर कर गोले के बाहर खडी हो जाए। टीम न० २ गोले के भीतर आ जाए। खेल की शुरूआत करो। गेद को अपने विरोधी दल की ओर फेको। सही निशाना बाधो। खिलाडी को गेद से मारो। गोले के भीतर प्रवेश नही करो। घुटनों के नीचे नहीं मारो। जल्दी करो। तेज दौडो। समय व्यर्थ नही गवाओ। गेद जल्दी वापस करो आदि।''

प्रत्येक नए व्यायाम का प्रदर्शन पहले अध्यापक स्वय करके दिखाता है। उसके बाद विभिन्न छात्रों को रैफ्री अथवा गाइड अथवा लीडर बनने का अवसर देता है। जब किसी छात्र को अपने सहपाठियो को निर्देश देने का अवसर मिलता है और अन्य सहपाठी उसके निर्देश के अनुरूप काम करते है तो वह छात्र प्रफुल्लित हो उठता है। इस प्रकार कुछ सीखने की प्रवृत्ति मे वृद्धि होती है। किन्तु अध्यापक को यह नही भूलना चाहिए कि कक्षा मे अध्यापन के सहयोग मे ही खेल के मैदान मे अध्यापन कार्य चले। बच्चे पढ़ाई पर नियन्त्रण प्राप्त कर सके इसके लिए अध्यापक को अनेक गतिविधियो द्वारा क्रिया को बार-बार दोहराने की सावधानी बरतनी चाहिए क्योकि भाषा को छात्रो के दिमाग मे बैठाने के लिए व्यायाम सबसे सरल साधन है। उसे यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक छात्र को आदेशको का उपयोग करने का अवसर भली प्रकार प्राप्त हो, क्योकि केवल उत्सुकता के कारण ही छात्र उसे शीघ्र सीख पाता है।

छात्रो की आय के आधार पर ही अध्यापक को किसी भी खेल अथवा व्यायाम अथवा गतिविधि का चयन करना चाहिए। उसे सरल से कठिन, साधारण से जटिल सिद्धान्तो का अनुसरण करना चाहिए। कक्षा मे बच्चो को आदेशों को देते समय उनमे कृपया अथवा कृपापूर्वक शब्दो का प्रयोग कर अनुरोध में बदलना सिखाना चाहिए। सुझाव अथवा परामर्श किस प्रकार दिया जा सकता है, इसकी भी वह शिक्षा दे सकता है। खेल के मैदान और कक्षा मे दी गई शिक्षा के बीच सामंजस्य बैठाकर अध्यापक प्रभावशाली रूप से अनेक क्रियाए पढा सकता है। छात्र इन क्रियाओं को समझ कर उनका विभिन्न वाक्यो मे प्रयोग कर सकते है। अध्यापक का धैर्य तथा छात्रो द्वारा व्यायाम और अभ्यास कुछ ऐसे तथ्य है जिनके द्वारा इस कार्यक्रम को सफल बनाया जा सकता है।

□
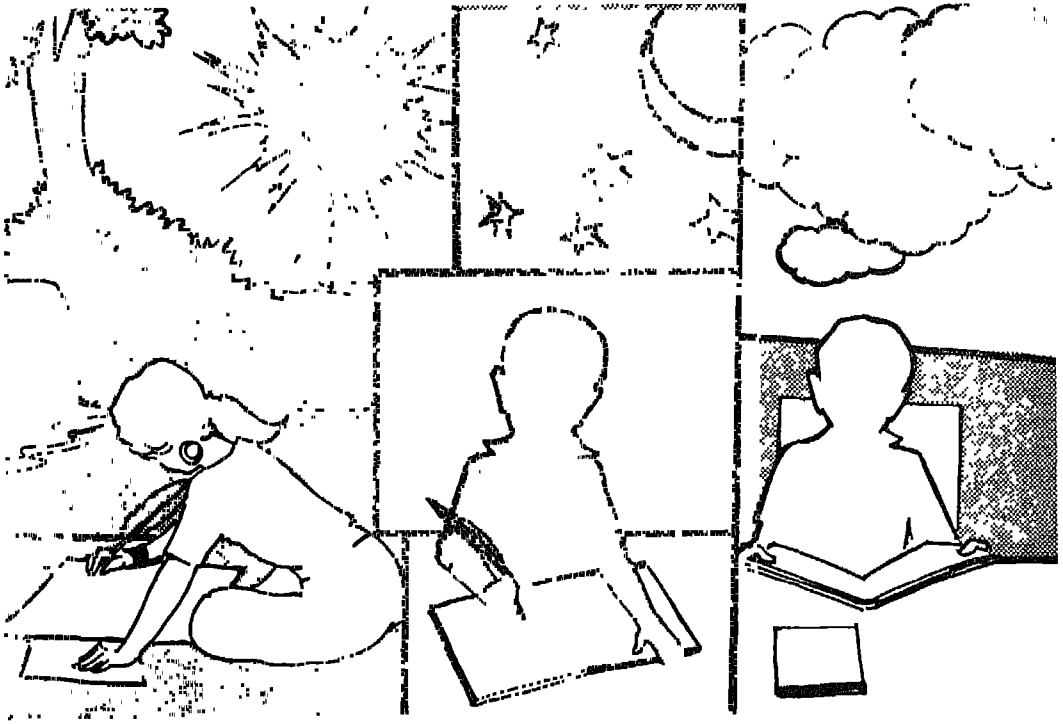
लिखित अभिव्यक्ति-विभिन्न पक्ष

—डा० इन्द्रसैन शर्मा
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान, और प्रशिक्षण परिषद्,
नई दिल्ली

सामान्य रूप से साधारण वाक्य से लेकर महान ग्रथो तक की रचना लिखित अभिव्यक्ति के ही अन्तर्गत आएगी किन्तु विद्यालय स्तर के छात्रो पर विचार करते समय हमारे मस्तिष्क मे यह स्पष्ट रहना आवश्यक है कि इन छात्रो की मानसिक क्षमता को दृष्टि मे रखते हुए उन्हें क्या और कितना सिखाया जा सकता है। लिखित अभिव्यक्ति का अर्थ है शब्दो का वाक्यो मे गठन तथा उनके द्वारा विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति। तात्पर्य यह कि कोई व्यक्ति जो भी व्यक्त करना चाहता है उसे सुन्दर एव उपयुक्त शब्दो, विचारों में स्पष्ट एव सुदृढ़ भाषा में लिखित रूप मे प्रस्तुत कर सके, तो उसकी अभिव्यक्ति सफल मानी जाएगी। लिखित अभिव्यक्ति कई रूपों मे हो सकती है, उदाहरणार्थ पत्र, प्रार्थना पत्र, निबंध, जीवन चरित्र, आत्मकथा, कहानी, सवाद आदि।

लिखित अभिव्यक्ति की शिक्षा देने से पूर्व यह

निश्चय कर लेना भी नितान्त आवश्यक है कि इसके माध्यम से हम छात्रों मे किन-किन परिवर्तनों की अपेक्षा करते है तथा वह कौन सा स्तर है जिसे प्राप्त कर लेने पर हम अपने शिक्षण उद्देश्य को सफल समझेंगे। लिखित अभिव्यक्ति के इन अपेक्षित परिवर्तनो के चार पक्ष हो सकते है

१. यान्त्रित पक्ष

जिसमे यह अपेक्षा की जा सकती है कि बालक सुपाठ्य लेख लिख सकें, प्रसंगानुसार विचारो को अभिव्यक्त कर सकें, शुद्ध वर्तनी तथा विराम चिह्नो का यथोचित प्रयोग कर सके।

२. भाषा पक्ष

इसमे हम अपेक्षा करते है कि बालक ठीक प्रकार से परिच्छेद बनाना, व्याकरण सम्मत शुद्ध वाक्यो का प्रयोग करना, प्रसगानुसार उचित शब्दो, मुहावरो तथा सूक्तियो का ठीक प्रयोग करना, सरल किन्तु प्रभावोत्पादक भाषा का प्रयोग करना, वाक्यो मे शब्दों, वाक्यांशो तथा उपवाक्यों का क्रम अर्थानुकूल रख सकना आदि सीख जाए।

३. संगठनात्मक पक्ष

इसमे अपेक्षित हैं कि बालक अभीष्ट सामग्री मे उचित अनुपात एव सुसम्बद्धता बनाए रखे, विषय की एकता बनाए रखे और अनावश्यक पुनरावृत्ति न करें।

४. शैली पक्ष

शैली पक्ष मे अपेक्षित है कि बालक अपनी अभिव्यक्ति मे संक्षिप्तता लाए, लिखित अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपो के माध्यम से अभिव्यक्ति कर सके, तथा विषय और अभिव्यक्ति के रूप के अनुकूल शैली का प्रयोग कर सके।

उपर्युक्त तथ्यो, रूपो एव पक्षों के प्रकाश मे यदि हम विद्यालय स्तर पर लिखित अभिव्यक्ति की शिक्षा दें तो वह शिक्षा बड़ी लाभप्रद एव प्रभावी होगी। बालक मे इस दिशा मे आवश्यक एव अपेक्षित परिवर्तन होगा और इस प्रकार उसे सही अर्थो में लिखित अभिव्यक्ति की शिक्षा प्राप्त होगी।

इन सभी पक्षो को ध्यान मे रखते हुए विशिष्ट बातें लिखित अभिव्यक्ति की शिक्षा पर बल एव ध्यान देने वाली निम्न हो सकती है :

अभीष्ट सामग्री

प्रायः देखा गया है कि जब किसी छात्र को किसी विषय पर अपने विचार लिखित रूप में व्यक्त करने को कहा जाता है तो वह कुछ घबराहट अनुभव करता है। उसे ऐसा अनुभव होता है कि उसे उस विषय का ज्ञान तो है किन्तु वह अपनी बात ठीक से व्यक्त नही कर पा रहा है। यही कारण है कि कभी-कभी वह किसी लेख मे अनावश्यक बाते लिख देता है और कुछ आवश्यक बाते छोड़ जाता है। इसके अतिरिक्त जब कभी छात्र अपनी बात को स्पष्ट कह पाने मे कठिनाई का अनुभव करता है तो वह एक ही बात को घुमा-फिरा कर लिखने लगता है। परिणामस्वरूप वह उस बात को अनावश्यक रूप से लम्बा कर देता है। लिखित अभिव्यक्ति मे इस अभीष्ट सामग्री पर आरम्भ से ही बल देने की आवश्यकता है।

इस अभीष्ट सामग्री की पहिचान और चयन के लिए छात्रो को कुछ अभ्यास कराए जा सकते है। उदाहरण के लिए नीचे दो सदर्भ प्रस्तुत किए जा रहे है। प्रथम उदाहरण मे अभीष्ट सामग्री के साथ अनभीष्ट सामग्री भी दी हुई है जिसमें से छात्र को अनभीष्ट सामग्री को पहचान कर पूरी सामग्री में से निकाल देना है। द्वितीय उदाहरण मे कुछ अभीष्ट सामग्री जानबूझ कर छोड़ दी गई है जहा छात्र को कल्पना एवं अनुभव का सहारा लेकर वह अभीष्ट सामग्री उसमें जोड़नी है।

अ- फुटबाल के मैच का वर्णन :

"कल मै फुटबाल का मैच देखने गया। मैदान के बाहर टिकट लेने वालो की बहुत भीड़ थी। कुछ लोग 'मूंगफली गरम' की आवाज लगा कर मूगफली बेच

रहे थे और कुछ गडेरियां। मुझे बडी ही कठिनाई से टिकट मिला और मै जल्दी से खेल के मैदान में पहुचा। चारों ओर का स्थान दर्शकों से ठसाठस भरा था और सभी की आखें बीच मैदान मे थी। आते समय रास्ते मे मुझे एक सरकस दिखाई दिया। एक स्थान पर स्कूटर और साईकिल की टक्कर हो जाने के कारण बहुत भीड़ जमा हो गई थी। निर्णायक की सीटी बजने पर खेल आरभ हुआ। दोनो टीमो मे भारत के चुने हुए खिलाडी थे। मैच बहुत जोरदार हुआ। कोई भी टीम गोल नही कर सकी। मेरा साथी फुटबाल का अच्छा खिलाडी है पर मै कालिज की क्रिकट टीम में हू। खेल समाप्त होने पर मै घर वापस लौट आया।''

इस अभिव्यक्ति में से अनभीष्ट सामग्री को निकाल दे तो इसका रूप बदल जाएगा :

''कल मै फुटबाल मैच देखने गया। मैदान के बाहर टिकट लेने वालों की बहुत भीड़ थी। मुझे बडी ही कठिनाई से टिकट मिला। खेल के मैदान मे चारो ओर का स्थान दर्शकों से ठसाठस भरा था और सभी की आखे मैदान पर थी। निर्णायक की सीटी बजने पर खेल आरम्भ हुआ। दोनो टीमो में भारत के चुने हुए खिलाडी थे। मैच बहुत जोरदार हुआ। कोई भी टीम गोल नही कर सकी। खेल समाप्त होने पर मै घर वापस लौट आया।''

आ- विद्यालय में बाल दिवस का आयोजन

''दीपावली की छुट्टियो के बाद जब हम स्कूल पहुचे तो प्रधानाचार्य महोदय ने घोषणा की कि विद्यालय में बाल दिवस मनाया जायेगा। उसमे एक मनोरजक कार्यक्रम होगा जिसका आयोजन छात्र ही करेंगे। इस पर सभी बालक बड़े ही प्रसन्न हुए। मै भी एक अच्छी सी कविता सुनाना चाहता था। जब मै बोलने खडा हुआ तो मेरे पैर लड़खडा रहे थे। प्रधानाचार्य ने हमे शाबासी दी। इस प्रकार हमने खुशी-खुशी बाल दिवस मनाया।''

इस परिच्छेद में विद्यालय मे बाल दिवस के आयोजन का वर्णन करना है। इसमें कुछ सामग्री दी गई है परन्तु जब तक विद्यार्थी उसमें कुछ आवश्यक सामग्री नहीं जोडता तब तक बाल दिवस के आयोजन का वर्णन पूर्ण नही होगा। यह आयोजन किस प्रकार किया गया, कार्य को किस प्रकार विभाजित किया गया, क्या-क्या कार्यक्रम हुए आदि उसे अवश्य ही बताने होगे। ऐसा अभ्यास कर लेने पर छात्र इस प्रकार के कार्यक्रमो का आयोजन स्वय भी कर सकेंगे।

क्रमबद्धता

अभीष्ट सामग्री से ही सबधित एक और पक्ष है क्रमबद्धता, जिसका भी छात्रो को ध्यान रखना आवश्यक है। कभी-कभी छात्र शब्दो, वाक्यो और अथवा विचारो को एक सूत्र रूप मे प्रस्तुत नही कर पाता। इससे तथ्यो को समझने मे व्यवधान उपस्थित होता है। इसी प्रकार वह प्रचलित युग्मो का प्रयोग भी ठीक से नही कर पाता। उदाहरणार्थ शाम-सवेरे, उधर-इधर, मरण-जन्म आदि युग्मो के प्रयोग मे जहा एक ओर सृष्टि की अवहेलना है वही दूसरी ओर व्यावहारिक भाषा मे प्रचलित युग्मो की भी।

इसी प्रकार की क्रमबद्धता का अभाव वाक्यों मे भी देखा जा सकता है। यह क्रम कई बार ऐसा अट-पटा हो जाता है कि अभिव्यक्ति को समझ पाना दुरुह हो जाता है। यथा

(क) सुबह उठना स्वास्थ्य के लिए लाभ-प्रद है।

(ख) सुबह कुछ नाश्ता करने के बाद पढ़ने बैठ जाना चाहिए।

(ग) थोडा ईश्वर का नाम भी ले लेना चाहिए।

(घ) सुबह दातौन या मंजन करना आवश्यक है।

(ङ) सुबह मस्तिष्क ताजा होता है इसलिए पढ़ी हुई चीज कभी नही भूलती।

(च) सुबह उठते ही पहले नित्यक्रम से निवृत होना चाहिए।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त वाक्यों का क्रम ठीक नही है। यदि वाक्यो मे क्रमबद्धता होती तो एक निश्चित परिणाम निष्पन्न होता, किन्तु इन वाक्यो को पढकर मन मे अव्यवस्थित विचार उभरते है। इन वाक्यों

का क्रम क, च, घ, ग, ख, ङ होना चाहिए। इस दिशा मे बालको को अभ्यास कराना आवश्यक है।

इस क्रमबद्धता का तीसरा पहलू है—विचार। रचना मे विचारो की क्रमबद्धता भी अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा तो पागलो की सी बाते अर्थात् "कही की ईंट कही का रोडा, भानमती ने कुनबा जोडा" जैसी बातें पाठक के मन मे स्पष्ट बिम्ब नही उत्पन्न कर पाएगी। अत अभिव्यक्ति मे यदि विचारो की क्रमबद्धता न होगी तो अर्थग्रहण मे कठिनाई का होना स्वाभाविक है। इसलिए इस दृष्टि से भी बालको का शिक्षण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

अनुपात

छात्र जब किसी विषय पर लिखित रूप मे अपने विचार व्यक्त करता है तो उसे इस तथ्य की स्पष्ट कल्पना होनी चाहिए कि वह किन-किन विशेष बातो को किस अनुपात मे प्रस्तुत करे जिससे कि आवश्यक बाते छूट न जाए और अनावश्यक बातो से रचना का कलेवर न बढ जाए। प्राय देखा गया है कि कई बार कुछ छात्र उन अनावश्यक बातो का तो विस्तार से वर्णन करते है जिनका उस प्रसग विशेष में बहुत ही कम महत्व है, तथा उन तथ्यों या विशेषताओ को बिल्कुल ही छोड देते अथवा सक्षेप मे उनका सकेत भर दे देते हे जिनका विस्तार से वर्णन करना रचना का प्रमुख उद्देश्य है। अत छात्रो को इस स्तर पर इस प्रकार का ज्ञान प्रदान करना चाहिए जिससे कि वे महत्वपूर्ण तथ्यों की पूर्ण अभिव्यक्ति करें, प्रसग की प्रमुख विशेषताओ पर आवश्यक बल दें और अनावश्यक बातो को विस्तार न दे। इतना ही नही अपितु आवश्यक बातो मे से भी जो जितनी अधिक या कम महत्वपूर्ण हो उसे उसी अनुपात में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

संक्षिप्तता

"सक्षिप्तता ही भाषा की आत्मा है" यह बात आज सर्वमान्य है। कम से कम समय और शब्दो में पूर्ण अर्थ द्योतित किया जा सके, यही श्रेयस्कर है। अतः छात्रो को इस बात की शिक्षा दी जानी चाहिए कि वे जो भी कहना या लिखना चाहते है उसका केन्द्र बिन्दु खोज लें और तत्पश्चात् सक्षेप मे उस विषय की सभी प्रमुख विशेषताओ का वर्णन करे।

लिखित अभिव्यक्ति मे सक्षिप्तता लाने के दो स्थान है—वाक्य अर्थात् वाक्यगत सक्षिप्तता और अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेदगत सक्षिप्तता। जब हम कई वाक्यो को मिलाकर एक वाक्य बना देते है और उसी में सम्पूर्ण भाव समाहित हो जाते है तो उसे वाक्यगत सक्षिप्तता कहते है। उदाहरणार्थ छात्र निम्नलिखित वाक्यो को लिखता है—"वक्ता प्रभावशाली तभी हो सकता है जब उसमे चारित्रिक बल हो। उसमे जनसेवा का भाव होना भी आवश्यक है। उसे अच्छा जनसेवी होना चाहिए। उसके चरित्र मे कोई दोष नही होना चाहिए।" इस बात को एक ही वाक्य मे यो भी रखा जा सकता है—"वक्ता को प्रभावशाली होने के लिए चरित्रवान एव जनसेवी होना चाहिए।" उपर्युक्त सभी वाक्यो का भाव एक ही लघु वाक्य मे समाहित हो गया है। इसी प्रकार अनुच्छेदो मे भी आवश्यक सक्षिप्तता लाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

सुसम्बद्धता

रचना के समग्र प्रभाव का दूसरा नाम ही सुसम्बद्धता कहा जा सकता है। विषय की अभीष्टता, क्रमबद्धता, आवश्यक पुनरावृत्ति सब मिलाकर किसी अनुच्छेद या रचना को सुसम्बद्ध बनाते है। कही-कही कुछ आवश्यक शब्दो (सयोजक, विभेदक आदि) के अभाव के कारण वाक्य असम्बद्ध दिखाई देता है तो कही बीच-बीच मे कडी के रूप मे प्रयुक्त किए जाने वाले वाक्यो के अभाव में अनुच्छेद।

लिखित अभिव्यक्ति करते समय यदि कुछ बातो का अभ्यास कराया जाए तो छात्र सुसम्बद्ध रचना तैयार करने में सफलता प्राप्त कर सकते है। एक विचार को लेकर लिखे गए (स्वयं को अथवा किसी अन्य व्यक्ति के) अनेक वाक्यो को एक अनुच्छेद मे इस प्रकार लिखना सीखना चाहिए जिससे विचार सुसम्बद्ध लगे। इसके लिए उन्हे कही-कही शब्दो मे हेर-फेर करना आवश्यक होगा अथवा कही-कही वाक्यो को भी घटाना-बढाना पड सकता है। दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि कुछ आवश्यक शब्दो के

अभाव मे रचना मे सुसम्बद्धता न आ पाई हो और वाक्य एक-दूसरे से अलग-अलग दिखाई देते हो। तीसरी स्थिति विचारों की सुसम्बद्धता की है। जो कुछ भी छात्र लिखे, उसके विचारो में क्रमिक विकास की स्पष्ट झलक हो। अलग-अलग वाक्य या अनुच्छेद अथवा विनार चद्दर में लगी थिकली के समान न लगें अपितु सुगठित रूप से सुसम्बद्ध भाव पाठक के मस्तिष्क पर अंकित करते चले जाए। इस सब की शिक्षा विद्यालयी स्तर पर अत्यन्त आवश्यक है।

एकता तथा अनुच्छेद रचना

एक ही प्रकार के विचारों को किसी एक अनुच्छेद मे सकलन करने को एकता कहते है। पूर्ण अर्थ के द्योतक कुछ विचारो की इकाई ही एकता है। लिखित अभिव्यक्ति मे कई बार छात्र कई प्रकार के विचारो को एक ही स्थान पर रखते चले जाते है। परिणामस्वरूप उस अभिव्यक्ति के अर्थग्रहण मे कठिनाई आती है। इसलिए माध्यमिक स्तर पर ही छात्रो को एकता तथा अनुच्छेद रचना का अर्थ समझाना तथा उनकी अभिव्यक्ति में इनका पूर्ण अभ्यास करा देना चाहिए।

अनुच्छेद रचना का अर्थ, आवश्यकता आदि का बोध छात्रो को करा देने के पश्चात उन्हे अभ्यास के लिए कुछ अनुच्छेद दिए जाने चाहिए। इसके लिए उन्हे एक बड़ा अनुच्छेद देकर उनसे कहा जाए कि विचारो की इकाई का ध्यान रखते हुए वे उस अनुच्छेद मे से आवश्यक अनुच्छेद बनाएं। इसी प्रकार एक ही विचार से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न अनुच्छेदो को जोड़ कर उनमे भी आवश्यक अनुच्छेद बनाने की बात कही जा सकती है।

भाषा

माध्यमिक स्तर एक प्रकार से छात्र की लिखित अभिव्यक्ति का प्रारम्भिक काल होता है। अतएव इस स्तर पर उसकी भाषा मे न तो किसी प्रकार की बनावट की अपेक्षा ही करनी चाहिए और न उसे ऐसा करने के लिए प्रोत्साहन ही देना चाहिए। अपितु उसे ऐसा निर्देश दिया जाए कि वह जो कुछ भी लिखे वह सहज प्रवाहमय हो, स्वाभाविक हो।

इसका अर्थ यह कदापि नही कि बालक नवीन शब्दो का प्रयोग बिल्कुल ही न करे। किसी भी प्रसग या विषय पर रचना लिखाने से पूर्व ही छात्रों को १०-२० शब्दों की एक सूची देकर उन्हें यह निर्देश दिया जा सकता है कि उन्हे इन नवीन १०-२० शब्दो मे से यथासम्भव रचना मे कुछ शब्द प्रयोग करने है। जब छात्र नवीन शब्दों को अपनी रचना मे प्रयुक्त करता है तो वे शब्द उसके नियत्रण मे आ जाते है और उनका वह अन्यत्र भी प्रयोग करने लगता है।

मौलिकता

मौलिकता रचना का महत्वपूर्ण गुण है। वास्तव मे वह अभिव्यक्ति शुद्ध अभिव्यक्ति ही न होगी जिसमे अभिव्यक्त करने वाले का अपना चिन्तन, अपने विचार न होकर अन्य किसी की रचना अथवा विचारो का पुन. प्रस्तुतीकरण मात्र लगे। यह मौलिकता बालक के चिन्तन को विकासशील और विचारो को पुष्ट एव परिपक्व बनाती है। अत: आवश्यक है कि छात्रो को इसके लिए आवश्यक अवसर एव निर्देश दिए जाए तथा तदनुसार अभ्यास कराया जाए। उदाहरणार्थ छात्रो को यात्रा, मेले, प्राकृतिक अथवा ऐतिहासिक स्थानो के अवलोकन आदि के लिए ले जाना चाहिए। इन यात्राओ पर निकलने से पूर्व छात्रो को बता देना चाहिए कि उक्त स्थान से लौटने के पश्चात उन्हें इस विषय पर एक मौलिक लेख लिखना है, ताकि भ्रमण करते समय वे विभिन्न स्थानो अथवा आवश्यक वस्तुओं की जानकारी लिखते चलें।

इस सम्बन्ध मे एक विशेष बात यह भी जान लेना आवश्यक है कि ऐसे विषयो का कोई अभाव नहीं है। यात्रा आदि पर जाना भी इनके लिए आवश्यक नही है। बालक घर से स्कूल आते हैं, तो मार्ग का वर्णन, कक्षा का वर्णन, बाजार का वर्णन, कृषक बालक अपने खेतों आदि का वर्णन, विद्यालय के अनुभव, विद्यालय के उत्सव, परिवार अथवा परिवार मे होने वाले उत्सव, सामाजिक उत्सव, हाट-मेले आदि ऐसे अनेक विषयो को सोचा जा सकता है जो चारों ओर बिखरे पड़े है।

अभिव्यक्ति की शैली भी छात्र की अपनी ही होनी चाहिए। प्राय: देखा गया है कि अध्यापक छात्रो को विभिन्न प्रकार की रचना की विधिया समझाते है और अपेक्षा करते है कि छात्र उन्ही बधी लकीरो से होकर आगे बढे। इससे बालक मे मौलिकता का विकास नही होता। अत. बालक को इस बात के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि वह अपने ढंग से सही सोच कर स्वतत्र रूप से लिखे।

यदि इन बातो पर प्रारम्भ से ही ध्यान दिया जाए तो छात्रो के अन्दर लिखित अभिव्यक्ति का सुचारु रूप से विकास होगा और उनके लेखन मे सहजता, स्वाभाविकता, प्रवाह, नवीनता एव मौलिकता की झलक देखने को मिलेगी। □
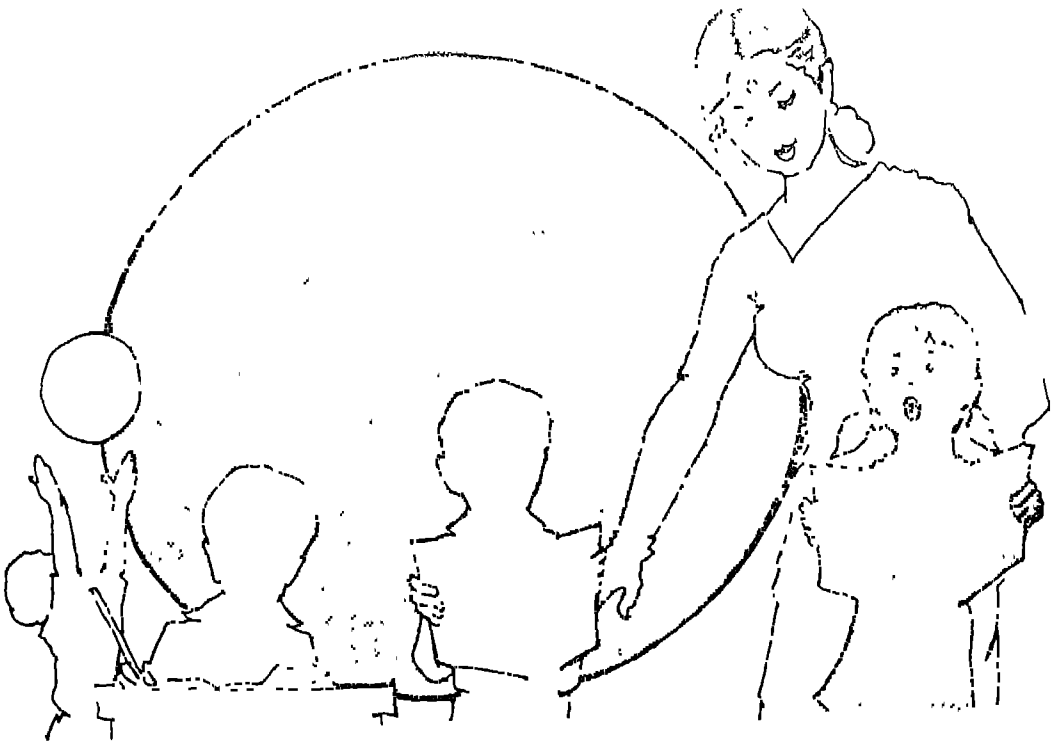
प्राथमिक शिक्षा का लोकव्यापीकरण

—डा० एस. परिहार
सहायक जिला निरीक्षक,
कॉकेर (मध्यप्रदेश)

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की सफलता के लिए विवेकशील और जागरूक नागरिकों का होना आवश्यक है। अन्याय और शोषण मुक्त समाज की सरचना हेतु आवश्यक मार्ग प्रशस्त करना लोक कल्याणकारी राज्य की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्येक भावी नागरिक के लिए सुनियोजित शिक्षा व्यवस्था किसी भी लोकतांत्रिक एव लोक कल्याणकारी राज्य की सफलता का आधारस्तभ है। इस हेतु भारत की पंचवर्षीय योजनाओं मे आवश्यक प्रावधान किए गए हैं। विशेषकर छठी पचवर्षीय योजना में व्यापक कार्यक्रम बनाकर लागू किए जा रहे है। प्रधानमत्री के २० सूत्री कार्यक्रम में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है। प्राथमिक एवं पूर्व-प्राथमिक शालाओं का व्यापक विस्तार कर लगभग सपूर्ण जनसख्या को प्राथमिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध करा दी गई है।

विशेष परिस्थितियों के कारण नियमित शालाओं मे प्रवेश न लेने वाले बालक-बालिकाओं के लिए अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था की जा रही है। छात्र-वृत्ति अभियान सचालित किए जा रहे है। अब आवश्यकता इस बात की है कि योजनाओं का निर्माण एव कार्यान्वयन इस भाति किया जाए ताकि सामान्य एव विशिष्ट अवरोधक कारणों को ज्ञातकर और उनका निदान कर लक्ष्य-प्राप्ति को सुनिश्चित किया जा सके।

औपचारिक शिक्षा

सर्वप्रथम नियमित औपचारिक शिक्षा व्यवस्था को युक्तिसगत बनाने के लिए व्यापक विचार-विमर्श की आवश्यकता है जिससे उपलब्ध ससाधनों का पूरा उपयोग हो सके। प्राथमिक शिक्षण सस्थाओं को अधिक प्रभावशाली बनाने और उनकी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए निम्न बिन्दुओं पर सुनियोजित कार्यवाही करने की आवश्यकता है।

विद्यालय भवन

भवन उपयुक्त, पर्याप्त एव मरम्मत द्वारा स्वच्छ दिखाई पडने वाला हो जिससे शाला सचालन में असुविधा न हो। ग्रामीण क्षेत्रों में जहा प्रायः दो कमरों की प्राथमिक शाला का गलत निर्माण किया जाता है वहा पाच कक्षाओं के सचालन को सुविधा-युक्त बनाने के लिए चारों ओर पर्याप्त चौडाई के बरामदो का निर्माण किया जाए।

साज-सज्जा

मूलभूत आवश्यक साज-सज्जा यथासमय प्रदान की जाए। पर्याप्त श्यामपट, चाक वर्णमाला-गिनती चार्ट, नक्शे, टाट-पट्टी, कुर्सी, मेज, अलमारी, घटी, पेयजल-व्यवस्था, अभिलेख हेतु आवश्यक रजिस्टर एव स्टेशनरी प्रत्येक प्राथमिक शाला में उपलब्ध होना सुनिश्चित किया जाए। छात्रों को पाठ्यपुस्तके एव अभ्यास पुस्तकाएं समय पर उपलब्ध कराई जाए।

अध्यापक

अध्यापन एव स्तर में गुणात्मक सुधार लाकर छात्र-छति अवरोध को कम करने के लिए पर्याप्त आवश्यक शिक्षक पदाकित किए जाए। जहा १ से ५ तक कक्षाए है वहा एक शिक्षक न होकर कम से कम दो शिक्षक पदस्थ हो।

छात्र प्रवेश उपस्थिति वृद्धि अभियान

छात्र-भरती अभियान के साथ-साथ उनकी नियमित उपस्थिति को भी नियोजित करना आवश्यक है। पिछडे ग्राम/मुहल्ले जहा साक्षरता का प्रतिशत ५० से भी कम है, वहा छात्र भरती एव उपस्थिति को प्रोत्साहन देने हेतु विशेष आकर्षण वाली सुविधाए उपलब्ध करायी जाए। मध्यान्ह जलपान, लेखन-पठन-सामग्री की सुविधा, निर्धन छात्रों को शिष्यवृत्ति उपलब्ध कराकर उन्हे शाला में नियमित उपस्थिति होने के लिए आकर्षित किया जा सकता है, ग्रामीण क्षेत्रों में जहा का प्रमुख धधा कृषि है वहां अधिक दिनों तक चलने वाले कृषि कार्यों में भाग लेने के लिए छात्रों को अनुमति देकर उनकी मौसमी अनुपस्थिति का निराकरण वास्तविक शिक्षण अवधि मे वृद्धि करके छति-अवरोध कम करने के उपाय किए जा सकते है। उदाहरण के लिए धान उत्पादन करने वाले क्षेत्र मे निराई के समय लगभग १५ दिन और कटाई के समय भी १५ दिनों का अवकाश दिया जाना उपयुक्त होगा। निराई और कटाई के कार्य मे महिलाए और बच्चे भी सहयोग देते है। इन क्षेत्रों मे दिसम्बर मे दिए जाने वाले शीतकालीन अवकाश और ग्रीष्मावकाश से कुछ दिन कम करके जुलाई-अगस्त के मध्य अथवा निराई के मौसम मे जनपद पचायत के प्रस्ताव से जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा अवकाश की घोषणा का प्रावधान किया जाए। ग्रीष्मावकाश ११ मई से प्रारभ हो। प्राथमिक शालाओं की स्थानीय परीक्षाए १ मई से ली जाएं जिससे ३० अप्रैल तक शिक्षण कार्य होता रहे। प्राथमिक प्रमाण पत्र परीक्षा २० अप्रैल से ३० अप्रैल के मध्य आयोजित हो। दीपावली अवकाश दीपावली त्योहार के दो दिन पूर्व से प्रारभ होकर लगातार २० दिनों का दिए जाने से धान की कटाई के मौसम मे छात्रों द्वारा घर के कार्य मे हाथ बटाया जा सकता है। बुनाई

का अधिकाश कार्य जून के अतिम पखवाडे मे सपन्न होने से अतिरिक्त अवकाश की आवश्यकता नही पडेगी।

अनौपचारिक शिक्षा

उन बच्चों के लिए जो विशेप परिस्थितियो के कारण नियमित शाला मे प्रवेश नही लेते है अथवा प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने के पूर्व ही शाला छोड देते है उन्हे भी शिक्षा से जोडने तथा उनकी अधूरी शिक्षा को पूर्ण करने के अवसर प्रदान करने के लिए अनौपचारिक तथा औपचारिकेतर शिक्षा योजनाए आयोजित की जा रहा है। वर्तमान समय में सचालित औपचारिकेत्तर शिक्षा केन्द्रो मे नियमित पाठ्यक्रम को पूर्ण कर ५वी परीक्षा उत्तीर्ण कराने पर शिक्षक को प्रति छात्र ५० रुपये के दर से पारिश्रमिक दिया जाता है। विभिन्न पहलुओं पर विचार कर इस योजना को और अधिक युक्तिसगत बनाने की आवश्यकता है जिससे प्रभावशाली ढग से प्राथमिक शिक्षा की पूरक व्यवस्था बन सके।

यह विचारणीय है कि दिन भर श्रम से थके बच्चे मन लगाकर अधिक समय शिक्षा में नहीं दे पाते। मजदूरी, कृषि कार्य, वर्षा-ठंड के समय प्राय: वे अनुपस्थित रहते हैं। यथा-समय तथा पूर्ण अवधि के लिए समुचित प्रकाश व्यवस्था न होने तथा अन्य विभिन्न कारणों से पूरे सत्र मे नियमित कक्षाए नहीं लगती है। अत: उपर्युक्त स्थिति में नियमित छात्रो के लिए निर्मित पाठ्यक्रम को विभिन्न स्तरो के २०-२५ छात्रो को एक ही शिक्षक द्वारा पढाकर और नियमित छात्रो के साथ परीक्षा मे प्रविष्ट कराकर उत्तीर्ण कराना बहुत कम सभव होता है। ७ से १८ आयु वर्ग के ऐसे बच्चे जिन्होंने शाला मे प्रवेश लेकर शिक्षा प्राप्त नही की उनके लिए कक्षा १ से ३ तक के स्तर के परिमार्जित एवं संशोधित उपयोगी पाठ्यक्रम निर्मित कर अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था करना युक्तिसंगत रहेगा। सामान्य परीक्षा के स्थान प[illegible] मासिक एव सत्रान्त मूल्यांकन का प्रावधान हो। यदि वे प्राथमिक कक्षाओं के निर्धारित पाठ्यक्रम पूर्ण कर लेते हैं तभी वे प्राथमिक प्रमाण पत्र परीक्षा में प्रविष्ट कराए जा सकते है।

इन औपचारिकेत्तर शिक्षा केन्द्रो के संचालन के लिए स्थानीय शाला के शिक्षकों को प्राथमिकता दी जाए। यदि वे सहमत तथा विशेष रुचि न रखते हो तभी अन्य स्थानीय शासकीय कर्मचारी यथा—ग्राम सेवक, ग्रामसेविका, पचायत सचिव, पटवारी आदि को अवसर दिया जा सकता है। हायर सैकेण्ड्री उत्तीर्ण अन्य इच्छुक ग्रामीणों को भी अशकालिक रूप मे मासिक पारिश्रमिक पर नियुक्त किया जा सकता है किन्तु जहा विशेपकर पिछडे क्षेत्रो मे हायर सैकेण्ड्री उत्तीर्ण व्यक्ति उपलब्ध न हो वहा मिडिल उत्तीर्ण को भी अवसर दिया जा सकता है। ऐसे व्यक्तियों को बुनियादी प्रशिक्षण सस्थाओं मे कम से कम १५ दिनों का प्रशिक्षण दिया जाए। इन केन्द्रों में जहा रात्रि में संचालन आवश्यक हो, प्रकाश की समुचित व्यवस्था की जाए। ग्रामीण क्षेत्रो में खाली समय विशेपकर जब कृषि कार्य बद रहता है प्राय: फरवरी से मई तक अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के सचालन को विशेष गति दी जाए। प्राय: शिक्षण बद होने पर कोई पठन सामग्री उपलब्ध न होने से कुछ वर्षो बाद पिछड़े क्षेत्रो के ग्रामीण युवकों का पठन-लेखन स्तर कमजोर हो जाता है। अत. जीवनोपयोगी एव सामान्य ज्ञान की पुस्तको की व्यवस्था पुस्तकालय-वाचनालय प्रत्येक ग्राम पचायत स्तर पर स्थापित की जाए इससे वे शिक्षा से जुडे रहेंगे तथा ज्ञानवर्धन भी होता रहेगा। □

तीसरे आयाम की खोज

—कल्याण बनर्जी
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,
नई दिल्ली
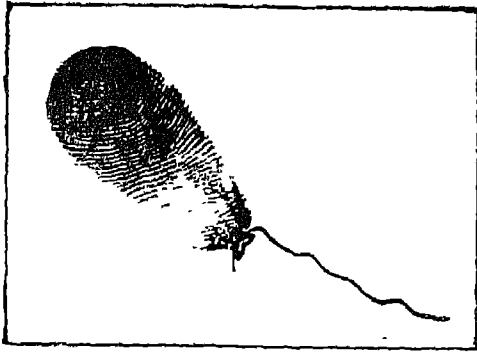
क्या हमने कभी सोचा है कि किसी डिजाइन को बनाने के लिए हम ब्रुश, पेन्सिल और पेस्ट के स्थान पर अपनी अंगुलियों का इस्तेमाल कर सकते है। सम्भवतः उत्तर "नही" मे होगा। हम अगुलियो से डिजाइन कैसे बना सकते है। इसके लिए कुछ सकेत दिए जा रहे है :

प्रत्येक अगुली की अपनी बनावट और आकार होती है। प्रत्येक व्यक्ति मे यह बनावट भिन्न-भिन्न होती है। भिन्न-भिन्न आकारों और रूपो की मदद से हमारी कल्पना मे अनेक प्रकार के डिजाइनो के प्रारूप उभर सकते है।

अगर हम अपनी अगुलियो के चिह्नों की जांच करें तो उन पर हमे हल्की और गहरे रंग की लकीरें दिखाई देंगी। जब हम अपनी अंगुली पर स्याही लगाते है तो अंगुली के उभार वाले भाग मे स्याही भर जाती और शेष भाग स्याही रहित रहता है। इस कारण जब हम कागज पर जरा दबाव से अंगुलिया रखते हैं तो वहां पर उसकी छाप रह जाती है।

अंगुलियों की छाप किस प्रकार प्राप्त करें :

बाजार मे उपलब्ध स्याही के पैड से अगुलियो की छाप प्राप्त की जा सकती है, किन्तु भिन्न-भिन्न रगो

में छाप प्राप्त करने के लिए हाथ से भी स्याही के पैड बनाए जा सकते है। अगुली पर पोस्टर रग लगाकर भी भिन्न-भिन्न रगो की छाप प्राप्त की जा सकती है। लेकिन अंगुली पर समान रूप से रंग लगाएं जिससे कि अंगुली की बनावट और आकार सही रूप से उभर सके। अगुली पर रंग लगाने के बाद, कागज पर उसकी छाप ले। कागज पर डाले गए दबाव मे भिन्नता होने पर प्रत्येक छाप के रंग की मात्रा मे भिन्नता आ जाती है। इस क्रिया मे यह बताया गया है कि अगुली मे रग लगाने के पश्चात उसकी छाप किस प्रकार लें।

एक अन्य क्रिया के द्वारा भी पुराने कपड़ो के टुकड़ो से स्याही का पैड बनाया जा सकता है। कपड़े की इतनी तह बनाए कि एक मोटी परत बन सके। वाछित डिजाइन के अनुरूप रंग का चुनाव करे। रग मे पानी मिलाकर उसे पतला करें फिर हाथ से बने स्याही के पैड में डाल दें। जब तक कि पैड रंग को सोख न ले, उसे कुछ समय के लिए वैसे ही पडा रहने

दें। अब जब पैड तैयार हो जाए तो उससे अगुलियो की छाप ली जा सकती है। छाप लेते समय दो अगुलियो के बीच स्थान छोड दे।

अगुली पर सीधे लगाए गए रग की परत मोटी होनी चाहिए। इस क्रिया मे पानी पर आधारित

पोस्टर रग का सीधे ही इस्तेमाल किया जा सकता है, किन्तु पैड प्रणाली मे उसे गीला करने के लिए पानी मिलाना होता है।

छाप का चयन

भिन्न-भिन्न अगुलियो का छाप लेने के पश्चात् कुछ अच्छे छापो का चुनाव करें। अधिक स्याही
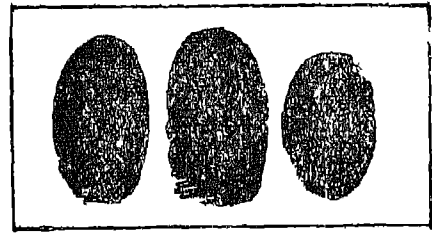
वाले, कम स्याही वाले और धब्बेदार छापो को छोड दे। ऐसे छाप जो कि अगुली की वास्तविक बनावट और वाछित आवश्यकताओ को पूरा करते हो उनका

चयन करें। किंतु अन्य छापों को फेंके नही, उनका उपयोग बाद मे किया जा सकता है।
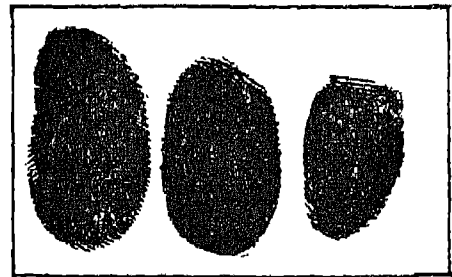
छाप का चयन करने मे आकार एक अन्य आधार हो सकता है। यह हमें इच्छित आकार को प्राप्त करने मे हमारी मदद करता है। किसी फूल के डिजाइन प्राप्त करने के लिए गोल आकार का छाप उपयुक्त रहता है। विशेष प्रभाव पैदा करने के लिए आवश्यकता होने पर हथेली का पूरा का पूरा छाप लिया जा सकता है।

डिजाइन किस प्रकार प्राप्त करें :

डिजाइन का चयन करते समय व्यक्ति को उसके विषय से पूरी तौर से अवगत होना चाहिए। उसकी
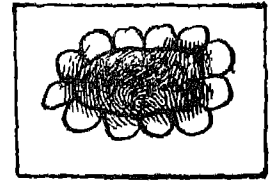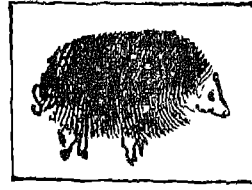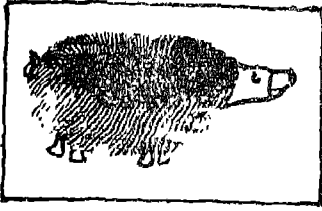
मूल तस्वीर को बहुत ध्यानपूर्वक देखे जिससे कि बिलकुल उस जैसी अगुली की छाप आ सके। उदाहरणत कुत्ते का चित्र बनाने के लिए विस्तारित छाप मे कुछ लकीरे बनाकर, कान और पूछ का आकार दिया जा सकता है। कमल का चित्र बनाने के लिए,

कमल की पत्तियों के आकार के कुछ छाप काटकर उसे गोलाकार छाप के आस-पास चिपका कर तना बना दें।

अपनी कल्पना का प्रदर्शन करने मे बालक बहुत अधिक निर्भीक होते है। कुछ समानान्तर नीले रग की लाइनों की मदद से ही वे सागर का चित्र बना सकते

है। कुछ छोटी-छोटी लकीरो से घिरा हुआ गोल आकार सूर्य का प्रतिनिधित्व करता है। उनके लिए काले पेस्टल का धब्बा रात का प्रतिरूप है और पीले रग का गोला चन्द्रमा का प्रतिनिधित्व करता है। यह हमेशा देखा गया है कि वे किसी वस्तु के प्रारूप के बारे मे ठोस विचार रखते है। वे साधारणत: किसी वस्तु का प्रारूप दो आयामीय प्रस्तुत करते है जिससे
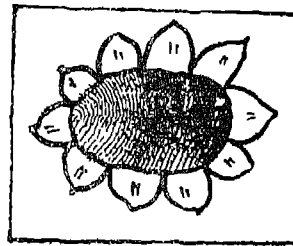
पता चलता है कि वे उसके तीसरे आयाम अर्थात् गहराई की चिन्ता नही करते। शिक्षा के अपने प्रारंभिक वर्षों में वे गहराई, अनुपात और बोध से सम्बन्धित जानकारी एकत्र करते हैं। यदि बच्चों को शुरू से ही इस माध्यम का प्रयोग करने की जानकारी दी जाए तो यह उन्हे गहराई को भी चिन्तित करने में मदद करेगी। इस प्रकार उनकी कल्पना मे तीसरा आयाम भी जोडा जा सकता है। □

प्राथमिक विद्यालयों में गणित का अध्यापन

—सच्चिदानन्द शर्मा
पटना ट्रेनिंग कॉलेज,
पटना विश्वविद्यालय

प्राथमिक विद्यालयो मे प्रारम्भ से ही गणित के अध्यापक रहते आए है इसके साथ ही लेखन और वाचन भी प्राथमिक शिक्षा के आयाम रहे है। इस प्रकार प्राय: प्रत्येक राष्ट्र मे प्राथमिक शिक्षा के न्यूनतम लक्ष्य लेखन, वाचन और गणित मे प्रशिक्षण देना रहे है। सभ्यता के विकास के साथ हमने अन्य लक्ष्य भी अपनाए है। जैसे स्वच्छ तथा स्वस्थ जीवन यापन की क्षमता का विकास, अपने घर, पड़ोस तथा विद्यालय के कामो में परस्पर सहयोग देने की क्षमता का विकास, उम्र तथा शक्ति के अनुसार व्यक्तिगत तथा सामाजिक कार्यो के सम्पादन की क्षमता का विकास, श्रम की महत्ता मे आस्था, यथासाध्य स्वत: पर्याप्तता की उपलब्धि, गाव या मुहल्ले मे सभा सगठन तथा सचालन-क्षमता का विकास, बडो के प्रति आदर तथा छोटो के प्रति स्नेह और दुखियो के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने की प्रवृत्तियो का विकास, देश तथा विदेश की ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सास्कृतिक स्थितियो का ज्ञान, वैज्ञानिक दृष्टि-कोण का विकास, पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण शक्ति का विकास तथा कार्यानुभव आदि। तात्पर्य यह है कि आज प्राथमिक शिक्षा द्वारा हम बच्चो के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकासो को दिशा प्रदान करते हैं। इस हेतु विभिन्न विषयो एव क्रियाशीलनो का प्रावधान किया जाता है।

उपर्युक्त विकासक्रमो मे गणित का सम्बन्ध मानसिक विकास से माना जाता है। अब हम यह देखें कि गणित का अध्यापन हम क्यो करते है। वाल्टर्स का कथन है कि "गणित, वैसे नागरिको के लिए जो व्यावसायिक दृष्टि से इससे सम्बद्ध नही है, जीवनोपयोगी विषय है। यह वैसा यंत्र है जिसका उपयोग व्यावहारिक जीवन के क्षेत्र मे होता है।" इस प्रकार इस विषय का उपयोग हम प्रति क्षण करते है। खाते-पीते, चलते-फिरते, खरीद-बिक्री करते समय आदि प्रतिदिन के जीवन मे हम गणित का प्रयोग करते है। उच्च स्तर पर चन्द्रावरोहण, सेतु-निर्माण, शिक्षा चिकित्सा, कृषि आदि में शोध हेतु गणित का उपयोग होता है। फलत. हम गणित का अध्यापन करते है जिससे व्यक्ति अपने जीवन मे स्थापित होते हुए बाद में व्यावसायिक जीवन मे गणित के प्रयोग की दक्षता प्राप्त करता है।

हम मे से कितने ऐसे है जो गणित के अध्ययन को अत्यन्त रुचिकर या उत्तेजनापूर्ण मानने के लिए तत्पर है तथा कितने ऐसे हे जिन्होने अपने विद्यार्थी जीवन मे गणित को रुचिकर माना है। उत्तर चिता-जनक है। प्राय: ऐसा कहते सुना जाता है कि गणित जटिल विषय है। यह भी पाया जाता है कि गणित मे सर्वाधिक छात्र असफल सिद्ध होते हैं। इन असफलताओं का कारण यह माना जाता है कि गणित सीखने के लिए अच्छी बुद्धि की आवश्यकता होती है। यह कहना या समझना कहा तक तर्कपूर्ण है, अभी तक संदेहास्पद ही है। किन्तु मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त पर कहा जा सकता है कि गणित मे विफलता का अधिक श्रेय शिक्षक या शिक्षा व्यवस्था पर ही जाता है। ऐसा इसलिए कि बच्चों को तीन वर्ष की आयु से विद्यालय

भेजने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है, इस हेतु पर्याप्त शीर्ष-शोध (लोंगीट्यूडिनल रिसर्च) की आवश्यकता प्रतीत होती है। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत ५ वर्ष की आयु पूरी होने पर बच्चे कक्षा एक मे प्रवेश पाते है। निश्चित रूप से उनकी मनो शारीरिक परिपक्वता एक समान नही रहती है। इसके साथ ही उनके घरों एव पडोसों की स्थितियां एक समान नही होती है। फिर भी सम्पूर्ण राष्ट्र मे एक ही पुस्तक चला कर एकरूपता निर्धारण करने की नारेबाजी सुनने को मिलती है। एक ओर तो हम शिक्षा को मनोवैज्ञानिक एव वैज्ञानिक आधार देना चाहते है और दूसरी ओर व्यवहार में उनके आधारो की उपेक्षा करते है। ऐसे प्रतिवादो का उत्तर हमे पियाजे (१९५२) के सिद्धान्तो मे मिलता है। गणित के अध्यापन मे इन सिद्धान्तो का प्रतिपालन प्रभावकारी सिद्ध हो सकता है।

पियाजे ने विकास चरणो की व्याख्या करते हुए कहा है कि बालक मुख्यतया ५ चरणो से गुजरता है। वे विकास के चरण है .

१ स्नायु क्रिया चरण (जन्म से २ वर्ष तक)
२. पूर्वाबबोध चरण (२ से ४ वर्ष तक)
३. अन्त: प्रक्ष चरण (४ से ७ वर्ष तक)
४. वस्तु क्रिया चरण (७ से ८ या ९ वर्ष तक)
५. सूक्ष्म क्रिया चरण (९ वर्ष से आगे तक)

उपर्युक्त विकास चरणो की कसौटी पर यदि गणित के अध्यापन को देखे तो ज्ञात होगा कि वर्ग एक में गणित के अध्यापन की सीमा अत्यन्त न्यून होनी चाहिए क्योंकि बच्चे उस काल मे मूलतया अन्त:पक्ष स्थिति में रहते है। दूसरे, तीसरे और चौथे वर्गों मे गणित अध्यापन का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तुओ पर ही आधारित होना चाहिए। आज की अध्यापन प्रक्रिया को देखने पर निराशा होती है कि हम वर्ग एक से ही सूक्ष्म क्रिया के आधार पर गणित का अध्यापन करना चाहते है और बच्चो पर दोष देकर मुक्त हो जाना चाहते है कि बच्चे गणित में कमजोर हैं या कमजोर होते ही हैं। यदि हम गणित की उपलब्धि मे वास्तव में सुधार चाहते है तो हमे वर्तमान गणित की पुस्तको तथा उसकी विधियो में सुधार लाने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

जब तक बच्चो मे उचित परिपक्वता नही आ जाए तब तक उन पर गणित का अध्ययन थोपा नही जाना चाहिए। पियाजे ने अविनामिता (कन्जरवेशन) एव प्रतिवर्त्यता (जतवसिबिलिटी) के अधिगम से सम्बन्धित अनेक प्रयोग कर सिद्ध किया है कि वांछनीय परिपक्वता स्तर के पूर्व ऐसे अवबोध का अधिगम नही हो सकता है।

यदि हमने परिपक्वता के सिद्धान्त को अपना लिया है तो गणित के सफल अध्यापन या अधिगत हेतु यह पर्याप्त नही माना जा सकता। इस हेतु शिक्षक के रूप मे हमे उपलब्ध करने योग्य व्यवहारजन्य उद्देश्य निर्माण करने की आवश्यकता होगी। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि हमे ऐसे उद्देश्यो का निर्माण करना चाहिए जिसकी उपलब्धि या अनुपलब्धि की जाच हम कक्षा छोडने के पूर्व कर ले या यह कहे कि अध्यापन के क्रमिक उद्देश्यो की उपलब्धि के उपरान्त ही हम दूसरे उद्देश्यों से सम्बन्धित अध्यापन प्रारम्भ करे, जैसे हमारा उद्देश्य है कि "बच्चे आयत और वर्ग में अन्तर का विबरण देगें"। ऐसी स्थिति मे बच्चो को आयत और वर्ग की सरचना बताए न कि भेद बताकर उन्हे रट लेने का परामर्श दें। पुन: पूछकर जांच ले कि दोनो अवबोधो मे अन्तर का अधिगम बच्चों मे हो गया है। अत: हमे चाहिए कि हम प्रत्येक पाठ, प्रत्येक पाठ के लघु अंश अर्थात् प्रत्येक अवबोध के लिए पृथक उद्देश्यों का निर्माण करे जिन्हे उपलब्ध किया जा सके तथा जिनका मूल्याकन भी सतत् होता चले।

उद्देश्य निर्माण के उपरान्त हमे विषय वस्तु का गठन करना चाहिए। ऐसा नही कि किसी प्रश्न को श्यामपट पर बना दिया और बच्चो ने उसे उतार लिया, जैसा कि होता आया है। विषयवस्तु के गठन या संरचना से हम यह जान लेते है कि किसी भी अवबोध के विभिन्न अवयव क्या है तथा वे एक दूसरे से किस रूप मे सम्बद्ध है। जैसे हमे ५+१ का अध्यापन करना है। योगफल ६ होगा यह स्पष्ट है। किन्तु इसे हम वस्तु के आधार पर बताए इसके साथ

ही ४ + २ = ६, ३ + ३ = ६, २ + ४ = ६, १ + ५ = ६ भी बताए क्योंकि गणित विभिन्न अवबोधो के पारस्परिक सम्बन्ध बतलाता है। इसी प्रकार प्रत्येक गणितीय समस्या से सम्बन्धित सम्बन्धो के पारस्परिक सम्बन्धो का विश्लेपणकर प्रत्येक अश का अध्यापन करे तथा उसका अधिगम कराए।

तीसरी प्रक्रिया के रूप मे हम पढाए अश का मूल्यांकन करें कि छात्रों ने वह सब सीखा या नही जिन्हे सिखलाने का उद्देश्य निर्धारित किया गया था। यदि उन्होने नही सीखा तो सहज ही यह सोच लेना कि बच्चे गणित नही सीख सकते, समस्या का समाधान नही है बल्कि यह समझना चाहिए कि सफल अध्यापन करने में हम असफल रह गए। इससे शिक्षक को यह निर्देश मिलता है कि छात्रो के वर्तमान स्तर से ऊचे स्तर की समस्या प्रस्तुत की गई या निर्धारित उद्देश्य दोषपूर्ण थे या पाठ विश्लेषण एव प्रस्तुतीकरण दोषी था। इन तीनो मे पूर्ण सामजस्य या तालमेल मे ही अध्यापन अधिगम की सफलता है।

बच्चो के लिए सर्वाधिक उपयुक्त विधि अन्वेषण विधि है। इस विधि के अनुसार वर्ग को छोटे समूहो मे विभक्त कर दिया जाए, वे सम्मिलित रूप मे समूह के आधार पर गणितीय समस्या का समाधान खोजेंगे। वे आपस मे विचार-विमर्श भी करेंगे। जहा भी कठिनाई होगी, शिक्षक से सहायता लेंगे। इस प्रकार के समूह का निर्माण बच्चो की क्षमता के आधार पर किया जा सकता है तथा समस्या की जटिलता या सरलता के अनुसार उपयुक्त समूहों को समस्या का वितरण किया जा सकता है। इसमे तीक्ष्ण, सामान्य और निम्न श्रेणी के छात्रो को ध्यान में रखते हुए वर्गीकरण किया जा सकता है जिससे व्यक्तिगत भिन्नता के सिद्धान्त का परिपालन होता है। इस विधि के दो आयाम हो सकते है

(१) विशुद्ध अन्वेषण विधि एव

(२) निर्दिष्ट अन्वेषण विधि

तीक्ष्ण छात्रों के लिए विशुद्ध अन्वेषण विधि तथा सामान्य तथा निम्न श्रेणी के छात्रों के लिए निर्दिष्ट अन्वेषण विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिको ने अपने अधिगम सिद्धान्तों मे प्रबलन (रिइनफोर्समेट) पर प्रचुर बल दिया है। स्कीनर के अनुसार "आज की शिक्षा प्रणाली मे सर्वाधिक दोप यह है कि इसमें प्रबलन का अत्यल्प प्रावधान है।" इस प्रतिक्रिया से सहमति प्रकट करते हुए मेरा विचार है कि हमारे शिक्षक बच्चो को सही प्रतिक्रिया पर वर्ग मे मौखिक प्रबलन देने की क्रिया अपनाए। इससे उनमे उत्साह एव आत्मविश्वास आयेगा तथा वे अध्यापन अधिगम प्रक्रिया में सतत एक सक्रिय सदस्य बने रहेगे जिससे उनका निष्पत्ति स्तर सतोषप्रद बना रहेगा। इससे जुटा हुआ दूसरा तत्व है "परिणाम का ज्ञान"। इस तत्व के अनुसार हमें चाहिए कि बच्चों को प्रति सप्ताह उनकी उपलब्धि का ज्ञान करा दिया जाए। किन्तु उपलब्धि का ज्ञान देना मात्र ही पर्याप्त नही है। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि जिस बिन्दु पर किसी खास छात्र मे कमी दिखाई देती है, उसका विशेष अध्यापन किया जाए। अन्यथा ऐसे ही छात्र धीरे-धीरे गणित मे दुर्बल होते जाएंगे अन्तत. उनमे विरुचि उत्पन्न हो जाएगी एव वे अपने को गणित के लिए अक्षम समझने लगेंगे और गणित में असफल होने लगेंगे। अत यह गणित शिक्षक की जिम्मेवारी है कि वह गणित के शिक्षण को रुचिकर और सरल बनाए। □

उद्देश्य आधारित ज्ञान सामग्री क्यों और कैसे

—एस. पी. मलिक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,
नई दिल्ली

हम शिक्षा के प्रति उत्तरदायित्वता के युग मे रह रहे हैं। हमारे द्वारा विकसित किसी भी शैक्षिक सिद्धान्त अथवा सामग्री द्वारा अभीष्ट शिक्षा प्राप्ति के परिणाम प्रस्तुत होने चाहिए। इसीलिए हम केवल उद्देश्य-आधारित ज्ञान सामग्री के विकास से ही सम्बन्धित है। अत: अभीष्ट बालको के वर्ग समूह पर ज्ञान का उचित प्रभाव प्रस्तुत करने के लिए ही इस प्रकार की सामग्री को प्रारूपित किया जाता है। इस सामग्री के दो विशेष रूप होते है। सामग्री को पढने के पश्चात् विशेष रूप से बालक का अपेक्षित व्यवहारात्मक परिणाम क्या होगा। इसके अतिरिक्त यह भी देखते है कि जब ज्ञान प्राप्त करने वाला सामग्री को पढ लेगा तब उसके ज्ञान को आकने के लिए कौन सी मानक परीक्षा लागू की जाएगी।

उद्देश्य-आधारित कहानी का विकास

बालकों को मक्खियो के हानिकारक प्रभाव पर जानकारी देने और उनके अन्दर मक्खियों के प्रति नकारात्मक विचार विकसित करने व मक्खियो को दूर भगाकर सफाई रखने के सकारात्मक विचार पैदा करने के लिए एक उद्देश्य आधारित कहानी "मक्खियों से खतरा" विकसित की गई। कहानी के उद्देश्य निम्नलिखित थे :

(क) यह जानना कि मक्खिया खाद्यान्न को सदूषित करती है और इस प्रकार के सदूषित खाद्यान्न के सेवन से हैजा और पेट के अन्य रोग फैल सकते है।

(ख) यह जानना कि कौन सी उचित औषधि इसके उपचार मे मदद कर सकती है इसलिए गाव के स्वास्थ्यकर्ता अथवा चिकित्सक से सम्पर्क स्थापित किया जाए।

(ग) घर अथवा घर के बाहर जिस स्थान पर मक्खियो का प्रजनन होता है उसकी सूची बनाना।

(घ) मक्खियो के प्रजनन पर नियन्त्रण पाने के लिए उपाय करना और उनसे ग्रस्त खाद्यान्न की खपत पर रोकथाम लगाना।

इस प्रकार की कहानी का विकास, विषय वस्तु के प्रदर्शन का विषय नहीं बल्कि व्यावहारिक मार्ग-निर्देशन का विषय है। इस प्रकार की कहानी से व्यवहार मे जो विकास होगा वह भावात्मक और ज्ञानात्मक क्षेत्र मे होगा। इसका उद्देश्य मक्खियो के प्रति नाकारात्मक विचारो का विकास करना और मक्खियो के हानिकारक प्रभाव से किस प्रकार बचा जाए इसकी जानकारी प्रदान करना है। इस प्रकार की कहानी लिखने के लिए आवश्यक है कि कहानी के विकास मे सहायक सामग्री की रूपरेखा बना ली जाए। कहानी के लिए जो सामग्री उपयुक्त पाई गई वह निम्नलिखित थी :

मक्खी एक गन्दा कीड़ा है। वह अपने साथ कुछ जीवाणु एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है और जब वह खाने की वस्तु पर बैठती है तो वे जीवाणु उसमे रह जाते है। जब हम ऐसे खाद्यान्न का सेवन करते हैं तो जीवाणु हमारे शरीर की प्रणाली मे भी

प्रवेश कर जाते हैं जिसके कारण हम पेचिश, दस्त, हैजा, आदि रोगों से ग्रसित हो जाते है। इसी कारण से हमें मक्खियों को प्रजनन नही करने देना चाहिए। हमे मक्खियो द्वारा सदूषित खाद्यान्न का सेवन नही करना चाहिए। हमें अपना घर और आस-पास के वातावरण को साफ-सुथरा रखना चाहिए। हमे बद डिब्बों में ही कूडा फेंकना चाहिए। हमे अपने खाद्यान्न को सदा ढक कर रखना चाहिए। अगर किसी कारण हम मक्खियों द्वारा सदूषित खाद्यान्न का सेवन कर लेते है तो हमें तुरन्त चिकित्सक से सम्पर्क करना चाहिए और उसके द्वारा निर्देषित उचित दवाइया सेवन कर सावधानी बरतनी चाहिए।

उपर्युक्त सामग्री के आधार पर जाच की इकाइया भी बनाई गई। उपर्युक्त सामग्री द्वारा यह पता चलता है कि ज्ञान प्राप्त करने वाला कितना अधिक ज्ञान प्राप्त कर उसे समझ सका है।

कहानी का एक उद्देश्य मक्खियो के प्रति नकारात्मक विचार पैदा करना और सफाई के प्रति सकारात्मक विचार जागृत करना था। कहानी को पढ़ने के बाद बच्चे के मन मे क्या उद्गार उठते है अथवा उन्हे कैसा महसूस होता है, यह मापने के लिए एक यंत्र विकसित करने की आवश्यकता थी। किसी के विचार जानने के बाद ही उसके व्यवहार का मूल्याकन किया जा सकता है। वास्तव से वह उनके व्यवहार की मौखिक अभिव्यक्ति है।

व्यवहार में आए किसी भी परिवर्तन को मापने के लिए एक अभिमन बनाया गया। इसमे बच्चों के वातावरण में मक्खियों से होने वाले संकट से सम्बन्धित विचारो के बारह वक्तव्य रखे गए। बच्चो को निम्नलिखित पांच पाइट पैमाने पर अपने विचारो को अभिव्यक्त करते के लिए कहा गया :

क. दृढ़ता से सहमत होना

ख. सहमत होना

ग. उदासीन

घ. असहमत

ङ. दृढता से असहमत

ऊपर दी गई निर्णायक सामग्री के आधार पर एक कहानी का विकास किया गया। इस कहानी के मुख्य पात्र लाडो, अमर और अन्य साथी थे जो कि पाठकों की आयु वर्ग समूह के थे। कथानक और पात्रो की भूमिका सहित कहानी का साराश निम्नलिखित है :

'वह मेले का दिन था। गाव से हर कोई मेले मे जाने और उत्सव मे भाग लेने का इच्छुक था। मेले का आनन्द लेने के लिए लाडो अपने भाई अपनी सहेली और बहन के साथ गई। मेला देखने की उत्तेजना मे सभी प्रसन्न थे। मेले में "चाट पकोडी" की दुकान देखकर अमर और लाडो के मुह मे पानी भर आया। कमला ने उन्हे चाट खाने से मना भी किया क्योकि उस पर मक्खियो का ढेर बैठा हुआ था लेकिन उन्होने कमला की एक न सुनी और जी भरकर चाट खाई। उन्होने मेले से खिलौने और कपडे खरीदे और जब वे थक गए तो उन्होने घर वापस जाने का निर्णय लिया। इस प्रकार की सदूपित चाट खाने से रास्ते मे ही अमर के पेट मे जोरों का दर्द उठा।"

इस कहानी के माध्यम मे केवल मक्खियो के बारे मे ही जानकारी नही दी गई बल्कि अमर और लाडो के दुखद अनुभव का वर्णन भी शामिल है। कहानी को पढते समय बच्चा अपनी आयु वर्ग के बच्चो की व्यथा से भी परिचित होता है। वह कहानी के विभिन्न पात्रो के साथ तादात्म्य करता है। जब एक व्यक्ति किसी पात्र के साथ तादात्म्य करता है तो वह व्यक्ति उसी के समान व्यवहार करता है, अनुभव करता है और यह सोचता है कि उस पात्र की विशेषताए और व्यवहार उसके अपने है। कहानी के मूल मे लगभग १२०० शब्द है। तादात्म्य करने की प्रक्रिया ज्ञानात्मक प्रक्रिया की अपेक्षा अधिक प्रभावी प्रक्रिया है।

बच्चे के आचरण के विकास के लिए उपयोग में लाई जाने वाली सामग्री के तथ्य, धारणा और सिद्धात इतने महत्वपूर्ण नही होते जितनी कि व्यवहारात्मक प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करने के लिए सामग्री से जुड़ी हुई कहानी अथवा जीवनी सम्बन्धी प्रसंग।

निष्कर्ष

कहानी मे मक्खियो के हानिकारक प्रभाव के बारे मे बताने के बावजूद "मक्खिया हानिकारक होती है इसलिए उन्हे नष्ट किया जाए" अथवा "मिठाई बेचने

वालों को अपने खाद्यान्न ढककर रखने चाहिए अन्यथा उन्हे सजा दी जाएगी'' जैसे कथनो से सम्बन्धित विचारो की सहमति मे परिवर्तन देखने को नही मिले। इन कथनों से जुडी हुई भावनाओं के प्रति कहानी मे विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। उदाहरणत: ऐसी परिस्थितिया पैदा की जाए जबकि हैजा जैसे रोग को फैलने से रोकने के लिए मक्खियो को नष्ट करना आवश्यक माना जाए। कहानी का कथानक इस प्रकार का हो जिसमे कि मक्खियो द्वारा सदूषित खाने की बिक्री अत्यधिक लोगो की तबाही का कारण बनती हो। अत इस महाविपदा के आधार पर इस प्रकार के खाद्यान्न बिक्री कर्त्ता को उपयुक्त सजा देना न्यायसगत ठहराया जाय। □
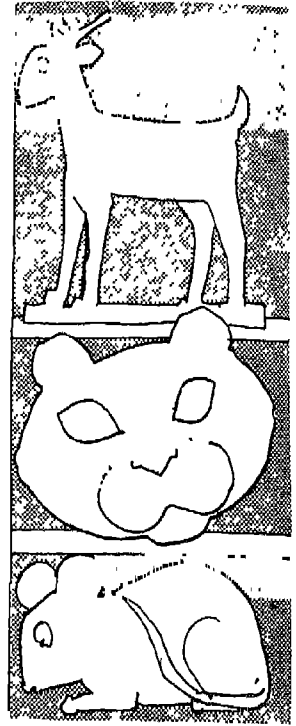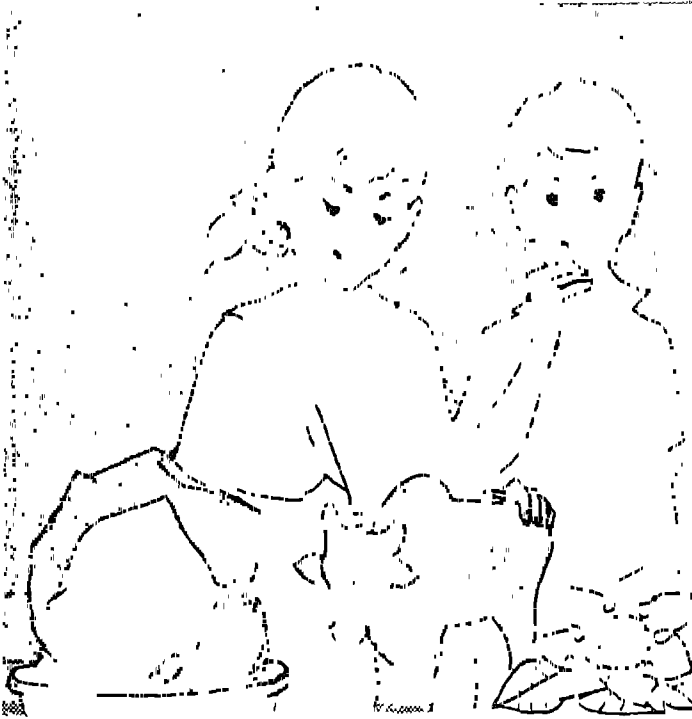
प्राथमिक शिक्षा को रचनात्मक बनाने के उपाय

—भंवर नागदा
प्रधानाध्यापक
भादवी गुड़ा वाया गोगुन्दा,
उदयपुर (राजस्थान)

शिक्षा जगत मे प्रति वर्ष कोई न कोई लहर उठती रहती है यह लहर अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे ही अधिक दिखाई पडती है। इस लहर मे समकालीन प्राथमिक शिक्षा के कतिपय जागरूक एव परिश्रमी शिक्षक गोते लगाते नजर आते हैं। मैने भी रा शै. अ. और प्र. परिषद, नई दिल्ली के प्रोत्साहन एवं राज्य शिक्षा सस्थान, उदयपुर के पथ प्रदर्शन से प्राथमिक स्तर पर प्रयोगात्मक रूप मे शिक्षण कार्य का दुस्साहस किया। अपने १५ वर्ष के इसी क्षेत्र मे अनुभव से मेरे लिए यह कार्य कुछ कठिनाइयों के

बावजूद अब सरल हो गया है।

१. परिचय

शिक्षा का सही उद्देश्य व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना है। बालक एक मिट्टी के ढेले और शिक्षक एक मूर्तिकार के समान है जिस प्रकार मूर्तिकार मिट्टी को तैयार कर अपनी इच्छानुसार मूर्ति के ढाचे मे ढालता है, उसी प्रकार यह शिक्षक पर निर्भर करता हे कि वह बालको की कलात्मक विचार क्षमता को कैसे विकसित करे ? कला का मानव से उतना ही सबध है जितना कपडो का मानव मे व छात्रो का अध्यापक से। स्कूलीय बालको मे कलात्मक विचार क्षमताओ को विकसित करने के लिये शिक्षक प्रथम एव प्रमुख केन्द्र बिन्दु है। प्राथमिक स्तर पर कलात्मक शिक्षा ही कला का एक अच्छा साधन है। कला के अन्तर्गत विभिन्न कार्यकलाप जैसे-चित्रकला, मूर्तिकला, सगीत-कला, नाट्य या नृत्यकला, वाद्यकला, सौन्दर्य कला, दस्तकारी आदि आते है। किन्तु ग्रामीण वातावरण मे प्राथमिक स्तर पर सस्ता एव सुन्दर मिट्टी-कुट्टी के खिलोने बनाने का उद्योग ही उपयोगी एव सार्थक सिद्ध हुआ है।

२. प्राकल्पना

कला का आदिकाल से मानव जाति के साथ घनिष्ठ संबध रहा है। अत: कला का शिक्षा के साथ घनिष्ठ संबध भी स्वाभाविक है। कला केवल रग एव रेखा ही नही बल्कि जीवन का सर्वोत्तम काव्य-सर्जन भी है। कला शिक्षण द्वारा जहा एक ओर स्वतत्र व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के माध्यम से मौलिक एव रचनात्मक कार्य सम्पन्न होता है, वही दूसरी ओर हमारे राष्ट्रीय जीवन की स्वस्थ परम्पराओं का भण्डार भी बढ़ता है। कला-शिक्षण के अभाव मे ज्ञान एव सस्कार अपूर्ण ही रहते हैं।

३. उद्देश्यों का चयन

किसी भी योजना को क्रियान्वित करने से पूर्व हमे उसके उद्देश्यों का चयन करना होगा। तत्पश्चात् उन उद्देश्यो को ध्यान में रखते हुए ही क्रियान्वयन करना सभव होगा। निम्नलिखित कुछ प्रमुख उद्देश्य बच्चो के लिए लाभकारी हो सकते है :

१. बालकों की कला के प्रति रुचि जाग्रत करना।
२ बालको में श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना।
३ बालको मे स्वावलम्बी बनने की आदत डालना।
४ स्वकार्य का निरीक्षण कर सही निर्णय करने की आदत डालना।
५ समय का महत्व एव सदुपयोग करने की आदत डालना।
६ बालको को रुचि एव क्षमता के अनुसार कार्य करने का अवसर प्रदान करना।
७ बालको मे स्वाध्याय की आदत डालना।
८. बालको को अपने जीवन का ध्येय निर्धारित करने मे सक्षम बनाना।
९ स्वतत्र वातावरण मे स्वेच्छा से कार्य करने की आदत डालना। प्रत्येक व्यक्ति की मदद करने की आदत डालना।

४. परिसीमन

किसी भी योजना के उद्देश्यो का चयन कर क्रियान्वयन से पूर्व हमें उसकी सीमा निर्धारित करनी होगी। यह निर्धारण हमे इसलिए करना होगा कि हम राह से न भटकें और नियत स्थान पर निश्चित समय एव लक्ष्य पर पहुंच सके। इसके लिए हमे निम्न बातो को ध्यान में रखना होगा

१ योजना न अधिक लम्बी और न अधिक छोटी हो बल्कि कक्षा एव छात्रो के स्तरानुकूल एवं उनकी क्षमतानुसार होनी चाहिए।
२ उद्देश्य कम से कम हो और उनका क्रियान्वयन खण्डो मे हो।
३. जितना अधिक समय दिया जाए योजना उतनी ही सफल होगी।
४. योजनाबद्ध तरीको से सुचारू रूप से पर्याप्त साधन सुविधाएं जुटाते हुए क्रियान्वित की जाए तो अधिक सफल होगी।
५. योजना की क्रियान्विन में रुचि रखने वाले अध्यापक को ही लगाया जाए, जिससे वह वह समय-समय पर छात्रों के मस्तिष्क मे

उठने वाली शंकाओ का समाधान कर सही मार्ग प्रदर्शित कर सके।

५. अनुसंधानात्मक कार्य

बालको की रुचि के अनुसार प्रवृत्तिया कई तरह की हो सकती है। प्राथमिक शालाओ मे सग्रहशील एव कुतूहली बालकों को तरह-तरह की वस्तुए सकलित करने की दिशा मे प्रवृत्त किया जाए। इससे बच्चों को प्रकृति के खुले वातावरण में विचरने का अवसर मिलता है और तरह-तरह की चीजो को बारीकी से देखने का आनंद भी प्राप्त होता हैं। इससे उनकी कल्पनाशीलता को भी नई दिशा प्राप्त होती है इस सबसे प्रेरित होकर बालक अपने हाथ से खिलौने, चित्र, माडल आदि बनाने लगते है। इससे उनके चेहरे पर एक उत्साह एव नई उमंग उभर कर सामने आई। हमे स्कूल के विद्यार्थियों को केवल प्रवृत्तियो की जानकारी ही नही देनी है, बल्कि वे सभी तरीके और विधियां भी बतानी है, जिससे उनमे जागरूकता और स्वचेतना विकसित हो सके। व्यक्ति की सृजनात्मकता और मौलिकता के दर्शन तभी किए जा सकते है जब हम इसे सैद्धान्तिक न समझकर व्यवहार मे अपनाए। इस प्रकार यह प्रवृत्ति उस समय आरोपित न होकर स्वय की भावना से जागृत होकर आन्नददायी होगी।

६. शिक्षा में मिट्टी-कुट्टी के कार्य का महत्व

शिक्षण मे हस्तकला का महत्वपूर्ण स्थान है। हस्तकला द्वारा बालक निर्माणशील प्रवृत्ति की आत्मभिव्यक्ति करते है। बालको में ललित एव हस्तकला द्वारा ही निर्माण शक्ति को जागृत करना संभव है। बालको मे प्रारंभ से ही रचनात्मक कार्य करने की प्रबल इच्छा रहती है। यदि इस प्रकार के अवसर नही दिए जाते तो वे निराश हो जाते है। अत: महत्वपूर्ण साधनों को व्यवस्थित कर सभी बालकों को विकास के लिए शिक्षण सस्थाओ द्वारा समान अवसर एव प्रोत्साहन देना चाहिए। बालको के सर्वागीण विकास के लिए शिक्षा मे ललित एवं हस्तकलाओ का समावेश जरूरी है।

७. प्राथमिक शालाओं में मिट्टी-कुट्टी के कार्य का महत्व

प्राथमिक शालाओ में मिट्टी-कुट्टी का कार्य होना अत्यंत आवश्यक है। यह कार्य सिखाते समय कुछ इस प्रकार के शब्दो का प्रयोग किया जा सकता है, यथा-थप-थप, धप-धप, पट-पट आदि। क्योंकि छोटे बच्चे मिट्टी को थपथपाने, पट-पटाने, ठोकने, भर-भराने आदि क्रियाए करने मे बहुत आनद का अनुभव करते हैं। आत्माभिव्यक्ति के लिए मिट्टी एक अच्छा सुन्दर व सस्ता साधन है। यह बालको को सर्वत्र उपलब्ध हो जाती है। केवल मिट्टी ही ऐसी वस्तु है जिसे हाथ की कोमल अगुलियों द्वारा इच्छानुरूप विविध आकारो का रूप दिया जा सकता है। सृजनात्मक कार्य करने की उत्तेजना तथा प्रोत्साहन केवल मिट्टी ही देती है। सृजनात्मक कार्य का वातावरण कैसे तैयार किया जाए यह शिक्षक पर निर्भर करता है। लेकिन जहा तक सभव हो कक्षा को सजाने के लिए बच्चो द्वारा निर्मित वस्तुओ का प्रयोग करना ही उत्तम रहेगा। आदर्श शिक्षक साधारण कक्षा के छात्रो से भी उत्तम कार्य करके दिखाने की क्षमता रखते है।

(१) क्रियान्वयन में ध्यान देने योग्य बातें

१. बालको को स्वतत्र, खुले वातावरण मे कार्य करने के अधिक अवसर दे।

२. कार्य का यथासमय निरीक्षण कर सुझाव देते रहे।

३ अध्यापक अपने कार्य का बार-बार प्रदर्शन कर छात्रो को समझाए।

४. अध्यापक द्वारा बार-बार छात्रो की त्रुटियां निकालकर उन्हे निराश न किया जाए बल्कि अच्छाइया बताकर प्रोत्साहित करे।

(२) आवश्यक सहायक सामग्री उपलब्ध कराना

१. लकड़िया, जस्ते का बक्सा (८० से०मी० × ८० से०मी० × १५ से०मी०) २. तैयार मिट्टी ३. फावड़ा, ४. मोगरी, ५. छलना ६. पाटिया (२० × ३० से०मी० या ३० × ३० से०मी०) ७. चीनी के प्याले ८ कपड़ा ९ ब्रुश, १०. लकडी की खप्पचिया ११. बालो की पिन १२. माचिस की तीलिया १३. साचे (एल्युमिनियम, लोहे, प्लास्टर आफ पेरिस और प्लास्टिक)।

(३) विभिन्न आवश्यक जानकारी

मिट्टी के प्रकार, मिट्टी तैयार करने की विधिया, तैयार मिट्टी की पहचान, मिट्टी को सुरक्षित कैसे रखे ? मिट्टी की आकृतिया बनाना आदि आवश्यक जानकारी से बच्चो को अवगत कराएं इसके पश्चात निम्न साचो —पपीता, अमरूद, अनार, आम, सेब, आडू, भिंडी, बैगन, लोकी, चिडिया, तोता, कबूतर, मोर बतख, हाथी, शेर, गाय, घोड़ा, बुद्ध, गाधीजी, नेहरूजी—की सहायता से उपयुक्त खिलौने बनाना सिखाए।

४. मिट्टी कुट्टी के कार्य मे रखी जाने वाली सावधानिया

१ तैयार मिट्टी-कुट्टी को अधिक देर हाथ मे न रखे।

२. सख्त मिट्टी को मोगरी से कूटना चाहिए।

३. कार्य करने के पश्चात हाथ पर गिलसरीन या वेसलीन लगाए।

४ मिट्टी कपडे पर लग जाए तो सूखने पर ब्रुश से साफ कर देनी चाहिए।

५ तैयार मिट्टी जमीन पर न पडे और न ही उसमें धूल लगने पाए।

६. आकृतिया बनाने के बाद छाया मे सुखानी चाहिए।

७. मिट्टी गीले कपड़े से ढकें किन्तु कपड़ा अधिक मोटा न हो।

८ आकृतियो को पकाने से पूर्व या बाद में अध्यापक के मार्गदर्शन मे कच्चे या पक्के रगो से अलंकृत करना न भूले।

५. समस्याएं

मौलिकता के आधार पर दी जाने वाली शिक्षा मे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेक समस्याओ का सामना करना पडता है। जैसे कोई बालक कला सर्जन की प्रतिभा रखता है और वह मिट्टी के खिलौने बनाने मे बडी उत्सुकता दिखाता है। वह सुन्दर-सुन्दर खिलौने बनाने के स्वप्न देखता है लेकिन ज्योंही वह खिलौने के निर्माण मे लगता है, उस के माता-पिता उसे फटकार देते है। वे सम्भ्रान्त परिवार के होने के कारण बच्चे के उस कार्य से नफरत करते है। वे चाहते है कि उनका लडका उनका ही अनुकरण करे। इस प्रकार वे अपने लडके को कलात्मक कार्यो से वचित रख उसकी इच्छाओ पर कुठाराघात करना चाहते है। इसी प्रकार समाज की भी कुछ स्वीकृत मान्यताए होती है, कुछ निश्चित परिधिया होती है। चितन मे गत्यात्मकता का शैथिल्य होने के परिणाम स्वरूप यह होता है कि मौलिक चिन्तन एव शुद्ध आचरण वाला व्यक्ति प्राय. उपेक्षित, तिरस्कृत एव अपमानित होता है। लेकिन यह भी कटु सत्य है कि कर्त्तव्यशील एवं अपने मार्ग पर दृढ़ रहने वाले व्यक्ति को हमेशा सफलता ही हाथ लगती है। उसकी सर्वत्र विजय होती है। उसे कोई नहीं रोक सकता। उसे जरूरत होती है केवल आत्म-विश्वास, धैर्य एवं साहस बनाये रखने की।

६ निष्कर्ष

पुरस्कार एव प्रोत्साहन जैसे उत्तेजको को प्रयोग करने से छात्रों द्वारा पढाई एव कलात्मक कार्यो के प्रति उदासीन रहने की प्रवृत्ति त्याग दी जाती है तथा उनमे स्फूर्ति एवं स्वावलम्बन की भावना जागृत होती है। वे जीवन पथ का लक्ष्य निश्चित कर, वस्तुओं का आदान-प्रदान कर क्रय-विक्रय करना सीखते है। इससे आर्थिक उपलब्धि तो होती ही है साथ ही उन्हे समय का सदुपयोग करना भी आ जाता है। इससे छात्र एव विद्यालय की सब जगह प्रतिष्ठा बढ़ती है और छात्र परिश्रमी बनता है। □

संशोधन-विधि
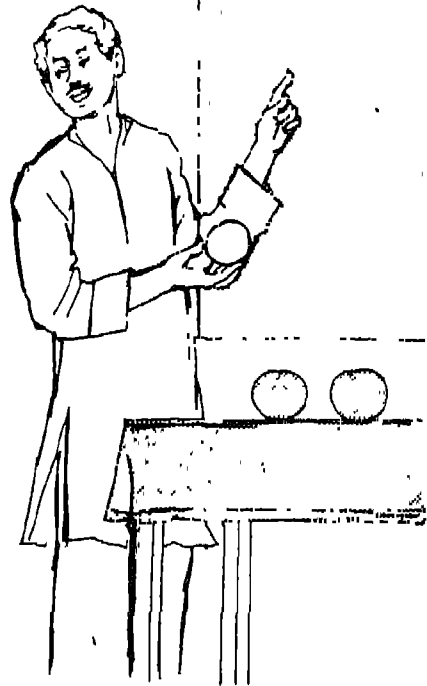
गोस्वामी रामबालक
प्रधानाध्यापक
ज्ञानकुज, दूधपुरा
समस्तीपुर (बिहार)

(मातृभाषा के सहायक शिक्षक के लिए प्रधानाध्यापक द्वारा दी गई कक्षा निरीक्षण टिप्पणी)

विगत सप्ताह के एक घंटे मे मैंने आपकी कक्षा का निरीक्षण किया था। वह बच्चो की मातृभाषा का घण्टा था। आपकी कक्षा-व्यवस्था संतोष-प्रद थी और आप स्वय भी छात्र-छात्राओं की अभ्यास-पुस्तिकाओं के संशोधन में व्यस्त थे। उत्सुकतावश मैंने आपके द्वारा किए गए सशोधनों को भी एक नजर से देखा था।

महोदय! आप स्वयं एक वयोवृद्ध अनुभवी शिक्षक हैं। आपको शिक्षण सबधी विधि व्यवस्था कोई

क्या बताएगा ? फिर भी सशोधन कार्य की नवीनतम विधियों से अवगत कराने के उद्देश्य से मैं आपको यह कक्षा-निरीक्षण टिप्पणी दे रहा हू। आशा है, इसके अनुपालन की दिशा मे आप भरसक कदम उठाएगे।

निरीक्षण के अतर्गत मे उस दिन देखा गया कि आप कापियो मे छात्रों द्वारा की गई अशुद्धियो पर बच्चों को डाट रहे थे और डाट-डाट कर उसके शुद्धाशुद्ध रूपो को वता रहे थे। छात्रो के चेहरे पर हवाइया उड़ रही थी। आप भरसक पूरा परिश्रम कर रहे थे, पर छात्रगण भयत्रस्त थे। ऐसी परिस्थिति में लिखित कार्य का सशोधन आपको अपने पूर्वानुभव के आधार पर इस ढग से करना चाहिए कि छात्र उससे हतोत्साहित न हो। आपका व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि छात्रो को अपनी अशुद्धियो मे सुधार करने मे हार्दिक प्रसन्नता महसूस हो और अपने लिखित कार्यों को वे प्रसन्नचित्त होकर स्वत. आपके पास लाए।

यह बात आपकी कक्षा मे तभी होगी जब आप अपने पुराने व्यवहारों को त्याग कर यह सोचने का जरा कष्ट करेंगे कि आपकी कक्षा के छात्र आखिर अशुद्धिया क्यों करते है ? उनकी अशुद्धियो का कारण क्या है ?

मेरे विचार से किसी छात्र के लेखन-कार्य मे जब अधिक अशुद्धियां मिलती है तो उसके निम्न मुख्यत: तीन प्रधान कारण हो सकते है ·

१. छात्रो के मौखिक कार्यो का समुचित उपयोग नही हो पाया है

२. पाठ्य विषय कठिन है

३ छात्र लिखने में स्वय असावधान रहता है

अत: सशोधन के समय आपको पता लगाना चाहिए कि आपकी कक्षा के छात्र-छात्राओ पर इन कारणो मे से किस पर कौन सा कारण लागू होता है और तद्नुसार आपको व्यक्तिगत रूप से उसकी सहायता करनी चाहिए। तभी आप अपने सशोधन कार्य मे पूर्णत: सफल हो सकते हैं। नहीं तो आप कितनी ही कोशिश करें छात्रों के कान पकड़े कुछ भी हाथ नही आएगा। उल्टा आपका सिर दर्द ही बढ़ेगा। आशा है, आप मेरे इस सुझाव पर सम्यक रूप से ध्यान देगे। फलस्वरूप आपको इसके लाभ का भी शीघ्र ज्ञान होगा।

मास्टर साहब ! आपको जरा सशोधन कार्य के ढग पर भी ध्यान देना होगा। हा ! क्योंकि सशोधन एक व्यक्तिगत चीज है। प्रत्येक छात्र के लिखित कार्यों का अलग-अलग सशोधन होना चाहिए। ऐसा नही कि ढेर सारी कापियो पर केवल अशुद्धियो को चिह्नित कर कुछ रिमार्क दे दिए। सशोधन कार्य के समय आपको पूर्णत. शांत-चित्त और प्रसन्न रहना जरूरी है। तनावपूर्ण मस्तिष्क से सशोधन कार्य तो होने का नही। हां, हो सकता है कि अशुद्धिया कुछ अधिक हो तो उनमे से कुछ के सुधार में आपको अवश्य प्रयत्नशील रहना होगा।

ऐसा भी कभी-कभी आपको देखने को मिलेगा कि कक्षा मे पाठ के कुछ शब्दो की अशुद्धिया सामान्यरूप से पाई गई है तो ऐसी परिस्थिति मे आपको दूसरी विधि अपनानी चाहिए।

जब विद्यार्थियो मे कुछ शब्दों की अशुद्धिया सामान्यरूप से पायी जाए तो उनका सुधार आप सामूहिक ढग से कीजिए। उन सामान्य गलतियों को आप श्यामपट पर लिख दीजिए और सुन्दर लिपि मे आप तुरत वहीं पर उन अशुद्ध शब्दो के शुद्ध रूपो को भी लिख दीजिए। फिर अशुद्धियो की ओर बच्चो का ध्यान आकर्षित करिए ताकि भविष्य मे वे ऐसी भूलो से बचे।

यह तो एक सामान्य सशोधन की बात हुई। अब आपको श्रेणीबद्ध संशोधन विधियो के विषय मे भी कुछ सामान्य जानकारिया दे रहा हू। आप तो ऊंची कक्षाओ में भी शिक्षण हेतु जाते हैं। वहा भी अवसर के अनुसार सशोधन कार्य आपके समक्ष आ सकता है।

चौथी कक्षा से ऊपर के छात्रो के लेखन कार्य को सशोधन करते समय आप अशुद्ध शब्दो के नीचे एक गहरी लाल रेखा मात्र खींच दीजिए। आप उन्हें वहां पर अशुद्धियों के शुद्ध रूपों को लिखकर बताने का कष्ट न करें। इससे आपका समय खराब होगा। वे चौथी कक्षा के छात्र है अत: वे स्वत: अपनी अशुद्धियों को शुद्ध कर लेंगे। आप उनकी अशुद्धियों की ओर समय रहने पर कुछ संकेत मात्र दे सकते है।

कभी-कभी आपको संशोधन के समय ऐसा भी अवसर मिलेगा कि छात्र ने प्रदत्त विषय के व्यक्त विचार मे ही गलती की हो। उस समय जब छात्रो के विचार मे ही अशुद्धियां हो तो आप उसके लिखे हुए उन वाक्यो के बाए भाग मे एक गहरी लाल खडी रेखा मात्र खीच दे। आपके पास इतना समय कहा रहता है कि आप उसके द्वारा व्यक्त विचारो की गलतियो को शुद्ध करके लिखने या बताने में समय व्यतीत करे। वहा तो शिक्षक का काम इतना ही होता है कि छात्रगण अपनी अशुद्धियो को स्वय शुद्ध कर ले। हां, हम शिक्षको को इसके लिए प्रेरणा तो देनी ही होगी। हम लोगों को सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी छात्र जानबूझकर अपनी कापियो मे गलती नही करता है।

एक बात और, हो सकता है कि कोई छात्र स्वय सशोधन करने मे समर्थ न हो तो पूछने पर आप उसकी कुछ सहायता अवश्य करें।

इसके विपरीत प्रथम, द्वितीय और तृतीय कक्षा के छात्र-छात्राओं की अशुद्धियो को सशोधन करते समय उसके रूप यथा-स्थान शिक्षक को ही लिख देना चाहिए। क्योकि इन कक्षाओं के विद्यार्थियो की मानसिक स्थिति ऐसी नही होती है कि वे अपनी अशुद्धियों को स्वयं शुद्ध करने मे सफल हो सके। आपके द्वारा बताए जाने पर छात्र अपनी अभ्यास पुस्तिका की अशुद्धियो को दूर कर शुद्ध लिखने का अभ्यास करेंगे। यहां पर आपको स्वय उनके द्वारा किए गए अभ्यासो का निरीक्षण घूम-घूम कर करना चाहिए। केवल कुर्सी पर बैठकर कापी पर कलम मात्र चलाने से ही संशोधन कार्य अधूरा माना जाता है।

सबसे बडी बात तो यह है कि सशोधन का कार्य इस प्रकार होना चाहिए कि छात्रगण शिक्षक को अपना मित्र समझें। छात्रों को उनकी गलतियो पर डाटना, फटकारना और सजा देकर तिरस्कृत करना शिक्षा मनोविज्ञान के विचार मे सर्वथा त्याज्य है। आप इससे सर्वथा दूर रहे। आगे मुझे ऐसा फिर कभी आपकी कक्षा मे देखने को नही मिलेगा, ऐसी आशा है।

कक्षा-निरीक्षण के समय मैने आप को सशोधन कार्यभार करते समय पसीने-पसीने भी देखा। मास्टर साहब इसके लिए आप के प्रति मुझे हमदर्दी है। कक्षा मे सशोधन कार्य का एक यह भी नियम आप सदा स्मरण रखिए कि वर्ग मे लिखित कार्य उतना ही करवाना चाहिए जिसका सशोधन शिक्षक सरलता मे कर सके। क्योकि सभी प्रकार के लेखन कार्यो को शिक्षको को पढना पडता है। बिना पढे तो संशोधन का निशान कभी लगाना ही नही चाहिए। शुद्ध सशोधन का निशान अकित रहने पर भी मैने कापी मे गलतिया देखी है। कृपया इस ओर भविष्य मे ध्यान दिया जाए और सावधानी रखी जाए।

मेरा व्यक्तिगत ख्याल है कि आज की शिक्षण विधि में शिक्षक का कार्यभार अधिक है। एक ही शिक्षक पर सम्पूर्ण कक्षा के ४० छात्र-छात्राओ के रिकार्ड, दैनिक चार्ट, प्रगति पत्र, पाठयोजना, दिनचर्या, लेखन आदि का भार रहता है। उसको कक्षा के प्रत्येक छात्र पर व्यक्तिगत ध्यान देने का अवसर भी मिलना चाहिए। अत. शिक्षकों को स्वाध्याय हेतु और छात्रो पर व्यक्तिगत ध्यान देने के विचार से उनके कार्यभार को शीघ्र कम करना चाहिए।

मै आपको यह भी सुझाव देना चाहता हू कि जिन शब्दो, मुहावरो और व्याकरण-सबधी बातो मे छात्र भूल करते हैं, उनका शुद्ध अभ्यास मौखिक और लिखित दोनो ही रूपो में करवाना चाहिए।

ध्यान रहे कि अशुद्ध शब्दो के शुद्ध रूपो को पांच या दस बार लिखवाने से कोई लाभ नहीं होता है। मैने आपके द्वारा किए गए सशोधनो मे देखा कि छात्रों से आपने गलतियों के शुद्ध रूप को पाच-पांच बार लिखवाया था। इसमे परिश्रम भी बहुत होता है और शिक्षाविदो का इस सन्दर्भ मे विचार है कि शिक्षको द्वारा ऐसा करवाने से छात्रो मे उन शब्दो के प्रति अरुचि पैदा हो जाती है और उनमे उन अशुद्धियो के और अधिक बढ जाने का प्राय: डर रहता है।

अत: याद रहे कि नए-नए स्थानो में उन अशुद्धियों के शुद्ध व्यवहार से ही सुधार होता है। अर्थात् जिस शब्द को विद्यार्थी अशुद्ध लिखता है उसका व्यवहार बार-बार कई तरह से करवाया जाएगा तो इसका छात्र पर अमिट प्रभाव पड़ेगा। "जैसे—कोमल। फूल

कोमल है। बालक का शरीर बहुत कोमल है। **पानी**। नदी मे **पानी** नही है। आज की दौड मे लाल घोड़ा **पानी-पानी** हो गया। दुश्मन ने **पानी** पिला दिया। **पर**। किताब टेबुल **पर** है। यह कबूतर का **पर** है।"

कभी-कभी छात्रो की कापियो मे विवरण-दोष भी पाए जाते है। ये विद्यार्थियो मे क्योकर आते है? विविध-परीक्षणो से यह मालूम हुआ है कि विवरण-दोष बहुत कुछ उचित मौखिक आत्माभिव्यक्ति के अभाव के कारण ही होता है। हा, कोई छात्र "चीज" को "चिज" लिखता है। इसका कारण क्या है? आपने कभी सोचने का कष्ट किया कि कोई बच्चा "चीज" को बार-बार बताने पर भी "चिज" क्यों लिखता है? इसका एक मात्र कारण यही है कि उस छात्र को दीर्घ "ई" के स्थान पर ह्रस्व "इ" के बोलने का अशुद्ध अभ्यास हो गया है। अगर उसे ह्रस्व और दीर्घ "इ" का भेद मालूम होता तो वह कभी ऐसी भूल नही करता।

अत: मास्टर साहब आप भी मानेगे कि छात्रो मे विवरण दोष शब्द के स्वरूप को ठीक ढग से न देखने, ठीक तरीके से न सुनने या सही ढग से न लिखने के कारण ही होता है। यदि "चीज" पढते समय वह ठीक ढग से देखता है और "चीज" का उच्चारण शिक्षक या अभिभावक से ठीक ढंग से वह सुनता है और "चीज" को ठीक ढग से प्रथम बार लिखता है, तो "चीज" के विवरण को (चिज) लिखने मे वह कभी गलती नही करेगा। मै तो ऐसा समझता हू कि अभ्यास के द्वारा ही छात्र किसी भी शब्द का शुद्ध रूप सीख व लिख सकता है। सब कुछ अभ्यास पर ही निर्भर करता है।

छात्रो के अभ्यास कार्य मे अरुचि या मानसिक शैथिल्य पैदा न हो, इसका ख्याल भी आपको रखना चाहिए। छात्रो के हर क्रियाकलाप मे अभिरुचि बनाए रखना ही शिक्षक का कर्तव्य है। अत: सशोधन की वही विधि अपनाना श्रेयस्कर होता है, जिसमे विद्यार्थियो की अभिरुचि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

शिक्षण प्रक्रिया के अतर्गत सशोधन कार्य एक महत्वपूर्ण कला है। इसकी महत्ता से आप अब अवश्य अवगत हो गए होगे। □

समाचार और विचार

ग्रामीण बच्चों के लिए उनके समीपस्थ स्थानों में स्कूल

एन.सी ई आर टी द्वारा प्रकाशित चौथे अखिल भारतीय सर्वेक्षण के अनुसार देश के कुल ४७४६३६ प्राइमरी स्कूलो में से ४३१६०२ (७०.९३ प्रतिशत) स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों मे स्थापित है।

देश के अन्दर विद्यमान ९६४६६४ ग्रामीण निवासी क्षेत्र मे से ४५१४५७ (४६ ८० प्रतिशत) क्षेत्रो में उनके यहां ही प्राइमरी स्कूल है और शेष ३२२५४१ (३३.४४ प्रतिशत) क्षेत्रो के लोगो को प्राइमरी स्कूल का लाभ उठाने के लिए एक किलोमीटर की दूरी तय करनी पडती है। इसका तात्पर्य यह है कि ७७३९९८ (९० २४ प्रतिशत) क्षेत्रो के लोगो को अपने ही क्षेत्र मे प्राइमरी स्कूल की सुविधा उपलब्ध है अथवा इसका लाभ उठाने के लिए उन्हे एक किलोमीटर की दूरी तय करनी पडती है। शेष ६५९८७ (६ ८४ प्रतिशत) निवास-क्षेत्रो मे दो किलो मीटर तक के क्षेत्र मे कोई प्राइमरी स्कूल नही है।

जनसख्या के अर्थो में ७८.५३ प्रतिशत ग्रामीण जनसख्या के आवासीय क्षेत्र मे ही प्राइमरी स्कूल मौजूद हैं और शेष १४.२९ प्रतिशत जनसंख्या को प्राइमरी स्कूल की सुविधा का लाभ उठाने के लिए एक किलोमीटर की दूरी तय करनी पडती है इसका तात्पर्य यह हुआ कि ९२ ८२ प्रतिशत ग्रामीण जनसख्या के आवासीय क्षेत्र मे ही प्राइमरी स्कूल मौजूद हैं अथवा एक किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद वे इस सुविधा का लाभ उठा सकते है। किन्तु २.१५ प्रतिशत जनसख्या को यह सुविधा दो किलोमीटर की दूरी तक भी उपलब्ध नही होती।

अनुसूचित जाति वहुल क्षेत्रों में स्कूलीय सुविधाएं

इस सर्वेक्षण द्वारा अनुसूचित जाति बहुल क्षेत्रों मे स्कूलो की क्या सुविधाए उपलब्ध है इस सम्बन्ध मे आकड़े एकत्र किए गए। ऐसे क्षेत्र जहा कि अनुसूचित जाति की जनसख्या ५० प्रतिशत या इससे अधिक थी उस क्षेत्र का अनुसूचित जाति वहुल क्षेत्र वर्गीकृत किया गया। सर्वेक्षण के दौरान ऐसे क्षेत्रो की सख्या ६९०३८ पाई गई जिसमें लगभग २३२१९४४६ जनसंख्या थी। ऐसे क्षेत्रो मे से २१७९९ (३१ ५८ प्रतिशत) मे उनके अपने क्षेत्र मे ही प्राइमरी स्कूल मौजूद था और शेष ५३८७३ (७७ ९६ प्रतिशत) क्षेत्रो मे प्राइमरी स्कूल की सुविधा का लाभ उठाने के लिए एक किलोमीटर की दूरी तय करनी पडती है। ४३११ क्षेत्रो मे दो किलोमीटर की दूरी तक भी ऐसी कोई सुविधा उपलब्ध नही है।

जनसख्या के अर्थो मे ६२ ८० प्रतिशत जनसख्या के लिए उनके अपने आवासीय क्षेत्र मे प्राइमरी स्कूल की सुविधा उपलब्ध है जबकि ८८.९४ प्रतिशत जनसख्या के लिए उनके अपने आवासीय क्षेत्र अथवा १ कि०मी० की दूरी पर यह सुविधा उपलब्ध है। २ ७४ प्रतिशत जनसंख्या के लिए यह सुविधा २ कि० मी० की दूरी तक भी उपलब्ध नही है। आवासीय क्षेत्र के प्राइमरी स्कूल की उपलब्धता के अर्थ मे अन्य क्षेत्रो की तुलना मे यहा कम आबादी है जबकि १ कि०मी० और २ कि० मी० की दूरी तय करने वाली जनसख्या का प्रतिशत लगभग बराबर है।

अनुसूचित जनजाति वहुल क्षेत्रों मे स्कूलीय सुविधाएं

इस सर्वेक्षण द्वारा अनुसूचित जनजाति बहुल क्षेत्रो मे उपलब्ध शैक्षिक सुविधाओं के आंकडे एकत्र किए गए। ऐसे क्षेत्र जहा कि ५० प्रतिशत अथवा उससे अधिक अनुसूचित जनजाति वास करती है उन क्षेत्रों को 'अनुसूचित जनजाति वहुल क्षेत्र' के रूप में वर्गीकृत किया गया। सर्वेक्षण के दौरान ऐसे क्षेत्रो की संख्या १,५३,७७८ पाई गई जिसमें कि लगभग ३,८९,३५,३९९ जनसख्या थी। इनमे से ५,८५१९

(३८ ०५ प्रतिशत) क्षेत्रों के लिए उनके अपने क्षेत्र मे प्राइमरी स्कूल मौजूद था और ६८ ५२ प्रतिशत क्षेत्रो को इस सुविधा का लाभ उठाने के लिए १ कि० मी० की दूरी तय करनी पडती थी। शेष १६ ५५ प्रतिशत क्षेत्रों के लिए २ कि०मी० की दूरी तक भी प्राइमरी स्कूल की सुविधा मौजूद नहीं थी। जनसख्या के अर्थ मे इनमे से ६३ प्रतिशत जनसंख्या के अपने आवासीय क्षेत्र में प्राइमरी स्कूल मौजूद है और ८२ ९९ प्रतिशत जनसख्या को इस सुविधा का लाभ उठाने के लिए १ कि०मी० की दूरी तय करनी पडती है। ८ ३ प्रतिशत जनसंख्या के लिए यह सुविधा २ कि०मी० की दूरी तक भी उपलब्ध नही है। सभी आवासीय क्षेत्रो की तुलना मे विभिन्न दूरियो तक अवासीय क्षेत्र और उनमे उपस्थित जनसख्या के लिए प्राइमरी स्कूल काफी कम है।

राज्य-स्तर पर स्कूलीय सुविधा का विश्लेषण

उपलब्ध सर्वेक्षण आकडो से यह पता चलता है कि अधिकतर राज्यों और केन्द्र-शासित प्रदेशो मे लगभग एक ही तरह की स्कूलीय सुविधा उपलब्ध कराने के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया है। गुजरात, हरियाणा, मणिपुर, नागालैण्ड, पजाब, चडीगढ और दिल्ली के ९८ प्रतिशत ग्रामीण जनसख्या के लिए १ कि० मी० की दूरी मे ही स्कूल की सुविधा उपलब्ध है। अन्य राज्यो की तुलना मे पजाब राज्य की जनसख्या के उच्चतम प्रतिशत भाग के लिए १ कि० मी० की दूरी तक स्कूल की सुविधा उपलब्ध है, निम्नतम स्थान सिक्किम (६४.३४) और फिर हिमाचल प्रदेश (७१ ५४) का है। केन्द्र-शासित प्रदेशो मे चंडीगढ़ का स्थान सर्वोत्तम (१०० प्रतिशत) है। वहां प्रत्येक १ कि०मी० की दूरी पर स्कूल की सुविधा है। इन्हीं प्रदेशो में अरुणाचल प्रदेश का स्थान निम्नतम (६०.६९) और फिर मिजोरम (७४ ६३) का है।

शिष्य-अध्यापक अनुपात

प्राइमरी स्तर पर लगभग शिष्य-अध्यापक अनुपात ४१ है। राजस्थान मे शिष्य-अध्यापक अनुपात उच्चतम (५९) है और मणिपुर में निम्नतम (१७) है। आन्ध्र-प्रदेश, गुजराज, कर्नाटक, राजस्थान और दादरा व नागर हवेली मे शिष्य-अध्यापक अनुपात ५० या इससे अधिक है। अन्य राज्य और केन्द्र-शासित प्रदेश जहा कि शिष्य-अध्यापक अनुपात चालीस से अधिक है वे है—बिहार, केरल, महाराष्ट्र, पंजाब और तमिलनाडु।

कक्षाएं एक से पांच मे नामाकन

तीसरे अखिल-भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (१९७३) के समय कक्षा एक से पाच मे नामाकन की सख्या ६,०९,९७,८२० पाई गई। जबकि आज यही सख्या बढकर ६,८६,०२,२२४ तक पहुच गई है। वर्ष १९७३-७८ मे एक से पाच कक्षाओ के नामाकन के प्रतिशत मे १२ ४७ की वृद्धि हुई है, इसमे लडकियो का नामांकन ३८.२७ प्रतिशत है।

लड़कियों का नामांकन

कक्षा एक-पाच मे २,६२,५१,२३० लडकिया हैं और वे इन कक्षाओ मे कुल नामाकन के ३८ २ प्रतिशत प्रतिनिधित्व करती है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रो के अनुपात प्रतिशत क्रमश: ३६.१८ और ४४ ७५ है। तीसरे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (१९७३) के समय कक्षा एक-पाच मे लड़कियो का प्रतिशत ३७ ७३ था। वर्ष १९७३-७८ मे मध्य प्रदेश, चडीगढ और दिल्ली को छोडकर सभी राज्यो और केन्द्र शासित राज्यो मे लड़कियों के प्रतिशत मे वृद्धि हुई है। अन्य राज्यो की तुलना मे मेघालय का प्रतिशत उच्चतम (४९.३३) और राजस्थान का निम्नतम (२४ ३३) है। केरल, मेघालय, अंडमान और निकोबार द्वीप, चडीगढ, दिल्ली, गोआ, दमन व द्वीप और मिजोरम मे लडकियो का प्रतिशत ४५ से अधिक है। ग्रामीण राज्यों मे बिहार (२७ ५४), हरियाणा (३०.०९), जम्मू व कश्मीर (३१.०७), मध्य प्रदेश (२८.०७), राजस्थान (१९.०४), उत्तर प्रदेश (२८.२५), और अरुणाचल प्रदेश (३१.६१), में लडकियों का प्रतिशत देश के कुल नामाकन प्रतिशत के अनुपात में कम है।

शहरी क्षेत्रों मे लड़कियों के नामांकन का प्रतिशत बिहार मे (४०.०१), गुजरात (४४.६३), मध्यप्रदेश

(४२.८४), नागालैंड (४४ ०३), उडीसा (४३.९०), राजस्थान (३८ ८४), सिक्किम (४३.९५), उत्तर प्रदेश (४१.५१), और अरुणाचल प्रदेश (३८ ७५) में देश के कुल नामांकन प्रतिशत के अनुपात मे कम है। नागालैंड के अतिरिक्त सभी राज्यो व केन्द्र शासित राज्यों मे लडकियो के प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों मे अधिक है।

प्राइमरी गणित के लिए पुस्तिका

कक्षा एक से पाच के प्राइमरी गणित के लिए एक अध्यापकों की पुस्तिका तैयार करने के निमित्त अक्टूबर मास की ४ से ७ तारीख तक एन सी.ई आर टी. द्वारा विज्ञान और गणित पर एक वर्कशाप का आयोजन किया गया। वर्कशाप मे छह सकाय सदस्यो के अलावा तीस सदस्यों ने भाग लिया जिनमें उस विषय के विशेषज्ञ, विधि विशेषज्ञ और अनुभवी अध्यापक सम्मिलित थे।

वर्कशाप मे प्रथम प्रारूप के लिए सामग्री एकत्र तैयार की गई जिसमे गणित से सम्बन्धित उद्देश्य, अध्यापन-शिक्षा, प्राप्ति के सिद्धात, बच्चो की प्रेरणा के लिए महत्वपूर्ण सुझाव, मौलिक कार्य और ड्रिल सम्मिलित थे। सख्या पर अध्यापन, भिन्न पर अध्यापन और दशमलव पर अध्यापन के लिए दो नमूने की इकाइयां बनाई गई। विभिन्न स्रोतो से ऐतिहासिक सूचना, पहेली, विचारणीय प्रश्न, मनोरजन गणित पर अतिरिक्त सामग्री एकत्र की गई।

पर्यावरणीय अध्ययन पर वर्कशाप

मणिपुर, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, असम, दिल्ली, राजस्थान, पजाब और बिहार से बहुत से गणमान्य व्यक्तियों ने प्राइमरी स्तर पर पर्यावरणीय अध्ययन के क्षेत्र में गणमान्य व्यक्तियो के लिए आयोजित एक कार्यशील वर्कशाप मे भाग लिया। उत्तरी और पूर्वी क्षेत्रो के लिए यह वर्कशाप इलाहाबाद में अक्टूबर मे आयोजित की गई।

डी ई एस एम वर्कशाप का प्रमुख उद्देश्य उसमे भाग लेने वाले व्यक्तियों को पर्यावरणीय अध्ययन के अध्यापन की ओर प्रशिक्षित करना था जिससे कि वह अपने क्षेत्र में आवश्यकतानुसार सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन कर सकें। पर्यावरणीय अध्ययन के माडल एक्टीविटी शीट पर उन्होने कार्य किया और कक्षा तीन से पाच तक के पाठ्यक्रम इकाइयो के लिए क्रियाकलाप बनाया।

पी ई सी आर परियोजना के अंतर्गत स्थितिनिर्धारण

राजकीय प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास विभाग (एस पी सी डी सी) और सुपरवाइजरी टी टी आई के स्थिति-निर्धारण के लिए अक्टूबर १९८२ में अनेक कार्यक्रमो का आयोजन किया गया।

पर्यावरणीय अध्ययन और स्वास्थ्य शिक्षा, भाषा, गणित एस यू. पी डब्ल्यू और रचनात्मक अभिव्यक्ति पर आयोजित स्थिति निर्धारण कार्यक्रमो मे विभिन्न राज्यो से ९५ व्यक्तियो ने भाग लिया।

कार्यक्रम मे मुख्य रूप से ध्यान सुपरवाइजरी टी टी. आई की भूमिका और प्राइमरी शिक्षा पाठ्यक्रम के पुन:स्थापन (पी ई सी आर) परियोजना, अध्यापन-शिक्षा प्राप्ति योजना, विद्यार्थियो के नामांकन की योजना, शिक्षाप्रद सामग्री के परीक्षण के विकास और योजना के कार्यान्वियन मे आने वाली समस्याओ पर ध्यान दिया गया।

शैक्षिक अभिलेखागार की स्थापना

शिक्षा के क्षेत्र मे कार्यरत अनुसधानकर्ताओ के लिए एक वरदान "शैक्षिक अभिलेखाकार" होगा जो

कि एन सी ई आर टी द्वारा स्थापित किया जा रहा है। भारत मे शिक्षा से सम्बन्धित सभी प्रमाणित सामग्री को क्रमानुसार इस अभिलेखागार मे रखा जाएगा। आशा है कि इससे राष्ट्रीय शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर मूल अनुसधान का विकास होगा।

राष्ट्रीय और राज्य अभिलेखागार तथा राष्ट्रीय पुस्तकालय से दस्तावेजो की फोटो और जिरोक्स कापिया प्राप्त की जाएगी और उनकी ही देख-रेख में इन्हे सूचीबद्ध किया जाएगा।

शिक्षा के प्रत्येक पहलू पर "शैक्षिक अभिलेखागार" दस्तावेज एकत्र करेगा। इसके अन्दर सन् १८५४ से लागू सिद्धान्त और नीति पर दस्तावेज, कानून, समिति और आयोग की रिपोर्ट और सस्तुतिया, मुख्य जन-सस्थाओं के प्रस्ताव और विषय से सम्बन्धित निजी कागज सम्मिलित होगे।

मूल्यांकन किसके लिए ?

इस तथ्य से बहुत कम अध्यापक अवगत है कि परीक्षाओ मे छात्र के कार्य का मूल्याकन करते समय उनका दृष्टिकोण समाकलानात्मक होना चाहिए जिससे कि उसकी शिक्षा प्राप्ति और विकास मे सुधार हो सके। अधिकतर अध्यापको के लिए मूल्याकन का अर्थ केवल "छात्रों की उपलब्धि पर अपना निर्णय देना और उनके कार्य की निर्धारित मापदण्ड अथवा कार्य के अपेक्षित स्तर से तुलना करना है।" अध्यापको के इस दृष्टिकोण के कारण बच्चो पर, विशेपकर प्राथमिक अवस्था मे नकारात्मक प्रभाव पडता है। अनेक बार की असफलता और अपेक्षा से कम उपलब्धि उन्हे इस हद तक निराश कर देती है कि उनकी नकारात्मक आत्मधारणा बन जाती है। राष्ट्रीय शैक्षिक सस्थान (एन.सी.ई आर टी) के मापन व मूल्याकन विभाग के अध्यक्ष डा० प्रीतम सिह द्वारा किए गए अध्ययन प्राथमिक स्कूल मे छात्रों का मूल्याकन से एक नई जानकारी उभर कर सामने आई है। यह जानकारी मूल्याकन की न्यायायिक प्रणाली को प्रस्तुत करती है और एक व्यवस्थित व वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा उसके पुनर्स्थापन के लिए तर्क प्रस्तुत करती है। उन्हे आशा है कि इस नई प्रणाली द्वारा बच्चे के सम्पूर्ण विकास मे मदद मिलेगी।

इस अध्ययन द्वारा सामान्य रूप से सुधार के लिए सिद्धात और प्रयोग का सामजस्य यत्रो की गुणता के निर्धारीकरण, मूल्याकन की विभिन्न तकनीको और उससे सम्बन्धित विभिन्न उपकरणो के महत्व और विभिन्न शिक्षा-प्राप्ति से उनके सम्बन्धो पर जोर दिया जाता है। यह मूल्याकन का एक विकास-प्रेरित माडल भी प्रस्तुत करता है। परिचालन शैली के लिए यह एक निर्देशीय उद्देश्य भी निर्धारित करता है।

सिद्धान्त को प्रयोग स्तर पर लाने के लिए अध्ययन यह जानकारी प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार मूल्याकन पर बनाए गए नियमो को सूत्रबद्ध किया जा सकता है और मूल्याकन सुधार पर बनाई गई योजना को कार्यान्वित, विकसित और प्रसारित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्राथमिक अवस्था पर सुधार लाने के लिए योजना के विकास के लिए कुछ निर्देश प्रस्तुत किए जाते है।

भारत सरकार ने अपनी छठी पचवर्षीय योजना मे प्राथमिक शिक्षा को सर्वोत्तम स्थान दिया है और इस ओर भरसक प्रयास किए जा रहे हैं कि अगले दस वर्षों मे सभी क्षेत्रो मे प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध हो सके। इस बात को ध्यान मे रखते हुए यह आशा की जाती है कि छात्रो की कार्यक्षमता का मूल्यांकन करने मे राजकीय एजेन्सिया और सामान्य रूप से अध्यापक इस अध्ययन को एक 'प्रायोगिक गाइड' के रूप मे उपयोगी पाएंगे। □

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष ८ अंक २ अप्रैल १९८३

इस अंक में

कक्षा में मान स्पष्ट योजना
—डा० एन० के० जंगीरा ... ३

स्कूली छात्रों के लिए रचनात्मक प्रौद्योगिकी
—यूरी स्टोल्यारोव ... ७

विकलांग बालक की शिक्षा
—डा० आर० पी० सिंह ... १३

सेवाकालीन अध्यापकों का प्रशिक्षण
—डा० कमरुद्दीन ... १६

प्रारंभिक वर्षों में प्रत्ययों की शिक्षा
—के० वी० रथ ... १८

विज्ञान प्रतिभा व प्राथमिक शाला में विज्ञान शिक्षण
—के० आर० भट्ट ... २२

जोड़ बाकी-
कक्षा १ से ३ तक के लिए
—नामदेव मस्की ... २४

प्राथमिक विद्यालयों में मातृ-भाषा शिक्षण
—स्नेहलता शुक्ल ... २६

समाचार और विचार ... ३०

अध्यापकों एवं शिक्षाविदों के सूचनार्थ

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
द्वारा प्रकाशित एक त्रैमासिक पत्रिका

प्राइमरी शिक्षक

में प्रकाशनार्थ

मौलिक, प्राथमिक स्तर पर स्कूली शिक्षा से सम्बन्धित गतिविधियों वाले लेख, नवीन प्रयोग तथा नवाचार और शिक्षकों के लिए अध्यापन सम्बन्धी शिक्षण सामग्री आमंत्रित है। प्रत्येक प्रकाशित सामग्री पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है।

स्कूल साइंस

स्कूल साइस, विज्ञान-शिक्षा की एक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका है जिसे राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् प्रकाशित करती है।

हमारे विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षा, इसकी समस्याएँ, सम्भावनाएँ और शिक्षक तथा छात्र के व्यक्तिगत अनुभवों पर परिचर्चा आदि के लिए स्कूल साइस एक मुक्त मंच है।

शैक्षिक पक्ष के अतिरिक्त इस पत्रिका में प्रेरणा देने वाले रूपक और विज्ञान समाचार होते हैं जो कि शिक्षकों और जिज्ञासु छात्रों को विज्ञान की सीमाओं से परिचित कराते हैं। स्कूल साइस द्वारा अन्य नियमित रूपकों (फीचर्स) मे प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की जीवनी प्रस्तुत की गई है। अब तक इस क्रम में जुलियन हक्सले, टी० आर० शेषाद्री, अमीदिओ एवोगाद्रो, जक मोनाड, लेव लेन्डो और वार्नर-हेसनवर्ग को लिया जा चुका है।

हम अनुभवी शिक्षकों और उनके छात्रो को स्कूल साइस में उनकी समस्याओं तथा उपलब्धियों आदि के विषय में लेख भेजने के लिए आमन्त्रित करते हैं। इसमें छात्रों के लिए एक भाग सुरक्षित है जिसके माध्यम से वे देश के अन्य भागो के शिक्षकों और छात्रो को सम्बोधित कर सकते है।

आप यह देखेंगे कि **स्कूल साइंस** शिक्षक और छात्र, सरक्षक और आश्रित सभी के लिए है। यह रुचिकर ढग से सीखने और सोचने के लिए प्रकाशित की जाती है। इसमे आपका सक्रिय सहयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं वांछनीय है।

कक्षा में मान स्पष्ट योजना

—डॉ० एन. के. जंगीरा
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली

शिक्षा के शैक्षिक महत्व के महत्वपूर्ण पहलू का सम्बन्ध अध्यापन मान मे है। यह महत्व सार्वलौकिक है क्योकि समाज का प्रत्येक सदस्य इसे अभिव्यक्त करता है। किन्तु जब इसके अध्यापन के सिद्धान्त का प्रश्न उठता है तो विचारो मे भिन्नता हो सकती है। यह उचित होगा कि हम अध्यापकों द्वारा उपयोग मे लाए जाने वाले अध्यापन मानों के परम्परागत सिद्धान्तो की ओर देखें, आज के सदर्भ में उनकी जांच करे और अगर वे उपयुक्त न ठहरे तो अध्यापन के नए तरीके इस्तेमाल मे लाए।

परपरागत मान एक धारणा, उद्देश्य और प्रवृत्ति है जिसे संस्कृति के माध्यम से प्रसारित किया जाता है। कुछ मान जैसे सत्य, उदारता और सौदर्य सार्वलौकिक है और प्रत्येक काल मे उनका महत्व है किन्तु अन्य मान जैसे कार्य मान, आर्थिक मान और जीवन मान का महत्व समय-समय पर बदलता रहता है। उपरोक्त तथ्य का आज के सदर्भ मे अधिक महत्व है क्योकि आज के बदलते जीवन के मूल्यो मे उन्हे बनाए रखना कठिन है। आने वाले समय में परिवर्तन की गति मे और अधिक तेजी आने की संभावना है। इन मानो को सोच समझ कर और स्वच्छन्द रूप से चयन करके उनके महत्व और उन पर कार्य करना होगा। क्या बालक इस सब के लिए तैयार हैं? बालक की ओर भी ध्यान दे। वह वास्तव मे कर्तव्यविमूढ़-सा है। स्कूल और घर में जो कुछ उसे पढ़ाया जाता है, उसका सब जगह, हर पल निरादर किया जाता है। घर पर उसे सत्य वचन बोलने की शिक्षा दी जाती है किन्तु तभी मा उससे बाहर आए आगन्तुक को यह कहने के लिए भेजती है कि उसका पिता घर में नहीं है जबकि वास्तव मे उसका पिता ही मौजूद होता है। अध्यापक जो समय पर आने की माग करता है स्वय बिना क्षमायाचना के देरी से आता है। एक पडित जो क्रोध शान्त रखने का उपदेश देता है, अपनी सेवा के बदले उचित दान नही मिलने पर गुस्से से भर उठता है। ऐसी वस्तुए जिनका प्रसार-गुणगान विज्ञापन के माध्यम से किया जाता है वे त्रुटिपूर्ण निकलती है। सदिग्ध तरीको से अपराध करने के बाद भी पडोसी आराम से रहते है। चुनाव के दौरान नेता लम्बे-चौड़े वादे करते है लेकिन चुनाव के बाद जब निर्वाचक गण उस नेता से मिलने जाता है तो वह उसे पहचानने से भी इन्कार कर देता है। बालक अपने चारो ओर मूल्यो का द्वन्द्व देखता है। क्या वह इस सघर्ष पर विचार करने के लिए तैयार है? अगर ऐसा नही है, तो उसे जीवन के एक आवश्यक, महत्वपूर्ण कौशल से वंचित रखा जा रहा है।

आमतौर पर बालकों को विकल्प मूल्य उदाहरण के माध्यम से सिखाए जाते है, बीते और उपस्थित समय के अच्छे उदाहरण को सम्मुख रख वयस्को द्वारा किया गया व्यवहार, किन्ही मूल्यों के लिए नाटकीय अथवा भावनात्मक तर्क द्वारा नियम और कानून द्वारा, धार्मिक मत की महानता और आत्मा की जागृति को प्रस्तुत कर उन्हें ग्रहण कराया जाता है। किन्तु इस परम्परागत दृष्टिकोण की भी अपनी सीमा है, वे बालक को जागृत अवस्था से ऊपर नही उठाते और न ही जीवन मे जिन वास्तविक मूल्यो का सामना करना पडता है उनके सम्बन्ध में जानकारी देते है। वे इस आशा पर आधारित है कि मूल्य पूर्व निर्धारित होते है। संसार के बदलते परिवेश और जीवन की

जटिलताओ और सम्बन्धित मूल्यों पर वे बालको को मूल्याकन क्रिया पर जानकारी नही दे पाते, जो कि आज के समय की मूलभूत आवश्यकता है।

शिक्षण मान के प्रतिपादन का अन्य विकल्प कौन-सा हो सकता है। मानाकंन स्पष्ट योजना मानांकन क्रिया पर बल देती है और एक अन्य विकल्प प्रस्तुत करती है। स्पष्टीकरण योजना का प्रमुख ध्येय बालक के मस्तिष्क में प्रश्न उठना, अपने जीवन को जाचना-परखना, अपने कार्यो और विचारो को इस उद्देश्य से जागृत करना कि वे इनका उपयोग अपनी जानकारी, उद्देश्य, भावनाए, आकांक्षाओ, प्रवृत्तियों, मान्यताओ आदि का स्पष्टीकरण करने में कर सकें। लेखक ने इन योजनाओं का इस्तेमाल प्राथमिक स्कूल से सैकडरी स्कूल के बालकों एव प्रशिक्षण पाने वाले भावी अध्यापको के लिए किया। परिणाम काफी उत्साहवर्धक रहे है।

स्पष्टीकरण प्रतिक्रिया

यह विशेष स्पष्टीकरण योजना बालक के करने और कहने की प्रतिक्रिया और प्रभाव पर आधारित है। अध्यापकों की प्रतिक्रिया और प्रभावकारी व्यवहार, बालको की विशेष समस्या और विचार वस्तु के प्रति विचारधारा को स्पष्ट करता है। निम्नलिखित दो घटनाओ की जाच करे और देखें कि एक कर्मठ अध्यापक छात्रों के प्रश्नों के प्रति कैसे अपनी प्रतिक्रिया दिखाता है।

घटना : १

छात्र . हमने एक सौर-कुकर खरीदा है।

अध्यापक यह तो बहुत अच्छा है।

घटना : २

छात्र · हमने एक सौर कुकर खरीदा है।

अध्यापक : क्या तुम्हें खुशी है कि तुमने सौर कुकर खरीदा है ? क्या तुम्हारे परिवार के लिए वह उपयोगी रहेगा ?

छात्र : हा, वह उपयोगी होगा।

अध्यापक . वह तुम्हारे परिवार के लिए किस प्रकार उपयोगी होगा ?

छात्र . उससे ऊर्जा की बचत होगी।

अध्यापक · यह तो बहुत अच्छा है। क्या तुम सोचते हो कि यह किसी अन्य रूप मे भी तुम्हारी मदद करेगा ?

छात्र . हा, इससे पर्यावरणीय प्रदूषण मे कमी होगी।

अध्यापक क्या तुम्हे वह अच्छा लगता है ?

छात्र · हा, मुझे अच्छा लगता है।

ऊपर दिए गए उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि अध्यापक की प्रथम प्रतिक्रिया सकारात्मक होते हुए भी, बालकों की जिज्ञासा को स्पष्टीकरण के लिए प्रेरणा नही देता। किन्तु दूसरे उदाहरण मे सभी प्रश्न बालक की जिज्ञासा की स्पष्टीकरण को प्रेरित करते है।

स्पष्टीकरण प्रतिक्रिया उपदेश, प्रवचन, आलोचना मूल्यांकन आदि भावो से मुक्त है। व्यस्क अच्छा, सही और ग्राही जैसे शब्दो से बचा रहता है। इसके विपरीत वह छात्र पर अपने आचरण की जाच करने का, और वह क्या चाहता है इसका निर्णय करने का उत्तरदायित्व डालता है। उसकी ऐसी परिस्थिति में जबकि उनमे कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न नही होती वे सही उत्तर नही दे पाते। ऐसी स्थिति मे भावना, प्रवृत्ति, मान्यता और उद्देश्यों का समावेश रहता है। इसमें विषय और समस्याए भी सम्मिलित हो सकती है। अध्यापकों द्वारा प्रभावकारी आचरण के रूप में इस्तेमाल मे लाई गई स्पष्टीकरण प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार है .

१. क्या यह वह वस्तु है जिसे तुम महत्व देते हो ?
२. क्या तुम उससे प्रसन्न हो ?
३. जब वैसा हुआ तो तुम्हें कैसा लगा ?
४. तुमने किसी अन्य विकल्प के सम्बन्ध मे सोचा ?
५ क्या तुमने काफी समय मे ऐसा महसूस किया है ?
६ क्या यह, वह वस्तु है जिसका तुमने चयन अथवा चुनाव किया है ?
७. क्या तुम उस धारणा पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हो ?

८ धारणा के सम्बन्ध मे कुछ अच्छी बाते क्या है ?

९. मै किस प्रकार तुम्हारी धारणा मे मदद कर सकता हू ?

स्पष्टीकरण प्रतिक्रिया के लिए उपयुक्त विषय कुछ इस प्रकार हैं .

१. सड़को और बसो मे काफी भीड रहती है।

२. सौर-कुकर मे पकाया गया भोजन काफी स्वादिष्ट होता है।

३. मैने अपने आंगन मे पांच पेड़ लगाए।

४. प्रौद्योगिक अपशिष्ट से नदियों का प्रदूषण बढता है।

छात्र प्रतिक्रिया शीट

जैसा कि पहले बताया गया है, पूर्व उपखण्ड मे रेखांकित स्पष्टीकरण योजना यह दर्शाती है कि इससे बालक उस सम्बन्ध मे और स्वतन्त्र रूप से सोचने-समझने मे वह सहायक होती है। प्रतिक्रिया शीट यहा यह अर्थ प्रस्तुत करती है कि ई. ई से सम्बन्धित कुछ वस्तुओं पर बालक को जानकारी होनी चाहिए। प्रतिक्रिया शीट बालको के सम्मुख बिना किसी डर और प्रेरित रूप से कुछ वस्तुए प्रस्तुत करती है। किसी विशेष समस्या पर प्रश्नो के एक सेट का बालक उत्तर देते है और फिर उन उत्तरो का छोटे-छोटे समूह के साथ विचार विमर्श करते है। इस प्रकार से तैयार की गई प्रतिक्रिया शीट ई ई. के क्षेत्र के विभिन्न विषयों और समस्याओ की ओर बालको का ध्यानाकर्षित करते है। प्रतिक्रिया शीट तैयार करने के लिए विभिन्न विषय और सामग्री ली जा सकती है। ई. ई. से सम्बन्धित किसी समाचार, साहित्यिक पुस्तक अथवा विवादास्पद विषय का चुनाव किया जा सकता है। वे उत्तेजक कथ्यों पर आधारित होते है।

आलोचनात्मक प्रासंगिक शीट

आलोचनात्मक प्रासंगिक शीट मे प्रत्येक सप्ताह पर्यावरण को सुधारने के लिए पूर्व सप्ताह मे बालक द्वारा किए गए कार्य की एक घटना की रिपोर्ट देनी होती है। सरक्षण, नष्ट होने से बचाव, अन्य में जागृति का विकास आदि। कागज के हाशिए पर, बालक को उसके द्वारा किए गए कार्य पर सोचने और उसके परिणाम पर मनन करने के लिए स्पष्टीकरण प्रश्न लिख सकता है। अगर छात्र अपनी आलोचनात्मक घटनाओ का स्वेच्छा से आदान-प्रदान करना चाहे तो वह उन्हे कक्षा में पढ सकता है। पढने के बाद उस पर विचार-विमर्श किया जा सकता है।

उद्घाटक प्रश्न

उद्घाटक प्रश्न अध्यापक के सम्मुख ई. ई सामग्री पर बालक की प्रवृत्ति, मान्यता और गतिविधियो का उद्घाटन करने का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। उद्घाटन प्रश्नो के कुछ नमूने इस प्रकार हो सकते है :

१ बगीचे मे मेरे दोस्त .

२. मै कभी फूल नही तोड़ता क्योंकि.

३. मैं खुले में अपशिष्ट नही फेंकता क्योकि .

४ कुछ व्यक्ति पर्यावरण को नष्ट करने पर तुले है जबकि

५ अगर पर्यावरण को सुधारने के लिए मुझसे समूचा जीवन अर्पण करने के लिए कहा जाए. .

समय की बचत को देखते हुए उद्घाटक प्रश्न काफी उपयोगी रहते है। कथन को पूरा करने के लिए अध्यापक प्रत्येक कागज अथवा ब्लैकबोर्ड पर प्रश्न लिख सकता है। इससे बालको को चिंतन करने का अवसर प्राप्त होता है। कक्षा मे कुछ पत्रो को अध्यापक उसके लेखक का नाम बताए बिना पढ सकता है और अगर किसी छात्र को उस बिना नाम के लेखक से कुछ पूछना हो तो वह अपना प्रश्न प्रस्तुत कर सकता है।

छात्र के रूप मे रोल अदा करना

विशेष परिस्थिति मे 'छात्र के रूप मे रोल अदा करना' अपने व्यक्तिगत कार्य को प्रदर्शित करने का सुअवसर प्रदान करता है। बालक नाटक और नकल उतारने में आनन्द का अनुभव करते है। स्थिति को देखते हुए अध्यापक पात्र का निर्धारण कर सकता है किन्तु यह आवश्यक नही। विवादास्पद और भ्रमपद

परिस्थिति रोल अदा करने का सुअवसर प्रदान करती है। इसका एक नमूना नीचे दिया गया है।

समुदाय के सदस्य यह अनुभव करते हैं कि उनमें से कुछ व्यक्ति बाहर सडक पर अगीठी, कोयला या स्टोव रख देते है जिसके धुए से वायु प्रदूषित होती है। एक किसान ने एक ऐसी वैज्ञानिक अगीठी बनाई है जिसमे चिमनी के माध्यम से धुआ ऊपर की ओर निकल जाता है। समुदाय के बहुत से सदस्यों ने इसे अपनाया भी है। कुछ घरेलू महिलाए आर्थिक रूप से सक्षम होने पर भी अपने समुदाय के लोगो की बातो की ओर ध्यान नही देती है। एक मीटिंग मे यह निर्णय लिया गया कि समुदाय के चार सदस्य रसोई-घर मे नई अगीठी इस्तेमाल करने के लिए दो घरेलू-महिलाओं से सम्पर्क करेंगे।

आपमे से जो चार सदस्य जो एक टीम के रूप मे घरेलू महिलाओ को सम्पर्क करना चाहे वे और जो परेशान करने वाली घरेलू महिला बनना चाहे वे अपना नाम स्वेच्छा से दे। अध्यापक ने कक्षा के छह अध्यापको को आगे आकर अपना-२ रोल अदा करने के लिए कहा। छह छात्रो मे प्रत्येक को अपना-अपना रोल अदा करने के लिए कहा गया। कक्षा के अन्य छात्र दर्शक के रूप मे देखते रहे। प्रत्येक के रोल अदा करने के बाद, निम्नलिखित प्रश्नों को सम्मुख रख विचार-विमर्श किया जा सकता है:

१ तुम्हें एक्टर बनते समय कैसा लगा?
२ दर्शक के रूप मे देखने के बाद तुम उस पात्र का रोल किस प्रकार अदा करते?
३ क्या यह सब तुम्हारे वास्तविक जीवन मे सहायक होगा?
४ परिस्थिति से हम क्या सीखते है?

विचार-विमर्श के दौरान अध्यापक प्रथम भाग से प्राप्त प्रतिक्रिया का स्पष्टीकरण करेगा। यह कुछ स्पष्टीकरण योजनाए है: स्पष्टीकरण अध्यापन योजना को प्रभावकारी बनाने के लिए आवश्यक है कि अध्यापक आत्मविश्वास का वातावरण बनाए रखे, पर्यावरण विषय पर छात्रों के भिन्न-भिन्न विचारो का आदर करे और छात्रों पर अपने विचार आरोपित न करें। असार्वजनिक अथवा लिखित व्यक्तिगत विचार को तभी सार्वजनिक अथवा विचार-विमर्श का विषय बनाया जाए जबकि उस छात्र की अनुमति प्राप्त हो। □

स्कूली छात्रों के लिए रचनात्मक प्रौद्योगिकी

—यूरी स्टोल्यारोव

(सोवियत एजुकेशन पत्रिका प्रोस्पेक्ट, जून १९८१ के सौजन्य से)

किसी भी व्यक्ति जिसने रचनात्मक प्रौद्योगिकी का अनुभव किया है भले ही कुछ समय पहले वह उसकी अतुलनात्मक प्रेरणा और खोज भावना को भुला नही पाया होगा। यह खोज भले ही सामान्य रही हो किन्तु उसके लिए नई है। वह भले ही किसी अन्य व्यक्ति द्वारा तैयार किया गया उपभोक्तामाल हो किन्तु वह उसकी अपनी ही खोज कहलाएगी।

रचनात्मक इंजीनियरी एक छोटा किन्तु अल्प-आयु के लोगो मे तकनीकी विचारधारा के विकास मे एक महत्वपूर्ण कदम है। इससे बहुत से जाने माने डिजाइनर, अन्वेपणकर्ता और वैज्ञानिको को आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के शिखर पर पहुचने मे मदद मिली है।

शुरूआत

सोवियत-रूस मे बालको के लिए रचनात्मक इजीनियरी की शुरूआत आन्दोलन काल के बाद के समय में हुई। वर्ष १९२० के प्रारभिक काल मे वर्कमैन क्लब के प्रागण अथवा उसके आस-पास की फैक्टरियो और वर्क्स मे अनेक इकाइयों वाले महत्वपूर्ण पद बनाए गए। उसके नेता आमतौर पर अल्प आयु के जनसाधारण-प्रेरित कार्यकर्ता थे।

इस सबसे पथप्रदर्शको को प्रौद्योगिकी की शुरूआत करने मे सहायता मिली। सम्भावी इजीनियरों को अपने से बड़ो से मदद मिली मशीन और उपकरण प्राप्त किए गए, और अनुभवी व जानकार निर्देशकों को भरती किया गया। प्रथम पथप्रदर्शक पत्रिका, बाराबान (दी ड्रम), और उनके प्रथम अखबार जून्यजीस्पार्क (जूनियर स्पर्टिकस्), ने व्यक्ति विशेप के कार्य और तकनीको के ब्लू-प्रिन्ट प्रकाशित कर इजीनियरी मे रुचि जागृत की। प्रत्येक इकाई अथवा पद पर तकनीकी विचारधारा वाले बालक थे जो कि एकत्र होकर अपनी-अपनी रुचि को सम्पन्न करने के लिए नए-नए उपाय खोजते। वास्तव में वही प्रथम इजीनियरिग रुचि वाले वर्ग की शुरूआत थी।

ज्यो-ज्यों पथप्रदर्शको के सस्थान का विकास हुआ, क्षेत्रीय और शहर के पथप्रदर्शक क्लब और सोसायटी की स्थापना हुई। इनमे इजीनियरिग वर्कशाप और पूरे समय के लिए निर्देशको को भी सम्मिलित किया गया। वर्ष १९२३ की शुरूआत मे मास्को की पथप्रदर्शक सोसायटी की इंजीनियरिग समूह और वर्कशाप मे ३००० कार्यशील सदस्य थे। वर्ष १९२२-१९२५ मे लेनिन की विद्युतीकरण योजना के प्रभाव मे इलैक्ट्रिकल-इजीनियरिग समूह का व्यापक विकास हुआ। तकनीकी कार्य मे जो भी बालक कार्यरत थे, उनके समान ही इन अल्पव्यस्क इलैक्ट्रिकल इंजीनियरो को उपकरण और औजार जैसी आवश्यक सामग्री भी उपलब्ध नही थी, वास्तव में फैक्ट्री मे ही इन वस्तुओ की कमी थी। इस कठोर और तैयार रचनात्मक काल मे ही भविष्य के डिजाइनरो, आविष्कारको, औद्योगिक अविष्कारक, उद्योग और विज्ञान के नेताओं ने जन्म लिया।

वर्ष १९२० की शुरूआत में सोवियत वायु दहन के विकास का व्यापक प्रचार हुआ और वायुयान इजीनियरिग के प्रचार और वायुयान की ट्रेनिग के लिए सोसायटी आफ-फ्रेन्डस ऑफ नागरिक-वायुयान

चालन की एक स्वेच्छा सस्था बनाई गई। इजीनियरिंग के इस नए विभाग को पथप्रदर्शको और स्कूली-छात्रो ने शीघ्र ही ग्रहण किया और वे उत्साहवर्धक वायुयान चालक बन सके। जूनिअर एयरक्राफ्ट माडलिग समूह मे बालकों को गर्म वायु के गुब्बारे, डिब्बे की पतग, कागज के ग्लाइडर और साधारण वायुयान के मॉडल बनाने होते थे। बाद मे ये सब पथप्रदर्शक कैम्प के एक प्रतिदिन क्रम का अग बन गए, और रचनात्मक इजीनियरिंग मे रुचि लेने वाले बालकों मे एयर क्राफ्ट मॉडलिग बहुत अधिक प्रचलित और लोकप्रिय हुआ। साथ ही अनेक बालको और व्यस्क शौकीन रेडियो कम्यूनिकेशन की ओर भी आकर्षित हुए।

वर्ष १९२६ के अक्तूबर माह मे केन्द्रीय व्यूरो ऑफ अल्पव्यस्क पथप्रदर्शको ने देश में पहला बालको का इजीनिअरिंग केन्द्र स्थापित किया। यह अपने आप मे एक नई स्थापना थी जिसके कि नेता जानते थे, कि उसको चलाने के लिए शक्ति, एक साथ मिलकर कार्य करने और बालकों की सेवा मे ही प्राप्त होगी। इसका पहला कदम था बालकों द्वारा बनाए गए मॉडल की प्रदर्शनी आयोजित करना और वायु यान मॉडलिग, इलैक्ट्रिल और रेडियो इजीनिअरिंग और फोटोग्राफी में पाठयक्रम की व्यवस्था करना। मौखिक और लिखित रूप मे सूचना निरन्तर उपलब्ध होती रहती थी, जूनिअर-इजीनिअरों के कार्य की प्रदर्शनी आयोजित की जाती, और प्रौद्योगिकी के विषयो पर वाद-विवाद किया जाता। इसकी स्थापना और केन्द्र के सचालन के पीछे शक्ति का माध्यम कोनसोमल और पथप्रदर्शकों के कार्यकर्ताओ, इजीनिअरो और तकनीशिअनो, और व्यवसायी अध्यापको के एक छोटे से भाग का स्वेच्छा से प्रयास था।

वर्ष १९५० और १९६० मे सोवियत जूनिअर टैक्नोलॉजिस्ट आन्दोलन मे रेडियो इंजीनियरिंग, ओटोमेशन, साइबरनैटिक्स और बायोनिक्स अभिरुचि के प्रमुख केन्द्र के रूप में उभर कर आए। उनकी बहुत-सी गति विधिया समाज के हित मे थीं, किशोर तकनीज्ञों का कार्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए लाभकारी था, वही प्रवृत्ति आज भी प्रचलित है किन्तु उसके कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ है। अनेक कनिष्ठ तकनीज्ञ, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी विकास के क्षेत्र मे कार्यरत ऑल-यूनिअन यूथ मूवमेन्ट मे प्रशिक्षित सदस्य है, और वे सभी औद्योगिक और प्रौद्योगिकी विकास मे सहयोग कर सकते है।

प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ और बडी-बड़ी मशीनो की सरचना में उच्च गति और ऊर्जा के शक्तिशाली रूप मे, कनिष्ठ रचनात्मक प्रौद्योगिकी को सर्वोत्तम प्रशिक्षण समझा जाता हे।

यह प्रशिक्षण जो कि समय का पारखी रहा है, वह समूची व्यवस्था का संगठित भाग और बालकों व किशोरो के लिए रचनात्मक प्रौद्योगिक शिक्षा की स्वैच्छिक प्रणाली है। प्रश्न यह है कि आज उस व्यवस्था का सोवियत संघ मे क्या प्रारूप है? प्रौद्योगिक समूह द्वारा किया गया कार्य और उसकी प्रवृत्ति निर्भर करती है सदस्य की आयु, प्रशिक्षण और अभिरुचि पर। प्राथमिक स्कूल के बालक सभी मशीनो के विभिन्न रूपो मे रुचि रखते हैं, इस कारण उस स्तर के तकनीकी मॉडलिग समूह प्रशिक्षक के निर्देशन मे साधारण मॉडल वायुयान, जहाज, गाडी अथवा रॉकेट बनाते हैं। इससे बड़ी आयु के स्कूली बालक अव्यवसायी रेडियो, इलैक्ट्रिक इजीनियरिंग, इलैक्ट्रोनिक्स और प्रतिस्पर्धा मॉडल के विभिन्न रूपों में रुचि रखते है। वरिष्ठ स्कूली बालक, गाडियों के वास्तविक प्रारूप बनाने और सभी प्रकार के औद्योगिक प्रशिक्षण प्रयोग की और आकर्षित होते है। इजीनियरो और वैज्ञानिको की मदद से वे दक्षता इजीनिअरिंग मे प्रचुर मात्रा मे मौलिक कार्य करते है अथवा औद्योगिक, अनुसंधान और अन्य सस्थाओ के लिए अनुसंधान करते है। १४ से १७ वर्ष की आयु के किशोर छोटी क्षमता की गाडी, मिनी-मोटर-स्कूटर, नाव, मोटर वाली स्लेज, हैन्ड ग्लाइडर और ग्लाइडर का प्रारूप बनाने और निर्माण करने मे रुचि रखते हैं। गांव के बालक निम्न स्तर के कृषिगत उपकरण के निर्माण की ओर आकर्षित होते है, जिनका इस्तेमाल स्कूल के फार्म अथवा कृषि जन्य प्रशिक्षण क्षेत्र के रूप मे इस्तेमाल किया जाता है। परिणामस्वरूप खेती मे उपयोग के लिए कल्पनात्मक कम भार के ट्रैक्टर और मोटर-चालित हल, हैरो और सेंचक, व विभिन्न इलैक्ट्रानिक उपकरणो का निर्माण किया जाता है।

सरल से जटिल की ओर

ऐनेम गाव, क्रैसनोदार क्षेत्र मे सैकण्डरी स्कूल के दक्षता इजीनिअरिंग समूह ने इस क्षेत्र मे काम की शुरुआत छोटे-छोटे साधारण खेती के उपकरण, हाथ मे पकडने वाले कल्टीवेटर, फावडा, मूड-हल, बीज-ड्रिल आदि के निर्माण से की। वे मानक और परम्परागत न होते हुए भी बालको के हाथो और छोटे-आकार के खेतिहर क्षेत्रो के लिए उपयोगी थे।

मानक मॉडलो और डिजाइन पर शुरूआत करके वे उन्हे आवश्यकतानुरूप प्रारूप देते हुए मूल प्रारूप की ओर अग्रसर हुए। बालक अपने मे व्याप्त रचनात्मक प्रवृत्ति का पता काफी समय बाद लगा सके। केवल सात अथवा आठ वर्षों के अल्प समय में, इस साधारण गाव के स्कूल की वर्कशाप मे पचास मानक से भी अधिक और खेतिहर औजारो, सलग्नों और मशीनरी के मौलिक प्रारूप बनाए गए और यह सभी कम भार के उपकरण दिमाग में एक निश्चित उद्देश्य को सामने रख कर बनाए गए।

इन छात्रो की आविष्कारो और दक्षता इजीनिअरो की अपनी एक सस्था है। यह वयस्को से इस रूप मे भिन्न हैं कि इसमें सदस्यता की फीस तकनीकी विचार दक्षता सुझाव और बालकों की अपनी रचनात्मक क्षमता के रूप में दी जाती है। वे इजीनियरी सम्बन्धी समस्याओ की रूपरेखा बनाना, विचित्र यत्रावली का प्रारूप बनाना, प्रसारणों की गणना और अपने नीले-नक्शे को वास्तविक मशीनरी का रूप देने की जानकारी प्राप्त कर चुके है। कार्यशील वातावरण के संयोजन मे यह गांव दक्षिणी रूस के क्युबन क्षेत्र के व्यापक फार्म के खेतों के बीच मे है जहां पर बहुतो के अभिभावक भी कार्यरत है, उनके उपयोग के लिए उर्वरक भूमि प्रस्तुत की गई है जिससे कि उनके स्कूल के रचनात्मक कार्य की उन्नति तेजी से हुई है।

स्कूल डिजाइन ब्यूरो के नेता ने कहा हम चाहते थे कि हमारे स्कूल का खेतिहर प्रशिक्षण क्षेत्र भी यंत्रचालित हो, जिससे कि उस पर किया गया कार्य हमारे अभिभावको के वास्तविक फार्म पर किए गए कार्य जैसा हो। इस कारण हमने अपने हैरो, कल्टीवेटर और रिजर बनाए। इसके पश्चात रीपर और काटनवाली मशीने बनाई गई जो कि सूरजमुखी और मक्का की खेती के लिए उपयोगी थी।

लगभग पचास कृषिगत औजार, यत्रावली और मशीन जिनका कि उन्होने निर्माण किया उनमे से तीस के लगभग ऐनेम के छात्रो द्वारा ही आविष्कार अथवा विकास किया गया। यह गणना प्रभावकारी प्रतीत होती है, किन्तु इसमे लगे मानसिक और शारीरिक श्रम, प्रयास और रचनात्मक विचार को नही भूलना चाहिए।

स्कूल के प्रशिक्षक का कहना है कि "एक समय था जबकि हमारे नौजवान विश्वास ही नही करते थे कि वे किसी यत्रावली पर सुधार भी कर सकते है, प्रारूप ही नही वे कुछ नया भी कर दिखा सकते है। किन्तु आज रचनात्मक कार्य बालको के जीवन का अभिन्न अंग बन गया है।"

यहा पर जूनियर इंजीनियरो का समाज काफी बडा है, उसमें अस्सी सदस्य है, जिसमे लगभग एक तिहाई लडकिया शामिल हैं। प्रौद्योगिकी मे रुचि रखने वाले समूह मे लडकिया उत्साही सदस्य के रूप मे सामने आई हैं, वे नई मशीन के प्रारूप पर लड़को के साथ मिलकर काम करती है। यह स्कूल के रचनात्मक संस्था की जागृत व्यवस्था वे कारण सभव हो पाया है। इसमे प्रारूप, यात्रिक, मरम्मत और प्रौद्योगिक सूचना टीम और एक सप्लाई ग्रुप भी सम्मिलित है। इस व्यवस्था के कारण स्कूल का कोई भी छात्र अपनी रुचि का कार्य प्राप्त कर सकता है। सातवी, छठी और पाचवी कक्षा के छात्र अपने स्कूल के वरिष्ठ छात्रों के साथ एक ही पैमाने पर काम करते है।

ऐनेम स्कूल के बालको ने लेखक को बताया कि वे अपनी उत्तम मशीनो का एक क्रम मे उत्पादन की इच्छा रखते हैं। क्यों? पहला, वे अपने स्कूल की फार्मिग टीम जो कि स्कूल के कृषिगत प्रशिक्षण प्लाट पर गर्मियो की छुट्टियो मे कार्य करती है उसे आधुनिक उपकरण उपलब्ध करा सके दूसरा, वे कुछ उन स्थानीय स्कूलो की मदद कर सके जो कि अपने लिए मशीन निर्माण करने की इस स्थिति तक नही पहुंच पाए है। यह एक महत्वकाक्षी योजना है जिसके

क्रियान्वयन के लिए उचित तकनीकी सुविधाओ का उपलब्ध होना आवश्यक है। ऐनैम मे बालको को क्या सुविधा उपलब्ध है ? उन बालको के पास केवल अपने स्रोत और स्कूल की वर्कशाप है जिसमें कि अधिक संख्या में टर्निंग और पेच काटने वाली लेथ, ड्रिलिंग और मिलिंग मशीन, वैल्डिंग गिअर और इंजीनियरी के विभिन्न उपकरण उपलब्ध है।

क्रम मे उत्पादन की योजना मे, इस अवस्था की प्रायोगिक उपादेयता को प्रारूप बनाने वाले की पराकाष्ठा समझा जा सकता है। प्रारूप ब्यूरो और प्रौद्योगिक फैक्ट्रियों मे इसी प्रकार काम किया जाता है, और अगर मूल प्रौद्योगिक विचार से अन्तिम उत्पादित वस्तु के विकास की प्रक्रिया एक ऐसे क्रम मे चलती है जो कि अधिक जटिल होता है, तो वह सैद्धान्तिक रूप मे एक समान होता है।

किन्तु अगर उस वस्तु का व्यापक स्तर पर उत्पादन किया जाता है तो वहा रचनात्मक प्रौद्योगिक क्रिया समाप्त हो जाती है और प्रारूप बनाने वाले को अन्य परियोजना पर काम शुरू कर देना चाहिए। यहां पर भी, ऐनैम के बालक रचनात्मक प्रौद्योगिकी के सिद्धान्तो का पालन करते है, वे अपने भविष्य के प्रयास को उपस्थित यन्त्रावली के सुधार पर केन्द्रित करना चाहते है, और उनका उपयोग समसामयिक हल चलाने, जोतने और बीज बोने व खेती की अनेक मशीनों के प्रारूप बनाने मे करना चाहते हैं।

यह तो बालको का कार्य है। किन्तु प्रशिक्षको के सम्मुख प्रमुख समस्या होती है अपने छात्रो मे रचनात्मक प्रवृत्ति के विकास करने और स्कूल छोडने के पश्चात जब वह किसी कार्य मे लगें तो वे अपने कार्य को जिज्ञासा, विचारात्मक और आविष्कारात्मक रूप में लें। आज-कल बालको मे रचनात्मक प्रौद्योगिकी की सोवियत प्रणाली में, स्कूल से निकलने के बाद बालको के लिए शिक्षा मत्रालय द्वारा प्रौद्योगिक संस्थाए स्थापित है, औद्योगिक उद्यमो मे ट्रेड यूनियन द्वारा क्लब और सोसायटी कार्यशील है, और रेलवे, बन्दरगाहों, सडक मरम्मत, उच्च शैक्षिक स्थापनाओ, विज्ञान सस्थाओ आदि द्वारा बालको के लिए स्थापित विभिन्न प्रौद्योगिक क्लब सम्मिलित हैं।

बालको के लिए स्थापित इन सभी सस्थाओ की गतिविधियो का मूल आधार उनकी स्वैच्छिक चेतना-प्रेरणा और रचनात्मक स्वतन्त्रता है। उपकरण, यन्त्र और सामग्री के लिए पैसा राज्य और पब्लिक सस्था जैसे ट्रेड यूनियन, दक्षता इजीनियरो और आविष्कारको, विज्ञान और प्रौद्योगिक सघों आदि की सोसायटी द्वारा दिया जाता है। फैक्ट्रियो, अनुसधान सस्थाओ अथवा उच्च शैक्षिक स्थापनाओ द्वारा बालकों को सीधे ही ऐसे उपकरण, यन्त्र, औजार और सामग्री दी जाती है जिसको कि उसमे पूर्व उपयोग मे नही लाया गया होता, इससे उन्हे काफी मदद मिलती है। स्कूल के बाहर स्थापित शैक्षिक प्रणाली जैसे पथप्रदर्शक और स्कूली बालकों की सोसायटी, क्लब, जूनियर प्रौद्योगिक केन्द्र मे आज की संस्था मे प्रौद्योगिक रुचि रखने वाले समूह है (वर्ष १९७९ मे सोवियत सघ मे १,२०० कनिष्ठ प्रौद्योगिक केन्द्र और ४,७०० पथप्रदर्शक सोसायटी व क्लब थे) और उनमे से बहुतो मे रचनात्मक प्रौद्योगिकी के विभिन्न शाखाओं के लिए विशेष प्रयोगशालाए है। अक्सर बालक इन्हे अपना दूसरा घर समझते है और अपना खाली समय अपनी रूचि का काम करने मे वही व्यतीत करते हैं। इस प्रकार की स्थापना का हम एक उदाहरण लें।

मौलिक मॉडल

मास्को मे एक बार कनिष्ठ इजीनियरों के कार्य की प्रदर्शनी लगाई गई। इसमे व्यस्कों की सहायता के लिए अनेक उपकरणो और मशीनो के डिजाइन प्रदर्शित थे। एक ही नजर मे स्पष्ट था कि उनमे से बहुत सी वस्तुएं, हमारे ओटोनोमस रिपब्लिक क्षेत्र (पूर्वी यूरोप रूस में) से थी जो कि कुछ समय पहले तक दूरवर्ती क्षेत्र मे था। इसके अलावा इलैक्ट्रोनिक इजीनियरिंग क्लब मे बालको द्वारा आविष्कार किए गए अनेक उपकरणों का उपयोग उद्योग, खेती और स्कूल में किया जाने लगा।

इन मनोहर प्रारूपों के आविष्कारकों को और पास से जानने के लिए, हमारे कनिष्ठ प्रौद्योगिक केन्द्र के इजीनियर क्लब मे गए। बालकों के लिए रचनात्मक प्रौद्योगिकी का सुझाव देने वाले, निदेशक सीमेन इवानोव जिन्होंने कि केन्द्र के निर्देशन के बारे में जान-

कारी दी, बताया कि उनमे से बहुत से बालक स्कूल से निकलने के बाद फैक्ट्री लगाते है, हवाई जहाज अथवा जहाज चलाते हैं अथवा शहर का निर्माण करते है। उन्होंने आजकल के कनिष्ठ इजीनियरो के सबंध मे भी रोचक जानकारी दी।

बालकों ने जो मॉडल बनाए उन्हें आविष्कार तो नही कहा जा सकता किन्तु वे कल्पनात्मक अवश्य थे। वे ऐसे मॉडल भी बना सकते थे जिनका कि उपयोग और जॉच की जा चुकी हो। किन्तु केन्द्र मे मौलिक मॉडल भी बनाए गए जिससे कि पता चलता है कि मारी के स्कूल के बालको द्वारा किया गया कार्य आविष्कार स्तर का है। हायड्रोफोइल केन्या क्षेत्र नहीं होने के कारण जहाज मॉडलिग मे खोज के लिए कोई स्थान नहीं है। किन्तु इस क्षेत्र मे भी खोज की गई। उदाहरणत: बालकों ने ससार मे व्याप्त जहाज बनाने की विधि से हटकर जहाज बनाने की कोशिश की। उसे तीव्र गति देने के लिए सर्वप्रथम जेट-इजन लगाए गए। उसकी गति के अनुरूप ही उसका आकार भी बनाया गया। वे चाहते थे कि जहाज का पेटा पानी के ऊपर हाइड्रोफोइल पर नही बल्कि उसके पख पर उठा हुआ हो। उसका प्रारूप तीव्र गति पर चलने वाली मछली-शार्क मछली के आधार पर बनाया गया। इसलिए उन्होने सभी शार्क मछलियो की तस्वीरे एकत्र की और उसमे से टाइगर शार्क को अपने मॉडल का आधार बनाया। उसकी शक्तिशाली पूंछ पतवार का आधार बनी, और पेटे मे मॉडल राकेट से लिए गए जेट-इजन रखे गए। उसका लम्बा धारा-रेखित ढाचा, गति का सार था और पानी के ऊपर पख उसे वैसे ही उठाते थे जैसे कि हाइड्रोफोइल। हालांकि इस मॉडल को अभी वास्तविक आधार नही मिला है लेकिन इस मॉडल को साकार रूप देने मे किशोर डिजाइनकर्ताओं के अडिग निश्चय पर केन्द्र के सभी कार्यकर्ताओ का विश्वास है।

एक अवसर पर केन्द्र से मुर्गीखाने के कार्यकर्ताओ ने सम्पर्क स्थापित किया और उनसे मुर्गीखाने में उगते-सूरज के समरूप उपकरण बनाने का अनुरोध किया। दिन की अवधि बढाने के लिए मुर्गीखाने में काफी समय से विद्युत-प्रकाश का इस्तेमाल किया जाता रहा था जिसके परिणामस्वरूप अधिक संख्या मे अण्डे प्राप्त किए जाते थे। किन्तु उन्हे नीद की भी आवश्यकता होती थी, इस कारण जब एकाएक प्रकाश बुझा दिया जाता था तो उन्हे अधेरे मे अपना अड्डा ढूढने मे कठिनाई होती थी। मुर्गी पालने वालों ने धारा-नियन्त्रक इस्तेमाल करने की कोशिश भी की, किन्तु वह अधिक सुविधाजनक अथवा सुरक्षित नही पाया गया। रेडियो-इलेक्ट्रोनिक्स क्लब ने एक ऐसा साधारण और सुरक्षित उपकरण बनाया जिसमे कि एक तरलधारा-नियन्त्रक, एक टाइम-रिले और एक पावर-सप्लाई इकाई सम्मिलित थी। यह उपकरण डूबते-सूरज का अनुकरण भलिभाति कर लेता था जिससे कि रात मे मुर्गिया चैन से रहने लगी।

बालको की बहुत सी खोजो का चिकित्सीय-उपयोग भी है। उदाहरणत: उन्होने एक करैक्टोफोन नामक उपकरण बनाया। जिसकी सहायता से वाणी के विकारो को सुधारा जा सकता है। एक ऐसा मौलिक चिकित्सीय थर्मामीटर बनाया गया है जिससे कि तुरन्त ही ताप मापा जा सकता है। यह इस तथ्य पर आधारित है कि थर्मीस्टर का प्रतिरोध तापमान के अनुरूप बदलता है। हाल ही मे आयोजित एक प्रदर्शनी मे प्रदर्शित मिट्टी के थर्मामीटर मे इस सिद्धात का उपयोग किया गया। इस छोटे से गणराज्य के कनिष्ठ इजीनियरों द्वारा विकसित अनेक उपकरणो का उपयोग उद्योग और कृषि मे किया जा रहा है।

अधिकतर कनिष्ठ प्रौद्योगिक क्लबों मे जिन्हे कि मुख्य फर्मो की ट्रेड-यूनियन समिति द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त होती है, इजीनियर और प्रौद्योगिक प्रशिक्षक के रूप मे कार्यरत है और उन्हे बालको के साथ कार्य करने मे आनंद आता है। ये केंद्र अधिकतर उन स्थानो पर बनाए गए है जहा कि उस विशेष फार्म के कार्यकर्ता रहते है, किन्तु इनमे उन बालको के प्रशिक्षण के भी द्वार खुले है जिनके अभिभावक अन्यत्र काम करते है। इसके अलावा ट्रेड-यूनियन सांस्कृतिक केंद्रो और सार्वजनिक क्लबो मे अनेक प्रौद्योगिक रुचि समूह और प्रयोगशालाए स्थापित है जिनमें कि बालको के लिए विभाग बने हुए है।

इटरमीडिएट और उच्च कक्षा के छात्रो के लिए उनकी रुचि के अनुरूप उच्च शाखा इलैक्ट्रानिक

इजीनियरिंग, आटोमेशन अथवा रेडियो इजीनियरिंग के क्लब स्थापित है, जिनका प्रमुख उद्देश्य है अपनी फैक्ट्री के लिए दक्ष कार्यकर्ता तैयार करना। मैग्नी-टोगोर्स्क आँयरन और स्टील वर्कस में स्थापित जूनियर प्रौद्योगिक सोसायटी मे उदाहरणत: एक कनिष्ठ धातुकर्म प्रयोगशाला बनाई गई है, वहा पर बालक मॉडल रोलिग अथवा ब्लूकिंग मिल ही नही बनाते बल्कि स्वय ही धातु गलाते है। दोनो ही उपकरण और उसके उत्पादन की क्रिया लघुरूप मे है। डोने-टस्क हैवी इजीनियरिंग के क्लब में एक कनिष्ठ इंजीनियरिंग प्रयोगशाला स्थापित है जहा कि स्कूल के बालक अपने अभिभावक की फैक्टरी मे उपस्थित मशीनो का मॉडल बनाते है।

बालक उन्ही समस्याओ पर कार्य करते है जिन पर कि फैक्टरी की खोज और अक्षमता इजीनियरिंग विभाग कार्य करता है, फलस्वरूप उन्होने अनेक औद्योगिक उपकरणो पर सुधार करके पेटेन्ट प्राप्त किया है।

सोवियत-संघ मे हर वर्ष स्थानीय, शहरी और राष्ट्रीय स्तर पर बालकों की रचनात्मक प्रौद्योगिकी की प्रदर्शनी लगाई जाती है। सर्वोत्तम कार्य के लिए यू० एन० एस० और आर्थिक प्रदर्शनी द्वारा डिप्लोमा पुरस्कार, मैडल प्रदान किए जाते है, मूल्यवान उपहार अथवा ब्लैक-सी-कोस्ट पर स्थापित ऑल-यूनियन आर्टेक, पथप्रदर्शक कैम्प के लिए यात्रा-प्रमाणक दिए जाते है अथवा विदेश यात्रा का अवसर प्रदान किया जाता है। सोवियत कनिष्ठ प्रौद्योगिकी द्वारा किए गए कार्य की प्रदर्शनी वाशिगटन, ओसाका, बुदापेस्ट, मोट्रिअल, पेरिस, ब्रूसैल्स और अन्य स्थानो पर लगाई गई उस प्रदर्शनी मे आने वाले दर्शकों ने उनके कार्य की काफी प्रशसा की।

रचनात्मक प्रौद्योगिकी मे रुचि रखने वाले बालको के लिए दो विशेष पत्रिकाए प्रकाशित की जाती है मोडेलिस्ट कांसट्रक्टर (मॉडल-मेकर और डिजाइनर और फ्यूज तेरवनिक जूनियर टैक्नोलाजिस्ट) इन पत्रिकाओ का मासिक वितरण ३ करोड़ से भी अधिक है। अनेक शहरों मे विशेष दुकाने खोली गई है जहां कि बालक अथवा उनके अभिभावक घर पर मॉडल अथवा उपकरण बनाने के लिए यन्त्र और सामग्री खरीद सकते है। सोवियत-संघ की स्वैच्छिक प्रणाली ने उद्योग, प्रौद्योगिकी और विज्ञान मे रचनात्मक कार्य करने के लिए प्रशिक्षण के लिए धरातल प्रस्तुत किया है। अनेक अन्वेषणकर्ता, क्षमता इजीनियर और औद्योगिक आविष्कारक इस पथ का अनुसरण करते है, बालको के विकास और उन्हे व्यावसायिक व पॉलीटेक्निकल शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए रचनात्मक प्रौद्योगिकी को उत्तम माना जाता है। □

विकलांग बालक की शिक्षा

—डा० आर. पी. सिंह
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद
नई दिल्ली

किसी भी समाज में विकलांगता एक स्थापित तथ्य है। एक समय ऐसा था जबकि इस ओर ध्यान ही नही दिया जाता था कि यदि इन लोगो की मदद की जाए तो वे हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर अनावश्यक भार नही होगे। हम यह भी भूल गए कि अगर इन व्यक्तियो की मदद की जाए तो वे हमारे समाज का एक उपयोगी अंग भी बन सकते है। किन्तु अब परिस्थितिया बदली है और विश्व भर मे यह महसूस किया जा रहा है कि इन व्यक्तियो की सहायता की जाए। इन दुर्भाग्यग्रस्त व्यक्तियो के लिए जो हमारे अन्दर की दया और हमदर्दी का दृष्टिकोण रहता था उसमें भी परिवर्तन हुआ है। इस दृष्टिकोण मे परिवर्तन के फलस्वरूप अब हम इन मनुष्यो के उद्धार के सम्बन्ध मे सकारात्मक रूप से सोच सकते है।

आज हम इस तथ्य से अवगत है कि ससार भर के कुल ४५० लाख विकलाग व्यक्तियो मे से भारत मे लगभग ६० लाख व्यक्ति मौजूद है यानि भारत की कुल जनसंख्या का लगभग दस प्रतिशत भाग भारतीय जनसख्या का यह खंड पृथक्कृत है और उसे केवल सहानुभूतिशील धरातल पर हमारी औपचारिक प्रणाली मे भाग लेने की अनुमति दी जाती है।

इस वर्ग की शिक्षा के सम्बन्ध मे प्रमुख समस्या यह है कि अधिकतर व्यक्ति यही समझते है कि इन्हे शिक्षित नही किया जा सकता। किन्तु वास्तविकता यह है कि विकलांगता के विभिन्न रूपो मे बहुत से ऐसे है जो कि साधारणत: शिक्षा-प्राप्ति मे रुकावट पैदा नही करते। किन्तु कुछ को यांत्रिक सहाय उपकरण जैसे श्रवण सहाय, वाणी आदि की मदद से दूर किया जा सकता है। इस तथ्य की साधारणत: उपेक्षा की जाती है।

एक अन्य समस्या व्यक्तियो के दृष्टिकोण से जुडी हुई है। भारत मे प्रत्येक कार्य की जिम्मेदारी सरकार की समझी जाती है। हमारी धारणा यह है कि समाज सेवा के क्षेत्र मे की जाने वाली कार्यवाही का उत्तरदायित्व केवल सरकार पर ही है। फलस्वरूप ऐसी बहुत सी स्वेच्छा सस्थाए है जो कि उनका दायित्व अपने ऊपर लेती है। किन्तु उनकी गतिविधियो और वित्त को देखते हुए वे व्यापक स्तर पर शैक्षिक सुविधा प्रदान नही कर पाती। परिणामस्वरूप, दुर्भाग्यवश यह सुविधा वास्तविक आवश्यकता से कम पडती है। साधारणतया अब यह महसूस किया जाता है कि केवल सरकार ही सब काम नही कर सकती। इसलिए स्वेच्छा से किए गए कार्य का स्वागत है।

इसके अलावा भी बहुत कुछ किया जाना है। लोगो को यह समझना चाहिए कि वे अपनी सहायता स्वय भी कर सकते है।

तीसरी समस्या, विकलाग व्यक्तियो के व्यक्तित्व से जुडी है। एक साधारण व्यक्ति के समान ही एक विकलाग बालक का अपना व्यक्तित्व होता है। वह भी दूसरो से आदर की अपेक्षा रखता है। वास्तव मे लोगो से सम्मान पाने की इच्छा रखता है। यह मात्र प्रकृति की विशिष्टता है कि वह विकलाग है। यह भी हो सकता है कि उसके प्राथमिक रचनात्मक वर्षो मे गरीबी, कुपोषण और उपेक्षा का वातावरण न होता तो वह भी एक सामान्य व्यक्ति के समान ही पूर्ण होता। उदाहरणत: किसी व्यक्ति के आहार में विटामिन ए की कमी उसके अन्धेपन का कारण बन सकती है। अन्धेपन की त्रासदी से बचा जा सकता था किन्तु ऐसा न हो पाया इसका अर्थ—क्या बालक का दोष है।

आवश्यकता इस बात की है कि लोगो को उनके

विकलागपन के कारण के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाए। उन्हें जो सुविधाएं और सहायता उपलब्ध है उसकी भी जानकारी दी जाए जिससे जिस दोष का निवारण समय पर आसानी से किया जा सकता हो वह किया जाए। इसलिए व्यापक-स्तर पर प्रचार अभियान के लिए एक 'इन्फ्रा-स्ट्रक्चर' बनाने की आवश्यकता है। यह याद रखना चाहिए कि साधारणतया, विकलागता अज्ञान गरीबी और समय पर सहायता न मिलने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। यह भी हो सकता है कि इस दुर्दशा को दूर करने की इच्छा रखते हुए भी, विकलाग के सम्बन्ध मे सूचना और शिक्षा के बावजूद भी वह अपने उद्देश्य मे पूर्ण न हो।

विकसित देशों में इन विकलागो के लिए बहुत कुछ किया जा चुका है। ऐसे विकलाग बालक जो कि साधारण कक्षाओ मे अपने आपको समायोजित नही कर पाते उनके लिए विशेष कक्षाओ की सुविधा भी उपलब्ध है। ऐसे बालक जो बिना किसी समस्या के शिक्षा प्राप्त कर पाते है उन्हे औसतन साधारण, स्वस्थ बालको के साथ सामान्य व्यवहार करने का अवसर प्रदान किया जाता है। अमरीका और रूस जैसे देशो ने तो उनके उपकार के लिए कानून भी बनाया है। यह केवल विकसित अमीर राष्ट्रो की स्थिति है किन्तु भारत जैसे गरीब देश उनका अनुसरण करने में असमर्थ है।

केवल सरकार ही सब कुछ नही कर सकती। स्वैच्छिक-सस्थाओ को भी इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए आगे आना चाहिए। यह जाना-माना तथ्य है कि अधिकतर विकलाग व्यक्ति शहरी-गदी बस्तियो और ग्रामीण क्षेत्रो के गरीब वर्गों से आते है। इन विकलाग व्यक्तियो का एक बहुत बड़ा खड सामान्य भी हो सकता था किन्तु निवारक उपायो के सम्बन्ध मे सूचना के अभाव मे ऐसा नहीं हो पाया। इस पृष्ठभूमि पर इन क्षेत्रों मे स्थापित स्कूलो को सकारात्मक रोल अदा करने का कार्यभार दिया जाना स्वाभाविक था।

विकलांग और उनके लिए स्कूल

स्कूल, जैसा कि हमने देखा है, लोगों की सहायता करने वाली एक सामाजिक संस्था है। वह शैक्षिक और उपचारक दोनों ही रोल अदा करती है। शहरी गदी बस्तियों और ग्रामीण क्षेत्र के स्कूल का अध्यापक अपने इलाके मे शिक्षा देने के लिए सरकारी विभागो से पोस्टर प्राप्त कर सकता है। एक कर्मठ अध्यापक शारीरिक विकलांगता के कारण और निवारक विषय पर स्कूल के प्रांगण मे वहा के पैरा मैडिकल कार्यकर्ता और ग्रामीण स्तर के कार्यकर्त्ताओं के साथ मिल कर एक मीटिंग का आयोजन भी कर सकता है। वह अपनी कक्षा मे इन दुर्भाग्यग्रस्त व्यक्तियो, अधिकतर परिस्थिति के शिकार के प्रति सहानुभूति का दृष्टिकोण अपना सकता है। बच्चो द्वारा लिखे जाने वाले निबन्धों में अध्यापक कुछ ऐसे विषय चुन सकता है

१ विटामिन ए और अन्धापन।

२. अधो की सहायता करना।

३. विकलांग बालक कौन है, आदि।

साधारण कक्षाओ में वाणी दोष और शारीरिक विकलांगता से ग्रस्त बालको को बिना किसी समस्या के समायोजित किया जा सकता है। जहां सभव हो सकता हो वहां विकलांगत्व और कुपोषण से ग्रस्त गरीब बालकों के लिए मध्यान्तर भोजन की व्यवस्था भी की जा सकती है। स्थानीय अमीर व्यक्तियो और सरकार एव स्वैच्छिक संस्थाओं के माध्यम से कुपोषण को दूर किया जा सकता है। भारत के अनेक राज्यों मे बालकों को मध्यान्तर भोजन दिया जाता है। इस कार्य को सरकार से उत्साह प्राप्त होने के अलावा स्थानीय सहायता भी प्राप्त होनी चाहिए।

ऐसे स्कूल जहां कि बिजली की सुविधा मौजूद है वहा कमरों मे रोशनी की जा सकती है। ऐसे बालक जिनकी आखे कमजोर हों उन्हें आगे की कतार में बैठाया जा सकता है। इसी प्रकार ऐसे बालक जिनकी श्रवण क्षमता सामान्य से कम हों उनकी मदद भी की जा सकती है। ऐसे बालक आगे की कतार में बैठ सकते हैं और कभी कभी स्वैच्छिक दान से प्राप्त श्रवण-सहाय का उपयोग भी कर सकते है। किन्तु अध्यापक को पूरी सावधानी बरतनी चाहिए कि ये बालक सामान्य बालकों में झगड़े का कारण न

बने। किसी भी अवस्था मे विकलाग बालक को यह महसूस नही होने दिया जाना चाहिए कि वह दया का पात्र है।

वास्तव मे इन कार्यो का उत्तरदायित्व कर्मठ और जागरूक अध्यापक ही उठा सकते है। इसलिए हम यह समझते है कि कुछ अध्यापक ही इस समस्या को समझ सकते है और मदद के लिए आगे आ सकते है। इस अवस्था में हमारी आशा केवल अध्यापको से ही है।

यूनाइटेड नेशन्स द्वारा भी विकलागो के अधिकारो की निम्नाकित घोषणा की गई है—

१. सामान्य मनुष्यो को प्राप्त मूलभूत अधिकारो के समान, उन्हे एक कार्यादित जीवन और जहां तक सभव हो सामान्य जीवन व्यतीत करने का अधिकार,

२. उनकी मानवीय गरिमा का सम्मान किया जाए,

३. अपने साथी नागरिकों के समान वैधानिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो,

४ जहा तक सभव हो उन्हें आत्म-निर्भर बनाने के उपाय किए जाए,

५ चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक और कार्यात्मक उपचार प्राप्त हो, पुनर्वास और नियोजन सेवाए उनकी कला के विकास, सामाजिक एकीकरण मे मदद करे,

६ मर्यादित जीवन व्यतीत करने के लिए आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा अपनी योग्यताओं के अनुरूप उपयोगी, उत्पादक और लाभकारी व्यवसाय करना,

७. सामाजिक और आर्थिक योजनाओ की सभी अवस्थाओं मे उनकी विशिष्ट आवश्यकता की ओर ध्यान,

८. अपने परिवार में रहने और सभी सामाजिक, रचनात्मक और मनोरंजक गतिविधियों मे भाग लेने का अधिकार। किसी व्यक्ति विशेष को विशिष्ट स्थापना की आवश्यकता होने पर उसका वातावरण और जहा तक सभव हो जीने की परिस्थितियां सामान्य हो,

९. शोषण और वर्गीकरण के विरुद्ध सुरक्षा,

१०. जाति, रंग, लिंग, धर्म, राष्ट्र और सामाजिक उत्पत्ति के अनपेक्ष इन अधिकारों को भोगने का अधिकार।

□

सेवाकालीन अध्यापकों का प्रशिक्षण

—डा० कमरुद्दीन
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली

हम हमेशा शिक्षा में गुणता के आधार पर सुधार की बातें करते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि यह समय की आवश्यकता है और अगर हम अपने बच्चों को सही प्रकार की शिक्षा दें तो हमारे देश की बहुत सी समस्याओं का हल हो सकता है। अध्यापक जो कि बालक के सम्पूर्ण विकास और उसकी शिक्षा में धुराग्रीव रोल अदा करता है, उसके गुण पर ही शिक्षा में किया गया सुधार निर्भर करता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि अध्यापकों का चयन करते समय उचित योजना बनाई जाए जिससे कि वही अध्यापक चुने जाएं जिनमें कि अध्यापन के प्रति प्राकृतिक प्रवृत्ति हो। इसके अलावा उन्हें अपनी सेवा काल के पूर्व और सेवाकाल के दौरान सुविधा प्राप्त हो और अध्यापन के सिद्धान्त और सामग्री पर निरन्तर रिफ्रैशर कोर्स के रूप में सामग्री प्राप्त होती रहे।

उनकी, अपने विषय की जानकारी को और अधिक ठोस बनाने के लिए उन्हें रिफ्रैशर कोर्स की सुविधा के अलावा उनके ही क्षेत्र में किए गए अनुसंधान और विचारधारा से अवगत कराया जाए।

आवश्यकता एक ऐसा मंच बनाने की है जिसमें कि अध्यापक अपने अनुभवों का एक दूसरे से आदान-प्रदान कर सकें। इन मंचों में वे अपनी समस्याओं पर वाद-विवाद कर सकते हैं और अपने शिक्षण को सुधारने के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। अपने अध्यापकों से विचारों और अनुभवों के आदान-प्रदान से उनका प्रोत्साहन बढ़ेगा और शिक्षा को अधिक उपयोगी, उद्देश्य-आधारित और सामाजिक परिवर्तन से शिक्षा को एक प्रभावशाली माध्यम बनाने का अवसर प्राप्त होगा। शिक्षण की समूची व्यवस्था में उनके योगदान का क्या महत्व है इस तथ्य से वे अवगत होंगे। अभी इस प्रकार के मंच पब्लिक-स्कूलों में मौजूद हैं और वहां इन्हें बहुत प्रभावशाली और उपयोगी माना गया है। शिक्षा विभाग के सहयोग से ऐसे मंच व्यापक स्तर पर बनाए जाने चाहिए।

अध्यापकों के मंच के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए एक न्यूज-लेटर प्रकाशित किया जा सकता है। इस न्यूजलेटर में योगदान देने के लिए अध्यापकों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। वे अपने अनुभव, अपनी समस्याएं और शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली विभिन्न समस्याओं के सुझाव द्वारा न्यूजलेटर में भेज सकते हैं।

ऐसे अध्यापक जो शिक्षा के क्षेत्र में हैं वे शिक्षण द्वारा किन उद्देश्यों को प्राप्त कर सकते हैं यह जागृति भी पैदा की जानी चाहिए। हमारे बहुत से लोगों में अभी भी यही धारणा बनी हुई है कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य एक विशेष विषय पर जानकारी देना है। वे इस तथ्य से अवगत नहीं हैं कि सही रूप से दी गई शिक्षा से बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परिवर्तन आ सकता है। उनके शिक्षण में योगदान और उनका अपना व्यक्तित्व बालकों के व्यक्तित्व, रुचि और आचरण के विकास को प्रभावित करता है, इस पर भी जोर दिया जाना चाहिए। शिक्षा के सम्बन्ध में आज की जो विचारधारा है उसकी तुलना, हमें उससे क्या प्राप्त हो रहा है और शिक्षा का उद्देश्य क्या है, इससे की जानी चाहिए। यह भी जाना जाए कि भारत के आज के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक हालात के संदर्भ में शिक्षा के सिद्धांत में परिवर्तन हुआ है। इस दिशा में शिक्षण

को आज के सामाजिक, नैतिक और व्यक्तिगत मूल्यों ने प्रभावित किया है और परिणामस्वरूप वह बालक के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है यह भी ध्यान मे रखा जाए।

अध्यापकों के मन के माध्यम से अध्यापको को इस तथ्य से अवगत कराया जा सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में मानाकन का कितना महत्वपूर्ण स्थान और योगदान है और शिक्षण के स्तर को सुधारने मे वह कितना महत्वपूर्ण रोल अदा करता है। उद्देश्यों को सुधारने मे मानाकन कितना प्रभावशाली रोल अदा करता है इस तथ्य की आमतौर पर उपेक्षा की जाती है किन्तु यह दोष अध्यापकों का नहीं, शिक्षा-सम्बन्धी योजना और नीति बनाने वालों का है। इस कारण अध्यापकों को जो पढाया जाता है उनका योगदान उतने तक ही सीमित रहता है। प्राथमिक अवस्था मे शिक्षण कार्यक्रम के दो विभिन्न पहलू-अध्यापन और जांच के सम्बन्ध में सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि बालक के शारीरिक और मानसिक बुद्धि और विकास मे उसके प्राथमिक वर्ष बहुत महत्वपूर्ण रोल अदा करते है। इन्ही वर्षो मे उसकी आदतें, प्रवृति, रूचि, मनोभाव बनते और जड पकडते है। इस कारण इस अवस्था मे बालक की उचित प्रवृत्ति, उचित आचरण, सोचने की उचित प्रक्रिया, उसका चरित्र, सहज बुद्धि, दायित्व का बोध और अन्य गुणो के विकास पर जोर दिया जाना चाहिए। यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जबकि शिक्षण को एक पृथक विषय के रूप मे न लेकर बालक के सम्पूर्ण विकास के माध्यम के रूप मे लिया जाए। इसके अलावा जीवन की सामान्य समस्याओं से भी अध्यापन को पृथक न रखकर, उनके दिल, दिमाग, सम्पूर्ण विकास के उद्देश्य से शिक्षा दी जाए। □

प्रारम्भिक वर्षों में प्रत्ययों की शिक्षा

—के० बी० रथ
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली

प्राथमिक कक्षाओ में १ से ५ तक शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चो का आयु वर्ग ५-१० वर्ष होता है। बालक के शारीरिक भावात्मक, सामाजिक-सज्ञानात्मक और साइकोमीटर विकास के लिए यह अत्यन्त महत्व-पूर्ण अवस्था है। बालक के यह सभी पहलू उसकी आनुवाशिकता और वातावरण द्वारा निर्धारित होते है।

आनुवाशिकता हमारे नियत्रण के बाहर है क्योंकि उसमे कोई परिवर्तन नही किया जा सकता। किन्तु उसके वातावरण को सही रूप मे प्रेरित करके हम इच्छित दिशा में उसका विकास कर सकते है।

परिवार के प्रारंभिक अनुभव उसके विकास मे अधिक योगदान करते हैं। साथ ही साथ अपने वाता-वरण से प्रेरणा प्राप्त कर बालक शिक्षा प्राप्त कर सके, स्कूल को इस दिशा मे कार्य करना चाहिए। बालक के स्वतोभाव, उत्सुकता, रचनात्मकता और गतिशीलता, शिक्षा के कठिन और नीरस सिद्धांतों द्वारा सीमित नही होना चाहिए।

शिक्षा का एक प्रमुख क्षेत्र, प्रत्ययों की शिक्षा से सबंधित है। लक्षण और संबध जो कि ज्ञान वस्तु मे सम होते है अथवा व्यक्ति द्वारा निर्धारित होते है उनके आधार पर वस्तु और तथ्यो का वर्गीकरण प्रत्यय है। इस आयु का बालक ठोस कार्यशील अवस्था मे होता है और उसकी सोचने की शक्ति उसके वाता-वरण मे प्रस्तुत वस्तुओ की ओर प्रेरित होती है। वह वस्तु की भौतिक गुणताओं को एक-एक कर सीखता है और प्रत्येक वर्ग मे एक पृथक व्यवस्था से बधा रहता है इससे उसे विचारो और अवधारणाओ का विकास करने में मदद मिलती है। नए प्रत्ययों को सीखने के लिए वह सीखे गए समय, स्पेससंख्या और युक्ति के मूल प्रत्ययो का उपयोग कर सकता है। प्राथमिक स्कूलो की अवस्था के विभिन्न विषय क्षेत्र के अनेक प्रत्यय हैं जैसे गणित मे सख्या, पूर्णांक, गुणनखण्ड, कोणचतुर्भुज, विशेषण आदि विज्ञान एव अन्य विषयों के जीव, जन्तु, स्तनधारी जीव, मिट्टी, ठोस, न्यूरान आदि। अगर छात्र इन प्रत्ययों को ठीक प्रकार से सीख लेता है तो उससे उसे अपने आस-पास की वस्तुओं को पहचानने, वस्तुओ को वर्गीकृत करने, जटिल प्रत्ययो को समझने, साधारीकृण करने और बाद के वर्षो मे नियम और सिद्धात बनाने मे मदद मिलेगी। बालक को प्राथमिक अवस्था मे प्रत्ययों की शिक्षा देने के लिए अध्यापक को उसके दांव पेच समझना आवश्यक है।

प्रत्यय क्या हैं ?

नीति का विस्तार से वर्णन करने से पूर्व, प्रत्यय शब्द का अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है। प्रत्यय उत्तेजनाकारी वर्ग से संबध रखता है जिसमें कि समान गुण होते हैं। ये उत्तेजनाएं वस्तु, घटना अथवा व्यक्ति हो सकते हैं। हम प्रत्यय का नाम द्विष्ट उसके नाम जैसे सख्या, चौकोर, त्रिभुज आदि से करते है। वाक्य के रूप मे प्रत्यय का अर्थ, प्रत्यय की परिभाषा कहलाता है। उदाहरणत: चौकोर प्रत्यय की परिभाषा है एक ऐसा चतुर्भुज जिसके चार सम भुजाए और कोण हों। प्रत्यय मे विशेष गुण होते है जिन्हे इसका विशेषण कहा जाता है और उसके आधार पर उसका पता चलाया जा सकता है। उदाहरणत: चौकोर प्रत्यय के विशेषण है चार भुजाएं, सम भुजाए और

सम कोण। प्रत्येक विशेषण का विशेषण मान होता है। वह विशेषण की विशेष सामग्री से संबंधित होता है। विशेषण के ऊपर दिए गए उदाहरण में मान है—लम्बाई और चौडाई की समता (अगर लम्बाई ५ सें० मी० है तो चौडाई भी ५ सें० मी० ही होगी) और प्रत्येक कोण ९० अश का होगा।

प्रत्यय शिक्षा के उद्देश्य

प्राथमिक स्तर पर प्रत्ययो की जानकारी प्राप्त करने के पश्चात बालक—

१ *समुचित सम्बन्धो की आलोचनात्मक गुणता का मौखिक रूप से स्मरण करता है।*

प्रत्येक प्रत्यय की शिक्षा की शुरुआत करने से पूर्व अध्यापक को अपेक्षित कार्य क्षमता से परिचित होना चाहिए, प्रत्यय के नए उदाहरणो का सही सही पता चलाना।

उदाहरणत: प्रत्यय चौकोर मे छात्र नीचे दिए गए उदाहरणों मे से चौकोर का सही-सही पता चला लेगा। उनके इस कार्य से अध्यापक को अपने शिक्षण के बारे मे पता चल सकेगा, इसके अलावा अगर छात्र उन प्रत्ययों को समझने मे कठिनाई अनुभव करते हैं तो वह इससे प्राप्त प्रतिपुष्टि द्वारा प्रत्ययो को प्रस्तुत करने के तरीके मे परिवर्तन कर सकता है। छात्र भी अपने कार्य का मूल्याकन कर सकते है, जिससे कि उन्हे

कार्य करने मे उत्साह मिलता है।
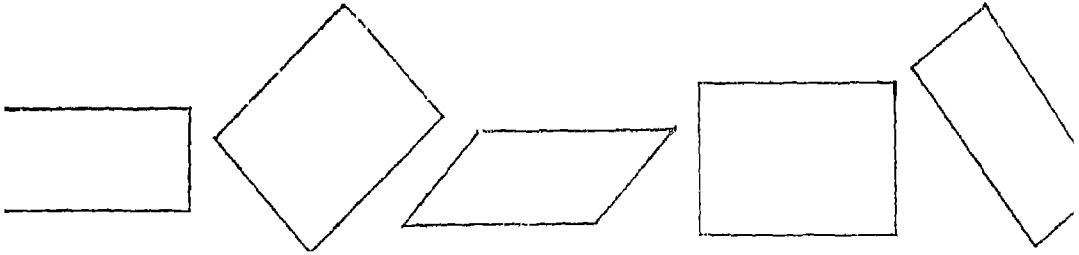
२. *जिस प्रत्यय पर शिक्षा दी जानी हो उसे सकारात्मक और नकारात्मक उदाहरणों का उचित रूप से चयन करना।*

३. कोई भी नए और बिना पहचाने सकारात्मक नकरात्मक तथ्य दिए जाने पर आलोचनात्मक और अ-आलोचनात्मक गुणता और उनका समुचित और असमुचित संबधो का मौखिक रूप से पता लगाना।

४. खोजे गए प्रत्यय के विभिन्न सकारात्मक और नकारात्मक उदाहरणो को अलग-अलग करना।

शिक्षण सिद्धांत

ऊपर दिए गए उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अध्यापक निम्नलिखित सिद्धाँत अपना सकता है।

१. प्रत्येक प्रत्यय को सीखाने के पश्चात् छात्रों से अपेक्षित कार्यक्षमता का वर्णन करना

२. प्रमुख विशेषणों का चयन

अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह जिन प्रत्ययो को पढाने की सोचें उनका विश्लेषण करे और उनके प्रमुख विशेषणो का पता चलाए। प्रमुख का अर्थ यह है कि प्रत्यय मे कुछ विशेषण अन्य की तुलना मे अधिक स्पष्ट होते है किन्तु पढाते समय अध्यापक को अन्य की तुलना में स्पष्ट प्रत्ययो की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार प्रत्यय पर दक्षता प्राप्त करने में मदद मिलती है। किन विशेषणो को नजरअन्दाज किया जाना है इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक प्रत्यय और उसके सामान्य उपयोगो से परिचित हो। उदाहरणत: अगर अध्यापक त्रिकोण प्रत्यय पर पढ़ाने की सोचता है तो उसके प्रमुख विशेषण इस प्रकार है—बद आकार, तीन कोने, तीन कोण, भीतर कोण और विशेषण जिन्हें कि नजर-

अन्दाज किया जा सकता है वे हैं सम भुजाए, समकोण धरातल, मध्यमा, ऊंचाई आदि।

३. छात्र को उपयोगी मौखिक मध्यस्थ उपलब्ध कराना

जब हम किसी वस्तु का नाम मौखिक रूप से लेते है तो उस वस्तु के विषय मे हमने जो कुछ भी सीखा होता है उसके और हमारे ज्ञान के बीच एक संबंध बन जाता है। मौखिक शब्द जो इन दोनो के बीच मध्यस्थ का कार्य करते हैं उन्हें मौखिक मध्यस्थ कहा जाता है। उदाहरण के लिए त्रिकोण प्रत्यय पर ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके मौखिक मध्यय हैं, त्रिकोण नाम का उच्चारण, त्रिकोण शब्द अक्षर विन्यास करना, ब्लैक बोर्ड पर उसका चित्र बनाने के पश्चात उसका नाम बताना आदि। इस प्रकार की मौखिक सम्बन्धता आवश्यक है क्योंकि यह छात्रो को प्रत्यय पर जानकारी प्राप्त करने मे मदद करती है।

४. प्रत्यय पर पर्याप्त सकारात्मक और नकारात्मक उदाहरण उपलब्ध कराना

अध्यापक जिस भी प्रत्यय पर शिक्षा देने की सोचे उसे उसके सकारात्मक और नकारात्मक उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए। प्रत्यय के सकारात्मक उदाहरण वे है जिनमे कि प्रत्यय के विशेषण सम्मिलित होते हैं

जैसे त्रिभुज में शीर्ष बिन्दु, बंद आकार, बंद भुजाएं, तीन भुजाएं, कोण। नकारात्मक उदाहरण मे विशेषण सम्मिलित नहीं होते जैसे चार भुजाए, खुला आकार, शीर्ष बिन्दु की अनुपस्थिति आदि।

सकारात्मक और नकारात्मक उदाहरण प्रस्तुत करने से छात्र को नकारात्मक से सकारात्मक को अलग करने मे मदद मिलती है जिसके परिणामस्वरूप वे प्रत्यय पर जानकारी प्राप्त कर पाते हैं। इसके अलावा उदाहरणो की सख्या भी उसके बारे मे निर्णय लेने में मदद करती है प्रत्यय पर शिक्षा देते समय नकारात्मक उदाहरणों की तुलना मे सकारात्मक उदाहरण अधिक दिए जाने चाहिए। विशेषण के सभी नकारात्मक उदाहरण जो कि निर्णय लेने मे सशय उत्पन्न करते हों आवश्यकता होने पर उन्हे स्पष्ट करना चाहिए।

५. नए उदाहरणों से प्रत्ययों को पहचानने में छात्रों की मदद करना

इस अवस्था में अध्यापक धारणा का सानिधान और पुष्टिकरण दोनो प्रस्तुत करता है जबकि पूर्वावस्था में वह केवल विभेद प्रस्तुत करता है। इसमे सामान्यीकरण अथवा नए, किन्तु उसी प्रकार के प्रत्यय के उदाहरण सामने होने पर छात्रो मे प्रतिक्रिया जागृत होने की क्षमता पर अधिक जोर दिया जाता है। उदाहरणतः त्रिभुज के लिए अध्यापक को ब्लैकबोर्ड पर कुछ चित्र बनाने चाहिए और छात्रो को पहचानना चाहिए।

६. छात्र की प्रत्यय पर जानकारी की जांच करना

इस अवस्था मे अध्यापक को प्रत्येक अनेक नए सकारात्मक और नकारात्मक उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए और छात्र को उनमे से सकारात्मक उदाहरण ढूढ़ने के लिए कहना चाहिए। उदाहरण के तौर पर त्रिभुज की अवस्था मे छात्र को सकारात्मक और नकारात्मक उदाहरण साथ दिखाने चाहिए। छात्र सकारात्मक उदाहरणो को पहचान सकता है और मौखिक रूप से उनका चयन कर सकता है। यह प्रत्यय शिक्षा मे महत्वपूर्ण है क्योकि छात्र की कार्यक्षमता

को मापने का यह मध्यमान है। इसके अलावा प्रति-क्रिया प्रस्तुत करने के लिए यह छात्र को अधिक अवसर प्रदान करता है जिससे कि वे अपने अथवा अध्यापक दोनो की ही पुष्टि प्राप्त कर सकता है।

७ प्रत्यय की परिभाषा प्रस्तुत करने में छात्र को लक्ष्य बनाना

इस अवस्था तक छात्र प्रत्यय का विभेदीकरण और सामान्यीकरण करना सीख चुके होते हैं। उन्हे अब प्रत्यय और उसकी परिभाषाओ को प्रस्तुत करना आना चाहिए। प्रत्यय की परिभाषा से प्रत्यय पर जानकारी प्राप्त करना सरल होगा। इस प्रयास से वाक्य और शब्दो के अर्थ मे प्रत्यय के सकारात्मक विशेषणो को व्यवस्थित करने की क्षमता का विकास होगा किन्तु विज्ञान, गणित आदि क्षेत्रो मे शब्दो मे उसका वर्णन करना कठिन होगा। जब उसकी परि-भाषा करना कठिन हो तब प्रत्यय की परिभाषा के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

८. छात्रों की प्रतिक्रियाओं की पुष्टि

प्रत्यय पर जानकारी प्राप्त करने मे पुष्टिकरण, छात्र की प्रतिक्रिया और साथ मे अध्यापक के उत्साह-वर्धक आचरण की उचित जानकारी महत्व रखती है। कक्षा मे मौखिक पुष्टिकरण जैसे अच्छा, कितना अच्छा आदि दिए जा सकते है। यहा पर केवल गणित के उदाहरण प्रस्तुत किए गए है। किन्तु अन्य विषयो के प्रत्यय पर शिक्षा देते समय भी यही प्रक्रिया अपनाई जा सकती है। □

विज्ञान प्रतिभा व प्राथमिक शाला में विज्ञान शिक्षण

—के. आर. भट्ट
ब्राह्मणपुरी,
खण्डवा, मध्य प्रदेश

ऐसी आदर्श और उपादेय शालाए जिनमे न्यूनतम भौतिक सुविधाओ की व्यवस्था सुगठित शैक्षणित कार्यक्रम उत्साही एव निष्ठावान शिक्षक, आत्मानुशासित छात्र तथा नये शैक्षणिक प्रयोगो पर बल दिया जाता है उन्ही शालाओ में अभिभावक अपने बच्चो को प्रवेश कराता है। चूकि आज का युग वैज्ञानिक है। अत: विज्ञान शिक्षण और इससे प्रतिवर्ष प्राप्त होने वाली उपलब्धि को भी ध्यान मे रखा जाता है। यही कारण है कि ऐसी शालाए केवल प्रतिभासम्पन्न छात्रों विशेपकर उच्चतम अंक प्राप्त विद्यार्थियो को ही प्रवेश देती है। परन्तु फिर भी इन शालाओं द्वारा विज्ञान विषय की अतिरिक्त कक्षाए लगाकर विज्ञान प्रतिभा खोज की परीक्षा (जो हायर सेकेंडरी स्तर पर आयोजित होती है) की तैयारी कराने पर भी यथेष्ट परिणाम प्राप्त नही होते हैं तब यह प्रश्न उठता है कि कहा और किस स्तर पर कमी रह गयी हैं। पर्यावरण, शाला और परिवार के सह सम्बन्ध, पाठ्यक्रम की जटिलता या आर्थिक सहयोग आदि भले ही कारण मान लिए जाए तथापि हमें विज्ञान शिक्षण की विधि मे रोचकता लानी ही होगी तथा छात्रों के विकास तथा रुचि परिष्कार के लिए प्राथमिक स्तर पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा।

शिक्षा मनोविज्ञान की गहराई में पहुचा हुआ शिक्षक ही यह बता सकता है कि किस प्रकार से छात्रो में उनकी रुचि के अनुकूल किसी मूल प्रवृत्ति को जन्म देकर उसका क्रमश: विकास किया जा सकता है। यह कार्य प्राथमिक स्तर पर ही सम्पादित किया जाना चाहिए।

पिछले दो दशको से यह अनुभव किया जा रहा है कि किस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों की शालाओं मे विज्ञान शिक्षा का सुधार हो। इस दिशा में जुलाई १९७२ से मध्यप्रदेश में प्राथमिक शालाओं की कक्षा तीसरी से "विज्ञान करके सीखो" पाठ्यपुस्तक पढ़ाई जाने लगी है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश मे शिक्षा सस्थान जबलपुर के निर्देशन में सन् १९७३ से प्रारम्भिक शालेय विज्ञान प्रशिक्षण योजना प्रारम्भ हुई है जिसका प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त हुआ है। इससे विज्ञान शिक्षण में रोचकता तो अवश्य आई है तथापि विज्ञान शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य "प्रतिभा की खोज एवं उसका विकास" अभी बाकी है।

विज्ञान प्रतिभा खोज के लिए एक अनुभूत प्रयोग खण्डवा की एक शाला में चलाया जा रहा है जिसे नवॉचार की श्रेणी मे रखा सकता है। यहां कार्यगत सुविधा के लिए इन शाला मे सबंधित विज्ञान शिक्षको तथा छात्रों के मध्य एक विज्ञान विकास केन्द्र नामक लघु सस्था ने जन्म लिया है। विज्ञान विकास केन्द्र वास्तव में प्राथमिक शाला की कक्षा तीसरी से ही विज्ञान प्रतिभा की खोज करती है। इस कार्य के लिए संक्षेप में सारणीबद्ध रूप से निम्नलिखित क्रिया-कलाप सप्ताह मे एक बार प्रति रविवार किए जाते है।

विज्ञान प्रतिभा खोज कार्यक्रम के अतर्गत प्रमुख तथ्यो मे आर्थिक समायोजन नियमित छात्रों की सख्या

कक्षा तीसरी (पाठ्यक्रमानुसार)

क्रम	माह	इकाई	दिनांक	पाठ्यवस्तु	प्रयोग	पर्यटन	सकलन	चित्रांकन	अतिरिक्त अध्ययन	प्रश्नोत्तर	प्रगति लेखन
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

तथा उनका आगमन कुशलतापूर्वक प्रशिक्षण के लिए योग्यता प्रशिक्षण की अनिवार्यता आदि को रखा जा सकता है। दूसरे अतिरिक्त राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् से समय समय इस दिशा मे निर्देश प्राप्त कर कार्यक्रम को आगे विकसित करता है। खोज कार्यक्रम को सही ढग से लागू करने के लिए निम्न क्रियाओं पर भी ध्यान देना समीचीन होगा—

१. विज्ञान प्रतिभा खोज की प्रश्नोत्तरी बनाई जाए।

२ प्राथमिक शाला की विज्ञान कक्षाओ के लिए यूनिसेफ व पाइलट योजनावत् विज्ञान शिक्षण किट बनाए जाए तथा लोकव्यापीकरण के लिए प्रत्येक प्राथमिक शाला में मुफ्त वितरित कराए जाए।

३ प्राथमिक शालाओ मे गुणात्मक सुधार हेतु शाला विकास केन्द्र की समुचित समिति बने तथा इनमे विज्ञान क्लब या विज्ञान विकास केन्द्र का समुचित प्रतिनिधित्व हो।

४. प्राथमिक शालाओ के विज्ञान व गणित अध्यापको को सेवा काल मे प्रशिक्षण वेतन-वृद्धि अतिरिक्त भत्ता वा अन्य सुविधाए दी जाए और विज्ञान मेला आदि के अवसरो पर उच्चतर माध्यमिक शालाओं के अध्यापकों के समान ही प्रबध सयोजन में सहायको के रूप में स्थान दिया जाए।

यदि उपर्युक्त बातों पर चिन्तनमनन करके शिक्षको तथा बच्चो के लाभ के लिए कुछ कदम उठाए गए तो निश्चय ही हमारे देश और विज्ञानिक पक्ष के लिए जा सकते है।

□

जोड़ बाकी-कक्षा १ से ३ तक के लिए

---नामदेव मस्की
बी. एस. पी. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
भिलाई, मध्यप्रदेश

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। हमारे ग्रामीण अचलो के आदिवासी छात्रो पर आरभ से ही विज्ञान से सबंधित विपयों/तथ्यों का ज्ञान देने का प्रयास किया जाता रहा है ताकि वे समय एव युग के साथ चल सके। विज्ञान के प्रति रुचि जाग्रत करने के लिये उन्हे गणित विपय के ज्ञान को भी आरभ से ही दिए जाने की आवश्यकता अनुभव की गई है क्योकि विज्ञान का अध्ययन गणित की सहायता के बिना सम्भव नही है। हमारे देश के अधिकाश बालक अपनी शिक्षा प्राथमिक शाला के स्तर से ही छोड देते है। विद्यालयों में गणित की शिक्षा पहली कक्षा से आरम्भ हो जाती है। गणित विपय को सरल एव बोधगम्य करने के पश्चात् ही इसके अध्ययन में बालकों की रुचि सभव हो सकती है अन्यथा बालक को इसी अवस्था से गणित विपय पहाड जैसा लगने लगता है परिणाम स्वरूप वह गणित से घृणा करने लगता है जिसके कारण उसे विज्ञान के क्षेत्र से भी अरुचि उत्पन्न हो जाती है।

कक्षा पहली, दूसरी एव तीसरी में यदि बच्चा गणित की साधारण क्रियाओ जैसे जोड, बाकी, गुणा भाग आदि समझने मे पिछड जाता है अथवा ठीक से समझ नही पाता तो वह इस विपय से अगली कक्षा से मुंह मोडने लगता है। विज्ञान शिक्षा की जड ही गणित है उसी से बालक के वास्तविक शैक्षिक जीवन का प्रारभ होता है। अत: जनसाधारण के उत्थान मे वैज्ञानिक उपलब्धियो के योगदान का प्रचार करने के उद्देश्य से यहा ग्रामीण शालाओ के लिए गणित शिक्षा में एक नवाचार प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है कि प्राथमिक शालाओ के शिक्षक कक्षा १, २, व ३ के बालको के जोड एव बाकी क्रिया के प्रश्नो को हल करने मे निम्नाकित सरल एव व्यावहारिक विधि अपनाएगे।

चार्ट बनाने का सिद्धांत

लगभग समस्त प्राथमिक शालाओ मे गिनती की गोलिया सरकाने वाला (९ × ९) का यत्र रहता है, उसी के आधार पर वैसा चार्ट कागज या बोर्ड पर खडे स्तंभो में छोटे छोटे गोलाकार बिदुओं को अकित करके बनाया जा सकता है। इसे बनाने मे यह सावधानी बरते कि गोलियो मे क्षैतिज पक्तिया भी बनी रहे।

चार्ट की कार्यविधि का विवरण व जोड़ के प्रश्न हल करना

उदाहरण १

८ + ६ = १४ यहा हमे ८ + ६ जोडना है अत: ८ के आगे की गिनती के क्रम को हम ६ वाले खड़े स्तम्भ की गोलियों के साथ गिनते चले जाएगे। यथा (९,१०,११, १२, १३, १४) इस प्रकार अतिम गोली का संख्यांक ही अभीप्ट उत्तर है जबकि पुरानी प्रचलित विधि के अनुसार छात्र इसी प्रश्न को जोडने के लिए पहले ८ रेखाएं खींचेगा फिर ६ रेखाए खीचेगा, अब यह इन सब को गिनेगा, इस कार्य में व्यर्थ ही समय नप्ट होता है। छोटे बालक द्वारा खींची गई रेखाओं एव उनकी गणना मे त्रुटियो की अधिक संभावना रहती है, परिणामस्वरूप शुद्ध (सही) उत्तर की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

उदाहरण २

	दहाई	इकाई
	२	४
+	१	५
	३	९

हल : ऐसे प्रश्नों में पहले इकाई के अंको को उपरोक्त सुझाई गई नई विधि द्वारा अपने चार्ट की सहायता से जोड़ेंगे तथा ४ के आगे की गिनती का क्रम ५ वाले खड़े स्तम्भ की गोलियो के साथ गिनते चले जाएंगे। अंतिम गोली का सख्यांक ९ ही इकाई का उत्तर होगा। पुन. अब दहाई के अंकों का जोड़ भी इसी नियमानुसार प्राप्त होगा। अतः अभीष्ट उत्तर ३९ प्राप्त हो गया।

उदाहरण ३

```
 ६८
 ७२
 ५४
१९४
```

हल. इकाई मे ही क्रमश ८,२,४ सख्याओ का जोड़ है। अतः आप ८ के खाने की गिनती २ वाले स्तम्भ मे गिने। अंतिम गोली का सख्यांक १० के आगे की गिनती का क्रम पुन: ४ वाले स्तम्भ मे जारी रखे अब इस अंतिम स्तम्भ की अंतिम गोली का सख्यांक ही इकाई का अभीष्ट उत्तर १४ होगा, दहाई के अंको ६; ७ एवं ५ को उपरोक्त विधि अनुसार जोडे जिससे हासिल की सख्या सहित प्राप्त उत्तर १९ आएगा जिसे दहाई की नीचे लिख लें, अब अभीष्ट उत्तर १९४ होगा।

नोट—जोड़ वाले गणित हल करने हेतु आपके चार्ट का केवल (९×९) वाला हिस्सा ही पर्याप्त होगा। अत शिक्षक गणित से सबंधित प्रश्न को छात्रो को सिखाते समय कागज पर पृथक से (९×९) वाला ही चार्ट बनाकर गणित करने का अभ्यास दे सकते हैं ताकि छात्र छोटे चार्ट को ही भली भांति समझ सके। तत्पश्चात (१८×१८) वाले चार्ट के दूसरे हिस्से द्वारा बाकी के प्रश्न करना बताए। □

प्राथमिक विद्यालयों में मातृ-भाषा शिक्षण

—स्नेहलता शुक्ल
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,
नई दिल्ली

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा किए गए कई एक शोध कार्यो मे यह बात उभर कर आई कि प्राथमिक विद्यालयो में विद्यार्थी बडी देर से पढना सीखते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व किए गए अध्ययन के अनुसार एक राज्य में कक्षा एक के ५० प्रतिशत तक छात्र वर्ष के अन्त तक एक भी शब्द पढ़ पाने मे असमर्थ थे, लगभग २० प्रतिशत छात्रो की कक्षा दो के अन्त तक यही हालत थी। विभिन्न अनुसन्धान कर्ताओ ने यह अन्दाज लगाया है कि कक्षा तीन और चार मे प्राय. विद्यार्थी आसानी से पढ़ तो सकते हैं लेकिन उनमे भी अधिकतर शब्दों का उच्चारण नही कर पाते और पढने की गति भी धीमी रहती है।

शिक्षाविदो का अनुमान है कि प्रथम छ. से नौ महीनों के बीच में सभी विद्यार्थियो को लिपि ज्ञान हो जाना चाहिए और छात्रों को सुगम सामग्री आसानी से पढ़ पानी चाहिए। पाठ्यपुस्तकें भी कदाचित इस मान्यता को आधार मान कर लिखी जाती है। कक्षा तीन में अन्य कई विषयों की पाठ्यपुस्तके भी विद्यार्थियों द्वारा पढ़ पाने की अपेक्षा की जाती हे। यह तभी संभव है जब छात्र उचित गति से पाठ्य सामग्री पढ कर उसे समझ पाए।

ये विद्यार्थी पढ़ना क्यों नही सीख पाते? इस विषय मे एक मुख्य कठिनाई, यथेष्ट पठन सामग्री व सहायक सामग्री का अभाव है। प्राय: कक्षा एक के लिए (दो के लिए भी) एक पाठ्य पुस्तक रहती है। जिसमे क्रमबद्ध रूप मे लिपि ज्ञान दिया जाता है। लिपि ज्ञान की आयोजना कैसी भी हो, जैसे अक्षर, मात्रा शब्दों की ओर या फिर वाक्य शब्दो से अक्षर और मात्रा की ओर सीमित शब्दो अक्षरों या मात्राओ को एक पृष्ठ पर थोडी सी सामग्री के माध्यम मे दोहराया जाता है। प्राय. पुस्तको को आकर्षक बनाने के लिए व कुछ अन्य उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायता के तौर पर अधिकतर पृष्ठो पर चित्र भी बने रहते है।

पढाते समय अध्यापक पुस्तक का पृष्ठ विशेष खुलवाकर एक-एक वाक्य/शब्द/अक्षर पढ़ाते है और विद्यार्थियो को सस्वर दोहराने को कहते है। यह क्रिया समूह मे और कभी-कभी अलग-अलग विद्यार्थियों के साथ भी की जाती है। बहुत जल्दी ही पृष्ठ के चार-छ: वाक्य, छात्र को याद हो जाते हैं, और वे उन्हे "पढ़-कर" सुना देते है। अब अध्यापक और छात्र दोनो ही अगले पाठ पर जाने को तैयार है। पाठ का मुख्य उद्देश्य लिपि पहचान पूरा नही हो पाता। उसके लिए अवसर ही नही जुटाए गए। किसी भी परिचित चित्र/व्यक्ति/सामग्री को हम प्राय. बहुत ध्यान से नही देखते। मोटे तौर पर परिचित सामग्री की सूक्ष्मता पहचानने को जब तक मजबूर न किया जाए, ध्यान नहीं जाता। चूंकि इस पाठ का पूर्ण परिचय सस्वर वाचन मे रहता है, शब्दाकृतियों पर ध्यान देने की आवश्यकता महसूस नही होती। किन्तु ये शब्दाकृतिया (व अक्षराकृतिया) नए सदर्भ मे पहचानी नही जाती। ये भी देखा गया कि कही-कही विद्यार्थी सम्पूर्ण पुस्तक "पढ" सकते हे, किन्तु श्यामपट्ट पर लिखा उसी पुस्तक का कोई वाक्य या शब्द नहीं पढ पाते। अर्थात् पूरी पुस्तक याद है, तस्वीर देखकर या अध्यापक से थोडा सहारा पाकर (जैसे पहले एक दो शब्द बोलकर विद्यार्थी को प्रोत्साहन देने से) विद्यार्थी पूरा पाठ

* ये शोध कार्य हिन्दी-भाषी क्षेत्र मे किए गए थे, निष्कर्ष वही तक सीमित हैं।

सुना देते हैं। अध्यापक को पता भी नही चल पाता कि विद्यार्थी को उचित अक्षरज्ञान हुआ अथवा नही।

लिपि, ज्ञान पढने की क्रिया सिखाने मे पहला उद्देश्य है। प्रोत्साहन के लिए कुछ भी कार्यकलाप रखे जाएं, उद्देश्य स्पष्ट है। मातृ-भाषा में यह मुख्य और महत्वपूर्ण है। विद्यालय में आने से पहले विद्यार्थी की भाषा का भी विकास हो चुका है। सीमित वातावरण मे भी ५ से ६ वर्ष की आयु के बालक को एक से दो हजार तक शब्दो का ज्ञान हो सकता है। समृद्ध वातावरण में स्थिति और भी अच्छी है। मातृ भाषा मे लिपि ज्ञान होते होते विद्यार्थी पढकर समझने की स्थिति में हो जाता है। अत. लिपिज्ञान को यथाशक्ति बढावा दिया जाना चाहिए।

लिपिज्ञान के लिए बंधी हुई एक पाठ्यपुस्तक सहायता के स्थान पर बाधा बन जाती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, नन्हे विद्यार्थियो को पाच-सात पक्ति आसानी से याद हो जाती है। चित्र या अध्यापक से थोडा सा सहारा पाकर वे पूरा पाठ बिना पढे प्रस्तुत कर पाते है। अधिकतर अध्यापको को भी पता नही चलता कि विद्यार्थी पढ़ नही अपितु बोल रहा है। लिपि की ओर ध्यान देने के लिए अध्यापक के पास ऐसी सामग्री की आवश्यकता है जिसे वह जल्दी-जल्दी बदल सके, जिससे नई शब्दाकृतिया बना सके। इसमें शब्द पट्टिकाए, अक्षर/मात्रा पट्टिकाए सहायक होगी। थोड़ी सुविधा और बहुत कम खर्च मे ये पट्टिकाए विद्यालयो मे बनाई जा सकती है। इनके द्वारा विद्यार्थियों का ध्यान लिपि पहचानने मे केन्द्रित किया जा सकता है। कुछ उदाहरण देखिए—

राम	रानी	मीरा
		—रान
रात		मीत
मत	नीम	
तम	नीत	
तरा		

यह क्रिया श्यामपट्ट की सहायता से आसानी से की जा सकती है।*

इसके लिए कक्षा में तैयार होकर जाना उचित होगा। कौन से वर्ण पर चर्चा होगी, उसके साथ अन्य कौन से परिचित वर्ण लिए जाएगे, तथा कौन कौन से सार्थक परिचित शब्द बताए जाएगे, इसके लिए पहले सोचना आवश्यक है।

श्यामपट्ट की सहायता यद्यपि बिना खर्च और मेहनत के उपलब्ध है, फिर भी यह विद्यार्थियो के पास उपलब्ध पट्टिकाओ जितनी उपयोगी नही है। सामूहिक कार्य में जल्दी सीखने और सोचने वाले विद्यार्थी समूह के साथ दोहराने की आवश्यकता है।

अगली समस्या है, लिपि पहचान से अगली अवस्था की। पढना आ गया, अर्थात् अक्षर और शब्द पहचानने लगे। मातृभाषा है तो अधिकतर शब्दो के अर्थ आते ही है। अब आवश्यकता है आगे बढने की, पढ़ने में गीत बढाना, विभिन्न सामग्री को पढकर समझना, उसके प्रति प्रतिक्रियाएं होने, भाषा का ज्ञान बढना आदि। इस सब मे विशेष सहायक है "पढना"। बहुत सी कहानी, किताब पढने को मिले तो पठन योग्यता का विकास और व्याकरण का ज्ञान बढे, भाषा की समृद्धि हो। किन्तु हमारे पास तो केवल पाठ्यपुस्तक है, उसको कोई कितनी बार पढ़े। एक ही पुस्तक को बार-बार पढ़ने से अरुचि ही तो उत्पन्न होगी। प्राथमिक विद्यालयों मे पुस्तकालय होना अत्यावश्यक है। बालोचित छोटी-छोटी पुस्तके अब बाजार में उपलब्ध है, इन्हे विद्यालयो में देने की आवश्यकता है। यह सही है कि अपने स्तर पर अध्यापक इसमे विशेप कुछ नही कर सकते। किन्ही शहरी विद्यालयो मे बाल पत्रिकाए खरीद कर तथा विद्यार्थियो द्वारा प्राप्त कर ही छोटे कक्षा पुस्तकालय बनाए जा सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्र मे, प्रशासन को सहायता देनी होगी। विशेष कर उन विद्यालयों में

* कक्षा एक के विद्यार्थियों को इस विधि से श्यामपट्ट की सहायता द्वारा पढाने पर १५ दिन के बाद आधे से अधिक विद्यार्थी छोटे सरल वाक्य पढने लगे। यह परीक्षण उस समय किया गया था जब विद्यार्थियो को पाठशाला आते हुए पांच महीने हो चुके थे।

जहा ऐसे विद्यार्थी आते है जिनके अभिभावक अतिरिक्त पाठ्य-सामग्री नही खरीद सकते ।

कुछ समस्या लेख मे भी देखी गई । "लेख" मे भी सब से पहली क्रिया लिपि आकृतिया बनाने की है । सर्वप्रथम विद्यार्थी हाथ को स्थिर रखना, वांछित चिन्ह ठीक अनुपात से बनाना सीखते है । अध्यापक इसे बार-बार लिखवा कर अभ्यास के लिए अवसर जुटाते है । किन्तु देखकर नकल करने की क्रिया बहुत देर तक चलती रहती है । स्मृति से अक्षराकृत्ति बनवाने की ओर ध्यान नही दिया जाता अर्थात् श्रुतलेख नहीं करवाया जाता । एक प्रदेश में अध्यापकों ने कहा कि वे पांचवी कक्षा से पहले श्रुतलेख नही करवाते । न पढने में लिपि की पहचान पर जोर दिया जाए और न लिखने मे तो विद्यार्थियो द्वारा पढना सीखने मे इतनी देर लगाना कोई अचम्भे की बात नही है । जिन शब्दाकृतियों से पढने मे परिचय हो, उन्हें शीघ्र ही श्रुतलेख मे लिखवाने से पढने मे भी सहायता मिलेगी ।

लिखने का मुख्य उद्देश्य अभिव्यक्ति है । जैसे ही विद्यार्थी लिपि अकन सीख लें, अभिव्यक्ति के अवसर दिए जाने चाहिए । बोल कर अपने विचार प्रकट करने का अभ्यास लेकर बालक पाठशाला आते हें, लिखित अभिव्यक्ति मे सकोच उत्पन्न करने की अधिकतर जिम्मेदारी व्यवस्था पर है । यह सच है कि बालको की मौखिक अभिव्यक्ति प्राय: अनौपचारिक रहती है, और लिखित अभिव्यक्ति के विषय मे यह नही कहा जा सकता । इसी अवस्था मे प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है ।

भाषा शिक्षण के अन्य दो उद्देश्य बोलने और सुनने की क्षमताओं का विकास है । ये दो उद्देश्य उपरोक्त दोनो उद्देश्यों यानि पढ़ने और लिखने की योग्यता की उपलब्धियो से दो तरह से भिन्न हैं । पहली कक्षा मे आने वाला विद्यार्थी न पढ़ना जानता है न लिखना, अध्यापक शुरू से आरम्भ करते है । किन्तु ये बालक चार से पाच वर्ष तक बोलते और सुनते रहे है और उन्हे इस स्तर से आगे ले जाना है । दूसरा, बिन्दु सामग्री और कार्यक्रम का है । पढ़ना और लिखना सीखने व सिखाने के लिए कुछ निर्धारित सामग्री, छात्र और अध्यापक के पास है, पाठ्यपुस्तक है, कदाचित् अध्यापन निर्देशिका है, कापी पैन्सिल या स्लेट-पैन्सिल है, श्यामपट्ट-चाक है आदि । किन्तु "बोलना" और "सुनना" के विकास के लिए कोई निर्धारित सामग्री या कार्यक्रम नही है । पाठयक्रम मे कुछ अपेक्षाए रहती है अध्यापको के लिए कुछ निर्देश भी । कही-कहीं पाठ्यपुस्तक मे कुछ सामग्री भी इस उद्देश्य से दी जाती है । यदि अध्यापक पाठ्यक्रम या "निर्देशिका" आदि ध्यान से न पढे और यह प्राय होता है तो इन दो उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कुछ ठोस कार्यक्रम उनके पास नही रह जाता ।

पठन योग्यता के विकास पर बड़ा जोर दिया जाता है । आज से दो-तीन दशक पहले तक यह उचित था ज्ञानोपलब्धि का सामान्य साधन लिखित शब्द ही था । किन्तु रेडियो, और टेलीविजन एव फिल्म के विकास के साथ श्रवण-योग्यता का विकास भी उतना ही महत्वपूर्ण हो गया है जितना पठन योग्यता का । आज अनपढ व्यक्ति अशिक्षत रहने पर मजबूर नही है । रेडियो और अन्य साधनो द्वारा उसकी ज्ञानवृद्धि सम्भव ही क्या निश्चित है । इस वातावरण में सुनकर समझने, सोचने और प्रतिक्रिया पर ध्यान देने की आवश्यकता बहुत बढ गई है । अध्यापको के पास सम्बन्धित शिक्षण सामग्री का अभाव है । अपेक्षा की जाती है कि अध्यापक विद्यार्थियो को कहानी, कविता, सामयिक विषयों के विषय में अपने विचार सुनाए और विद्यार्थियो की प्रतिक्रियाओं को प्रोत्साहन दें । इसी कार्यक्रम में विद्यार्थियो के लिए बोलने के लिए भी अवसर जुटाए ।

कई रेडियो स्टेशनो से प्राथमिक कक्षाओ के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत होते है । विद्यार्थियो को सुनने का अवसर मिलना चाहिए । रेडियो सेट अब महगे नही हैं । सप्ताह में दो बार होने वाले कार्यक्रम को अध्यापक अपने ट्रांजिस्टर सेट या किसी अभिभावक से मागे सेट पर सुनवा सकते है । अभिप्राय: यह नही कि विद्यालयो मे रेडियो सेट न दिए जाएं । प्राथमिक विद्यालयो के लिए प्रसारण और विद्यालयों में रेडियो सेट की व्यवस्था करने के लिए प्रशासन का ध्यान

खीचना चाहिए। कहना केवल यह है कि सुनने और बोलने के अवसर जुटाने की आवश्यकता है।

कभी कभी यह भी कहा गया है कि प्राथमिक कक्षाओ के नन्हे विद्यार्थी मनोयोग से रेडियो कार्यक्रम नही सुन पाते। जल्दी ही उनका ध्यान बंट जाता है या वे ऊबने लगते है। राजस्थान मे किए गए एक प्रयोग में इस बात का समर्थन नही हुआ। विद्यार्थियो ने न केवल रेडियो सुनने मे अभिरुचि का प्रदर्शन किया, कार्यक्रमों से बहुत कुछ सीखा भी। ज्ञान वृद्धि तो हुई ही, भाषा विकास और सुनने की योग्यता मे भी अभिवृद्धि हुई।

प्रत्येक अध्यापक से बहुत सी कहानी-कविता व विषय वार्ता की अपेक्षा नही की जा सकती, उनके पास भी तो सामग्री का अभाव है। रेडियो एक आसानी से उपलब्ध माध्यम है जिस के द्वारा यह सहायता दी जा सकती है।

किसी भाषा मे बोलना या सुनना सिखाना हो तो उस भाषा को सुनने और उसमे बोलने के अवसर जुटाना नितान्त आवश्यक है। यह भी देखा गया कि कई अध्यापक बराबर स्थानीय भाषा मे बोलते है, विद्यार्थियो से भी उसी मे उत्तर की अपेक्षा करते है। अधिकतर विद्यार्थी प्रदेश की मुख्य भाषा समझ लेते है और प्रोत्साहन देने से बोलने लगते है। इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। □

समाचार और विचार

शिक्षण के लिए खिलौने

बालकों को खिलौनों से विशेष प्रेम होता है और उनके माध्यम से ही उनके दिमाग में प्रथम छवि अंकित होती है। तब उन्हें शिक्षा देने का खिलौनो से बढ़कर और कौन सा माध्यम हो सकता है। छोटे बालकों के लिए शैक्षिक खेल सामग्री विकसित करने के पीछे यही मूल विचार है।

लकडी की गाडी को लडखडाते हुए चलाते अक्सर बालक को देखा जा सकता है, इसके सम्बन्ध मे "आन्ध्र प्रदेश की खेल सामग्री" पर एक पुस्तिका में रोचक वर्णन दिया गया है। उसका शैक्षिक मान देखते हुए वह बालको मे समूह मे खेल खेलना और उनमे आपस मे प्रतिक्रिया जाग्रत करती है, इसके अलावा इसके माध्यम से बालक ढलान, ऊँचाई, भारी, हल्का, करीब और दूर जैसे सिद्धान्त से भी परिचित हो पाता है।

इसी प्रकार "झुनझुने" के सम्बन्ध मे पुस्तिका मे बताया गया है कि झुनझुने से उत्पन्न ध्वनि बालक का ध्यान अपनी ओर आकर्षिक करती है। उत्सुकता-वश बालक यह पता चलाने के लिए कि ध्वनि कहा से उत्पन्न हो रही है, उसकी ओर घुटनों के बल आगे बढ़ता अथवा चलता है।

वयस्क बालको मे इसका उपयोग ध्वनियो को पहचानने अथवा विभेद करने, धीमी, तेज, ऊची, नीची, हल्की और तीव्र ध्वनियों को सीखने मे किया जाता है।

इससे भी अधिक उम्र के बालक झुनझुने का उपयोग लय बनाने मे करते हैं जिसकी मदद से वे सख्याओ को सीख पाते हैं।

कुमारी रविथा देवेन्द्रनाथ, लैक्चरर, प्रिन्सस एसिन वुमैन एजुकेशन सैन्टर (निजामिआ हैदराबाद वुमैनस एसोसिएशन ट्रस्ट), हैदराबाद द्वारा आन्ध्र प्रदेश में शैक्षिक खेल सामग्री पर किए गए एक सर्वेक्षण के परिणामस्वरूप यह पुस्तिका सामने आई है। इस सर्वेक्षण को वित्तीय सहायता, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की चिल्ड्रन्स मिडिआ लैबोरेटरी, चाइल्ड स्टडी यूनिट (सी एस यू) द्वारा प्राप्त हुई। इस सर्वेक्षण से आन्ध्र प्रदेश की बस्तियो में प्रस्तुत खिलौनो का पता लगाने मे मदद मिली है।

अध्यापकों के उपयोग के लिए पुस्तिका में खिलौनों के शैक्षिक महत्व का प्रस्तुतीकरण रेखाचित्रों और तस्वीरों की सहायता से किया गया है। हालाकि प्रत्येक खिलौने का विशेष महत्व होता है किन्तु भाषा, सख्या, विज्ञान और अन्य सिद्धान्तो को उसके संघटित रूप मे सीखना सभव है।

इस पुस्तिका मे विभिन्न राज्यो के परम्परागत खेलों को सम्मिलित किया गया है। बच्चों के विकास की आवश्यकता के अनुरूप उन्हें उस योग्य बनाया जा सकता है।

यह पुस्तिका अध्यापको के लिए ही नही बल्कि शैक्षिक खेल सामग्री का डिजाइन बनाने वाले निर्माताओ के लिए भी सन्दर्भ पुस्तिका के रूप में उपयोगी सिद्ध होगी। इससे "खेल द्वारा शिक्षा" सिद्धान्त को भी मान्यता मिलेगी जिसकी कि वयस्क समुदाय मे प्रचार की अत्यधिक आवश्यकता है। बिना कुछ पूजी लगाए, केवल थोड़े से प्रयास, रुचि, कल्पना से, स्थानीय सामग्री का उपयोग करके वयस्क अपने बालकों में क्षमता विकसित कर सकते हैं।

पुस्तिका मे दिए गए खेल और गतिविधिया सुझावात्मक है। अधिक खेलों मे आविष्कार और वातावरण की सभावनाए और जागृति पैदा करने के लिए चित्र दिए गए है।

शैक्षिक मानों को ध्यान में रखकर पुस्तिका मे ६८ खेल सामग्रियां दी गई हैं।

पूर्व प्राइमरी और प्राइमरी की प्रारंभिक कक्षाओं के छात्रों को अपने आस पास के संसार को समझने के लिए ठोस अनुभवो की आवश्यकता है और यह शिक्षा

उन्हे खेल के माध्यम से दी जा सकती है। केवल थोडी कल्पना, स्रोत और प्रयास से अध्यापक उन अनुभवो की शिक्षा बालको को दे सकते है जिन्हें कि वे सीखने की कोशिश मे रहते है।

स्कूली शिक्षा की रूडोल्फ-स्टीनर प्रणाली

"रूडोल्फ स्टीनर एन्थ्रोपोसोफी पर आधारित प्रभावकारी स्कूल प्रणाली पर २४ जनवरी को एक व्याख्यान के दौरान अबान बाना ने कहा-शिक्षा का उद्देश्य बालक के अनुभव का व्यापक विस्तार करना होना चाहिए—वास्तविकता और सच्चाई क्या है उसमें इस जागृति का विकास होना चाहिए।

अबान बाना, भारतीय पारसी है और उन्होंने स्वीटजरलैण्ड मे प्रणाली का पाच वर्ष तक अध्ययन किया है। स्वीटजरलैण्ड, बेसल के रूडोल्फ स्टीनर विद्यालय मे उन्होने पाच वर्ष तक अध्यापन किया है। अपने देश मे इस विचारधारा की शुरूआत के लिए वे वापस स्वदेश लौट कर आई हैं और आजकल मैक्स म्यूलर भवन में अध्यापन कर रही है।

रूडोल्फ स्टीनर एक आस्ट्रिअन विचारक और सुधारक थे, उन्होंने ही एन्थ्रोपोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की थी। बाना के अनुसार स्कूली शिक्षा की रूडोल्फ स्टीनर प्रणाली संसार के विभिन्न भागो मे प्रचलित है किन्तु भारत मे यह नया सिद्धात के रूप मे सामने आया है। इसका उद्देश्य बालक को बौद्धिक रूप से ही नही नैतिक तौर पर भी शिक्षा देना है।

बाना जी का कहना है कि शिक्षा देते समय मानवीय तत्व को नही नकारना चाहिए और बालक की आत्मिक पक्ष की ओर भी पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।

शिक्षा की रूडोल्फ स्टीनर प्रणाली की कार्यविधि के विस्तार के बारे मे बताते हुए उन्होंने कहा कि इन स्कूलों मे कोई प्रिंसीपल नही होता, अध्यापक ही एकजुट होकर एक टीम के रूप मे कार्य करते हैं। अभिभावको की आय के अनुरूप बालक के लिए स्कूल की फीस निर्धारित की जाती है इसीलिए आर्थिक पक्ष कोई समस्या उत्पन्न नही करता। इससे सभी स्तर के बालकों को स्कूल मे प्रवेश लेने का अवसर प्राप्त होता है।

महिलाओं की स्थिति का प्रलम्ब

नैशनल इस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन के शैक्षिक प्रशासक और सम्बन्धित व्यक्तियों, विषय विशेषज्ञो, स्कूल प्राध्यापकों, अध्यापक शिक्षको, पाठ्यक्रम बनाने वाले, पुस्तक लेखको ने अनेक सम्मेलनो मे भाग लिया और कुछ मानो पर सोच विचार किया जिसके परिणामस्वरूप अध्यापको के लिए एक प्राथमिक हस्त-पुस्तिका सामने आई, "पाठ्यक्रम के माध्यम से महिलाओ की स्थिति"।

वुमैन एजुकेशन यूनिट (डब्ल्यू इ. यू.) द्वारा निकाली गई यह पुस्तक महिलाओ की स्थिति के समानुपातिक मानो पर प्रकाश डालती है। उसमे चिन्हित मान और आनुशासिक उद्देश्य भी सम्मिलित हैं।

स्त्री और पुरुष में निश्चयात्मक व्यवहारो के उबारने के उद्देश्यो के मानों को पुस्तिका में प्रलम्बित किया गया है। इसमें प्राथमिक अवस्था के अध्यापको के लिए भाषाओं (हिन्दी, इगलिश, संस्कृत और उर्दू), सामाजिक विज्ञान (भूगोल, नागरिक शास्त्र और इतिहास) गणित और विज्ञान के प्रलम्बन डिजाइन सम्मिलित हैं।

"यह पुस्तिका बालकों मे वैज्ञानिक मानसिकता के अनुरूप सामाजिक तथ्यो को समझाने में अध्यापको की सहायता करती है। समाज मे महिलाओं का स्तर बनाए रखने में यह सहायक है। "भाषा" (सस्कृत) का मूल्याकन करते हुए पुस्तिका में बताया गया है कि संस्कृत के अध्यापको को वैदिक समय का

अधिक ज्ञान है जबकि समाज में महिलाओं का स्तर ऊंचा था।

"· इन्टर हाउस प्रतियोगिता, महिला ऋषियों के नाम पर हाउस का नाम रखना, वैदिक और उपनिषद काल मे महिलाओं की उच्च स्थिति दर्शाते हुए प्रदर्शनी लगाना, महिलाओ द्वारा किसी भी क्षेत्र मे लिए गए प्रशंसनीय कार्य के सम्मान मे निकाले गए टिकट को एकत्र करना"—इस सबसे लडके और लड़कियों को यह समझने का अवसर प्राप्त होता है कि समाज मे उन दोनों का महत्व है और राष्ट्रीय आदर्शों और उद्देश्यो को प्राप्त करने मे उन दोनो पर समान दायित्व है।

राष्ट्रीय स्तर पर आयोजकों के लिए पुस्तिका

शिक्षा का सर्वसामान्यीकरण में अध्यापक का रोल महत्वपूर्ण है। विभिन्न वर्गों के बालकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, परिणामस्वरूप उनकी मानसिक प्रवृत्ति से अध्यापक भली-भाति परिचित रहते है।

इसलिए यह आवश्यक है कि अध्यापको को सही प्रशिक्षित व उनका अनुस्थापन किया जाए जिससे कि उच्चतम परिणाम प्राप्त हो। किन्तु देश के सभी अध्यापकों को शामिल करना कोई सरल कार्य नही है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न राज्यों से साधन स्रोत व्यक्तियो को प्रशिक्षण कोर्स देने का दायित्व अध्यापक अपने ऊपर ले। बाद में ये व्यक्ति अपने राज्य के प्राइमरी स्कूल के अध्यापकों को अनुस्थापन कोर्स देने की व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लें।

अध्यापक शिक्षा विभाग (डी टी ई) ने अब तक तीन प्रशिक्षण कोर्स आयोजित किए है और उन्होंने तेराहनवें साधन स्रोत व्यक्तियो को प्रशिक्षित किया है। कोर्स के दौरान उन्होंने कोर्स की रूपरेखा का सुझाव प्रस्तुत किया है जो कि विभिन्न राज्यो द्वारा अपने यहा प्राइमरी स्कूल के अध्यापको को अनुस्थापन कोर्स देने के लिए अपना सकते हैं।

डा. आर के गुप्ता द्वारा लिखी गई पुस्तक "राज्य स्तर पर आयोजको के लिए पुस्तिका" मे कोर्स के लिए विभिन्न विषयो पर लिखे गए लेख और आयोजकों के लिए मार्गनिर्देश सम्मिलित है।

कम समय मे सब अध्यापको को प्रशिक्षित करने और पैसे की बचत करने के लिए सुझाव दिया गया है कि इस कोर्स को पत्राचार चक्र सपर्क कार्यक्रम के रूप मे अपनाया जाए।

दिशानिर्देशन सेवाओं से प्रगति

भारत मे दिशानिर्देश आन्दोलन पर हाल में किए गए सर्वेक्षण से जानकारी प्राप्त हुई है कि दिशानिर्देश सेवाओ के विकास से कुछ प्रगति हुई है। यह ध्यान मे रखते हुए कि यह सिद्धान्त हमारे देश के लिए बिलकुल नया है। इस क्षेत्र में प्रशिक्षण सुविधाओ और व्यक्तिगत सेवाओं का विस्तार काफी सफल रहा है।

शैक्षिक और व्यावसायिक दिशानिर्देश ईकाई द्वारा किए गए सर्वेक्षण से पता चला है कि ऐसे स्कूल जिनमे कि किसी भी प्रकार की व्यावसायिक दिशा-निर्देश सुविधा प्राप्त है उनकी सख्या १०,५४६ है जिसमे कि १,४४६ स्कूलो में पूर्णकालिक अथवा अर्धकालिक समय के लिए काउन्सलर है जो कि उनकी दिशानिर्देश कार्यक्रम की देखभाल करता है। शेष स्कूलों मे कम से कम एक प्रशिक्षित पेशा अध्यापक है जो कि उनकी व्यवसाय सूचना सेवा की देखभाल करता है। स्कूलों में दिशानिर्देश कार्यक्रम, राज्य स्तर के दिशानिर्देश ब्यूरो के समन्वय सबधी और निरीक्षण-सम्बन्धी सेवाओं के अन्तर्गत चलाए जाते है। ये ब्यूरो एस० आई० ई०, एस० सी० ई० आर० टी० अथवा शिक्षा विभागों के अन्तर्गत कार्य कर रहे है।

राजकीय स्तर पर उन्नीस राज्यो, केन्द्र शासित प्रदेशो में शैक्षिक और व्यावसायिक दिशानिर्देश ब्यूरो अथवा दिशानिर्देश एजेन्सियां है। ये इस प्रकार हैं. आन्ध्र प्रदेश, मनीपुर, मिजोरम, असम, दिल्ली,

गुजरात, महाराष्ट्र, उडीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश और पूर्वी बगाल।

केन्द्रीय व जिला स्तर पर समन्वयन समितियां, जिनमे कि शिक्षा और उद्योग विभाग के व्यक्ति सम्मिलित है, वे क्षेत्र के शिक्षा और रोजगार की गतिविधियों की देखभाल करती है। अनेक विश्वविद्यालयों और रोजगार व सूचना ब्यूरो पर दिशानिर्देश सेवा भी दी जाती है। अनेक विश्वविद्यालयो में दिशानिर्देश पूर्णकालिक डिप्लोमा कोर्स प्रारम्भ हो चुका है जिनमे से पूर्ण रूप से प्रशिक्षित दिशानिर्देश काउन्सलर प्राप्त हो सकेंगे। एन सी ई आर टी. नई दिल्ली, मद्रास और पजाब विश्वविद्यालय, व्यावसायिक दिशानिर्देश सस्थान, बबई, कॉलेज ऑफ एजुकेशन एण्ड गाइडेस, जबलपुर और इलाहाबाद ब्यूरो ऑफ गाइडेंस कुछ ऐसे सस्थान हैं जिनमे कि इस पाठ्यक्रम की सुविधा है। इसके अलावा भी स्टेट ब्यूरो ऑफ गाइडैन्स व अन्य राजकीय स्तर की एजेन्सियां प्रशिक्षण पेशा अध्यापकों के लिए तीन से छ. सप्ताह का कोर्स प्रदान करती हैं।

राजकीय स्तर की दिशानिर्देश एजेन्सियो के साथ मिलकर इ. वी. जी यू स्कूल के बालकों, अभिभावको व अध्यापकों के लिए दिशानिर्देश सामग्री, चार्ट व पोस्टर तैयार कर रहा है। इन प्रयासो से स्कूल और समुदाय स्तर पर दिशानिर्देश सेवाओं को उपलब्ध कराने और प्रचार करने मे मदद मिलेगी।

बालकों के लिए आकाशवाणी पर प्रसारित कार्यक्रम का सी एस यू द्वारा सर्वेक्षण

इलाहाबाद मे रेडियो मानीटरिंग पर एक कार्यक्रम, चाइल्ड स्टडी यूनिट (सी एस यू) द्वारा पूरा किया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रस्तुत स्थिति का सर्वेक्षण किया गया और नन्हें बालकों के लिए आकाशवाणी प्रसारण की उपयोगिता का मूल्यांकन किया गया।

ऐसे बालक जो कि इलाहाबाद स्थित रेडियो स्टेशन द्वारा प्रसारित कार्यक्रम "आओ बच्चो" सुनते थे, इस कार्यक्रम के अन्तर्गत तीन महीने तक लगातार इस कार्यक्रम के प्रति उनकी प्रतिक्रिया जानी गई।

बालकों के लिए साहित्य

बालको को अच्छा नागरिक बनाने और उनके व्यक्तित्व को उभारने के लिए हमारे बालकों के सम्मुख रखे जाने वाला साहित्य किस प्रकार का होना चाहिए।

"बच्चो का साहित्य, उसकी तैयारी और मूल्यांकन" से एन.सी ई आर टी द्वारा प्रकाशित पुस्तक मे इस गुत्थी का हल ढूढने की कोशिश की गई है। इस इस पुस्तक मे एन सी ई.आर टी के पाठ्य-पुस्तक विभाग द्वारा रखे गए सेमीनार में प्रस्तुत किए गए पेपर सम्मिलित है। इन पेपरों मे बालको का साहित्य कैसे तैयार किया जाए, यह बताया गया है। इस सेमिनार मे बच्चो की पत्रिकाओ के गणमान्य सम्पादक विभिन्न भाषाओं की बच्चो की पाठ्यपुस्तकों के लेखक, शिक्षा शास्त्री और अध्यापकों ने भाग लिया।

बच्चो को दिशा प्रदान करने के लिए पेपर में कल्पनात्मक चित्रो का उपयोग करने का सुझाव दिया गया है। बच्चे के मस्तिष्क पर प्रभाव छोड़ने के लिए छपाई आकर्षक होनी चाहिए। इसमे इस तथ्य पर भी जोर दिया गया है कि पुस्तकों की कीमत कम की जाए जिससे कि देश के अधिक से अधिक बच्चे इन्हे पढ सके। डा० आइ एस. शर्मा द्वारा सपादित पुस्तक में बच्चों के साहित्य का मूल्याकन करने की क्रिया और साधन के बारे में सुझाव दिए गए है

शिक्षा के विकल्प ढांचे

डा० एल. आर एन. श्रीवास्तव द्वारा "शिक्षा के प्रथम चरण के व्यापीकरण विषशेकर क्षतिकारक वर्ग के लिए विकल्प ढॉचा" विषय पर लिये गए अध्ययन में कहा, "जब ६४ प्रतिशत बालक केवल पांच

वर्ष के दौरान ही पढना छोड देते है तब अवश्य ही हमारी प्रणाली में कहीं कुछ कमी है।" एशिया मे शिक्षा के क्षेत्रीय कार्यालय और प्रशात, यूनेस्को, बैंगकाक के लिए किए गए इस पेपर मे भारत मे शिक्षा का विकल्प ढाँचा पर भी गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस क्षेत्र मे किए जा रहे लगभग सभी कार्यक्रम इसमे सम्मिलित है।

आज हमारे देश मे लगभग ०.६५ करोड़ स्कूल व तीन करोड अध्यापक हैं। इस सबका वार्षिक बजट लगभग ३०,००० करोड़ रुपए बैठता है। परिवार की सामाजिक, आर्थिक बाध्यता, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र और निम्नवर्ग की, पाठ्यक्रम की प्रकृति उनसे सम्बन्धित नही होने के कारण और स्कूलो मे आवश्यक सुविधाओ की कमी कुछ ऐसे तत्व है जिनके कारण शिक्षा का सार्वभौमिकरण कर पाना सभव नही हो पा रहा है। यहां तक कि शिक्षा की प्रस्तुत प्राथमिक सुविधाओं का भी लाभ नही उठाया जाता।

उत्तम सहायक

इस कारक को सम्पूर्ण करने मे अनौपचारिक शिक्षा अत्यन्त सहायक रही है। डा श्रीवास्तव का कहना है कि, "यह समस्या का हल भी प्रस्तुत करती है। इसका कारण औपचारिक प्रणाली की कमजोरी नहीं बल्कि इस प्रणाली के अपने कुछ गुण है।"

इस कार्यक्रम का उद्देश्य ९-१४ वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों से सबधित शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए ९ राज्यो की समस्या से जूझना है।

एन.सी.ई.आर.टी शैक्षिक मार्ग निर्देश प्रस्तुत करती है, पाठ्यक्रम मॉडल, शिक्षण संबधी सामग्री तैयार करती है और मूल्याकन के साधनों का विकास करती है। राज्य स्तर पर शिक्षा, एन.सी ई आर टी / एस आई ई., के सहायक निदेशक साथ साथ काम करते हैं। इस नई विचारधारा ने लोगो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। इसको लागू करने मे अनेक एजेन्सियाँ कार्यरत है। राज्य के शिक्षा विभागो मे लगभग ९० प्रतिशत अनौपचारिक केन्द्र काम कर रहे है।

प्रासंगिक शिक्षा

प्राथमिकता शिक्षा पाठ्यक्रम नवीनीकरण योजना (पी.ई.सी.आर.) का उद्देश्य पाठ्यक्रम की गुणता को पुर्नगठित करना है जिससे कि वह प्रायोगिक शिक्षा कार्यक्रम मे जाँच किए गए नव विचारो द्वारा अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकें।

सभी राज्यो के लगभग २४५० स्कूल और यूटी इस कार्यक्रम में कार्यरत है। यह योजना चार चरणों मे पूरी होगी। प्रथम और द्वितीय चरण १९८२ मे प्रारभ हुए, चरण तीन १९८३ मे प्रारभ हुआ और चरण चार १९८४ मे प्रारभ होकर १९८७ तक चलेगा। इस समय मे कक्षा १ से पाच तक का समूचा प्राथमिक पाठ्यक्रम का नवीनीकरण करके लागू किया जा सकेगा। इस योजना का कार्यभार केन्द्रीय स्तर पर शिक्षा सघीय मन्त्रालय और एन सी.ई.आर टी पर बराबर का है और राज्य सरकारो और सघीय राज्य प्रशासकों से इस योजना को सहायता मिलेगी।

समुदाय शिक्षा और भाग लेने की गतिविधियों के विकास (डी ए सी.ई.पी.) का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक समुदाय के लोग औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों मे भाग लें जिससे कि समुदाय के लोगों विशेषकर महिलाओं और बालको मे साक्षरता के स्तर मे वृद्धि हो। आयु वर्ष ०-३, ६-१४, १५-३५ की आवश्यकताओ की यह पूर्ति करता है।

योजना का पहला चरण कार्य वर्ष १९८१ में पूरा हुआ। दूसरे चरण का कार्य वर्ष १९८२-८३ मे होगा जिसमे ७२ समुदाय केन्द्रो को सम्मिलित करने का कार्यक्रम रखा गया। इस योजना मे पन्द्रह राज्यो को सम्मिलित किया गया है। प्रारभ में प्रत्येक मे दो समुदाय केन्द्रो की स्थापना की गई। तीन केन्द्रों के सर्वेक्षण का कार्य पूरा किया जा चुका है। केन्द्रो की संख्या ३० से ३२ करने का प्रस्ताव रखा गया है। वास्तव मे ९४ केन्द्रो की स्थापना की जा चुकी है। वर्ष १९८३ मे योजना का मूल्याकन किया जाएगा जिसके लिए सामग्री विकसित की जा रही है।

समबोध अभिगमन से प्राथमिक शिक्षा (सी. ए. पी. ई) नामक एक अन्य योजना भी रखी गई है

जिसका उद्देश्य ६-१४ वर्ष की आयु वर्ग के उन बच्चो को शिक्षा देना है जो कि अभी स्कूल मे नही हैं।

इसमें भाग लेने वाले राज्य और यू टी को तीन वर्गों मे बाटा गया है। पहला वर्ग १४ राज्य और यू टी दूसरा वर्ग ९ राज्य, तीसरा वर्ग ६ राज्य और यू टी। पहले वर्ग मे ७४ टी टी आई है, दूसरे वर्ग मे २६० और तीसरे वर्ग मे केवल २३ कार्यरत प्रशिक्षण केन्द्र है। इस योजना की शुरूआत कुछ समय पहले ही हुई है। इसलिए उसके मूल्याकन के सम्बन्ध मे कुछ कह पाना कठिन है।

पूर्व विद्यालय

प्रारंभिक बालकों की शिक्षा (इ. सी ई.) अन्य विकल्पो के लिए एक सम्पूरक के रूप मे सामने आई है। योजना के सम्मुख दो गतिविधियां है— राज्य स्तर पर योजना की शुरूआत और मजबूत करना और बालको की मीडिया प्रयोगशाला की स्थापना करना। प्रथमोक्त के अन्तर्गत अनेक कार्यक्रम विकसित किए है। उन्होने नर्सरी और किन्डरगार्डन स्कूल, बालवाडी और क्रेच आदि की शुरूआत की है। वर्ष १९८१ में, सभी भाग लेने वाले राज्यो में प्रशिक्षण केन्द्र खोले गए, अध्यापक शिक्षको को प्रशिक्षित किया गया और नमूने के तौर पर प्राथमिक स्कूल मे २८ प्रदर्शन पूर्व स्कूल विकसित किए गए। वर्ष ८२-८३ में जो कार्यविधिया की जाएगी वे हैं : लगभग २२५ अतिरिक्त प्रशिक्षण सस्थाओं का चयन करना (१२५ वर्तमान मे और १०० उस से अगले वर्ष) लगभग चार (पूर्व स्कूल अध्यापक शिक्षकों का प्रशिक्षण) दो वर्ष (लगभग १२,००० अध्यापक-शिक्षकों का प्रशिक्षण (४,००० वर्ष ८२ में और वर्ष ८३ में ८,०००) नमूना क्षेत्रों मे लगभग १,०००। ५०० प्रतिवर्ष अतिरिक्त, अतिरिक्त पूर्व प्राथमिक स्कूलों का विकास और योजना के प्रभाव का वार्षिक मूल्यांकन वर्ष १९८३ मे पूरा हो जाएगा।

खिलौने और तस्वीर की किताबें

पिछले पाँच वर्षो मे छह राज्यो मे स्थानीय रूप से उपलब्ध खिलौनो का सर्वेक्षण किया गया और तस्वीर वाली कहानी की पुस्तको के लगभग १४ शीर्षक तैयार करके वितरित किए गए। खेलों की पुस्तिका बनाई गई है और रेडियो कार्यक्रम तैयार किए गए हैं। भाग लेने वाले राज्यो के पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक स्कूल के बालको द्वारा इस सामग्री का उपयोग किया जा रहा है। सगठित बाल विकास सेवा कार्यक्रम और ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत भी यह सुविधा प्रदान की जा रही है।

बालक स्कूल न छोड़े इस कार्य मे सगठित बाल विकास सेवा कार्यक्रम उनकी मदद करता है। इस कार्यक्रम से उन्हे औपचारिक शिक्षा तो नही प्राप्त होगी किन्तु प्रत्येक बालक के एच्छिक प्रवृत्ति, मान और व्यावहारात्मक तरीको का विकास होगा और वह उन्हे पर्यावरणीय प्रेरणा प्रदान करेगा।

इन्डो डच बालक कल्याण योजना उन गतिविधियो को प्रोत्साहित करता है जो कि बालक के सम्पूर्ण विकास मे सहायक होती है। मोबाइल क्रेच द्वारा प्रवासी मजदूरो के बालको की देखभाल की सुविधा प्रदान की जाती है। इस कार्यक्रम के मुख्य रूप हैं बालवाडी, वयस्क बालकों के लिए ट्यूशन की सुविधा, स्वास्थ्य की देखभाल आदि। पत्र के अनुसार "मोबाइल क्रेच में काम करने के लिए प्रशिक्षित और उपयुक्त स्टाफ एकत्र कर पाना कठिन रहा है।

इसका एक अन्य विकल्प जो सामने आया है वह है "नान ग्रेडड" स्कूल प्रणाली। इसके द्वारा बालक अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करता है और आगे बढता है। इस प्रणाली का जब मूल्याकन किया गया तो यह तथ्य सामने आया कि अन्य स्कूलों की तुलना मे इसमें बालकों की स्थिरता में कमी है।

प्रहार पाठशाला उन बालको की मदद करती है जो कि आर्थिक कार्यविधि मे जुटे होते है। उन्हें स्कूल मे कम समय पढ़ना पड़ता है। यह योजना एक

विकल्प मॉडल के रूप में स्वीकार की गई थी किन्तु वह अधिक समय तक छात्रों के हित मे काम नही कर पाई।

शिष्ट स्कूल, अध्यापक छात्र सख्या में वृद्धि का अवसर प्रदान करती है और शैक्षिक सुविधाओ का अधिकतम उपयोग करती है। दिल्ली के स्कूलो मे अधिकतर यही प्रणाली प्रचलित है।

अन्य सफलता

उपग्रह शिक्षण सम्बन्धी दूरदर्शन प्रयोग का विस्तार उन क्षेत्रो मे किया गया जहा कि पहले पहुंच नही थी और वह प्रयोग अत्यधिक सफल रहा। इसके लिए उन राज्यों का चयन किया गया जिनमे से कि कुल मिलाकर २४०० गाव (प्रत्येक राज्य मे ४००) मे शैक्षिक कार्यक्रम का प्रसार किया गया।

प्राथमिक स्कूल की आयु वाले विभिन्न प्रतिकूल अवस्था के वर्ग के लिए विशेष प्रारूप तैयार किए गए। अध्ययन का दूसरा भाग मुख्य रूप मे इसी से सम्बन्धित है।

इसके अलावा महिलाओ और लडकियो के लिए शैक्षिक विकास कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण स्थान है। कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण जनसख्या, सामाजिक रूप में पिछडे वर्ग अथवा क्षेत्र, नगर की गन्दी गली, गलियों मे रहने वाले, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, न्यून सुविधा प्राप्तकर्ता, विकृत रूप और शारीरिक व मानसिक बालको की समस्याओ पर गहन रूप से विचार किया गया है और उन्हे सुविधा प्रदान की गई है।

अध्ययन में ऐसे अनेक कार्यक्रम पर विचार किया गया है जिनकी योजना है अथवा आवश्यकता है किन्तु उनका प्रारूप नही तैयार किया गया है। विषय से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को सामने लाता है। अध्ययन मे ऐसे सुझावों पर भी विचार किया गया है जो कि हमारी शिक्षा प्रणाणी के लिए विकल्प योजना प्रस्तुत करते है। □

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 8 अंक 3 जुलाई 1983

संवेदनशीलता के लिए शिक्षा —प्रो० राजेन्द्रपाल सिंह 3

बालक, बाल-साहित्य और पत्रकारिता —जयप्रकाश भारती 6

शिक्षक का मानसिक स्वास्थ्य —रामदत्त शर्मा 9

भारतीय संस्कृति की पहचान—शिक्षा में —द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी 12

प्राइमरी कक्षाओं में उच्चारण पर जोर देना —सुधारानी चौहान 15

प्राइमरी कक्षाओं में छात्र सहभाग —प्रभाकर सिंह 17

खेल खेल में भाषा शिक्षण —डा० इन्द्रसैन शर्मा 21

पर्यावरणी उपागम के लिए शिक्षण कौशल —श्रीमती सरला राजपूत 23

दृश्य-श्रव्य सामग्री के रूप में कठपुतली का प्रयोग —डा० नरेश कुमार 26

शिक्षा और संस्कार —श्रीमती शशि कला 28

बालक क्यों भूलते हैं—कारण और निवारण —हरीशंकर शर्मा 30

राज्यों से 32

संवेदनशीलता के लिए शिक्षा

—प्रो० राजेन्द्रपाल सिंह
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,
नई दिल्ली

संवेदनशीलता हमारे प्राय सभी धर्म ग्रन्थों की शिक्षा का मूल रहा है। जैन और बौद्ध धर्म तो पूर्ण रूप से इसी को आधार मानकर अपनी शिक्षा दीक्षा करते रहे है। "करूणा" का समस्त भारतीय धर्मों मे विशेष स्थान रहा है। दूसरों के प्रति आदर, स्नेह, सौहार्द, कोमलता आदि की चेतना ही संवेदनशीलता की पहचान मानी जानी चाहिए। संवेदन-विहीन प्राणी वन में खड़े एक ठूठ जैसा होगा जिसका अपने वातावरण से कोई सम्पर्क ही न हो। वास्तव मे हमारा सबका जीवन ही खतरे में हो जाए यदि प्रारम्भ मे मां अपने बालक से विमुख हो जाए या पिता परिवार चलाने के कर्तव्य को छोड बैठे। लगभग प्रत्येक मनोवैज्ञानिक अध्ययन से इस बात की पुष्टि होती है कि बालक के शारीरिक अथवा मानसिक विकास पर परिवार का प्रभाव पड़ता है और भाषा विकास के लिए तो बालक को परिवार पर पूर्ण रूप से निर्भर रहना पड़ता है। न केवल बालक का शब्दकोष ही पारिवारिक समृद्धि अथवा विपन्नता का द्योतक होता है वरन् उसका शैक्षिक विकास अथवा उन्नति भी किन्ही सीमाओ तक परिवार पर ही निर्भर करती हैं। इसलिए भावी नागरिक की संवेदनशीलता भी इसी तथ्य को ध्यान में रखकर बनाई जा सकती है।

यदि हम आज की शिक्षा व्यवस्था पर एक दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि हमारा पाठ्यक्रम मात्र "सूचना" देने और लेने के आधार पर बनाया गया है। नई से नई सूचना, अधिक से अधिक जानकारी, ऊचे से ऊंचे स्तर का ज्ञान ही हमारी शैक्षिक व्यवस्था का आधार है। किन्हीं विशेष मूल्यों को पढाने के प्रयत्न अवश्य किए जाते है पर देखने मे ऐसा नही लगता कि कुछ ऐसा हो भी रहा है अथवा नही।

आज का चाहे नागरिक जीवन हो अथवा ग्रामीण, सभी जगह सब कुछ टूट रहा है। निकट के सम्बन्ध दूर के रिश्तो में बदल रहे है और आपसी प्रेम, शका और भय और निराशा से त्रस्त है। हम नही समझ पा रहे कि शहरो के लोग एक अनजान भीड बनकर क्यो रह गए है। प्रत्येक आदमी अलग-थलग हो गया है। वह घर या बाहर निपट अकेला है। उसका दर्द सुनने के लिए किसी को समय नहीं और उसके सुखी क्षणों के लिए उसके पास किसी की सहानुभूति, हर्ष और सौहार्द से दमकता चेहरा नही। सड़को पर लोग कुचल कर मर जाते है कोई बिरला ही उस मरने वाले की खोज खबर करता। हां, रोज अखबार हिंसा और क्रूरता की कहानियां छापते नही थकते, अस्पताल में प्रत्येक का अपने उपचार मे ही रूचि है, कचहरियां लोगो के छिपे हिंसक पशु के जागरण से रची-बसी रहती है। चारों ओर अपने-अपने हित को सर्वोपरि रखकर आगे बढने की बात होती रहती है। कहना न होगा कि प्रत्येक को अपने लिए कुछ न कुछ करने की जल्दी है। और प्रतिस्पर्द्धा के कोई नियम नही है।

इस प्रकार की आपाधापी घरो, सडको पर ही नही देखी जा सकती वरन् पढाई के क्षेत्र मे वही सब कुछ हो रहा है जिसकी न किसी को जरूरत है न वह मान्य ही हो सकता है। शिक्षा की सार्वजनिक व्यवस्था एक प्रकार से किसी को हल देने के बजाए हमारे जीवन को उलझाने मे व्यस्त है।

शिक्षा का जाना माना मात्र एक ही उद्देश्य है कि वह मन स्थल में छिपे विकारों को दूर करे और हमें अपनी प्रत्येक समस्या को समझने के लिए समय-परक बुद्धि दे। हमारे इस जीवन का मार्ग अव्यवस्था और कष्टों से भरा है। इस भयावह अकेलेपन को कम करने के लिए हमे दूसरों के सहारे की आवश्यकता है। हमें दूसरों के पास जाने के लिए यह आवश्यक है कि हम संवेदनशील हो। आश्चर्य इस बात का है कि इस सवेदनशीलता के प्रचार-प्रसार के लिए हमारे पास कोई विशेष उपाय नही है। हम दूसरों के कष्ट मे सहयोगी होना चाहते है क्योंकि हम हर समय इससे अपने को बचा नही सकते। यह एक प्रकार से स्वार्थ ही है कि हम प्रत्येक को अपने जैसा ही माने, उसके आडे वक्त में काम आए। परन्तु क्या यही सब होता है ? क्या शिक्षा द्वारा यह सम्भव है ?

हम पहले ही कह चुके है कि हमारा जीवन आज समस्याओं से घिरा है और प्राय. हम अपनी समस्याओं का हल शिक्षा मे खोजते है। यदि बेरोजगारी की समस्या है तो शिक्षा को रोजगारो से जुडा होना चाहिए। यदि राष्ट्रीय एकता का प्रश्न उठता है, या कही राष्ट्रीय विघटन दिखाई पडता है तो शिक्षा को इस सन्दर्भ मे भी कुछ कार्य करना चाहिए। यदि माताएं अपने बच्चे अपनी अनुपस्थिति मे पलवाना चाहती हैं तो उन्हें 'क्रेच" चाहिए। कहने का अर्थ यह है शिक्षा व्यवस्था को प्रति दिवस नए प्रकार के संघर्ष करने पड़ते है। अभी तक यह देखने सुनने मे नही आया कि शिक्षा ने सारी उठ खड़ी समस्याओं के समाधान कर लिए है क्योंकि जीवन के बहाव मे समस्यायें जन्म लेती है और एक हल होने से पहले दूसरी खड़ी हो जाती है। फिर भी इस प्रश्न का उत्तर "हां" ही होगा जिसमे यह संदेह निहित है कि "क्या यह सब होता है" शिक्षा एक शक्तिवान साधन है जिसके अनेक माध्यम है और उसके अनेक उपयोग तथा प्रयोगों के परिणाम हमारे सामने है। प्लेटो ने कल्पना की थी कि उसके "प्रजातन्त्र" मे झूठ नही होगा और प्रत्येक अपना-अपना दिया काम करेगा। यहा तक कि स्त्रिया भी अपना रोने-धोने का स्वभाव छोडकर सैनिक-शिक्षा लेंगी। बालकों का लालन-पालन एक सामूहिक कार्य होगा। इस प्रकार स्त्रिया न केवल कर्तव्य निष्ठा की दृष्टि स वरन् राज्य के प्रशासन की दृष्टि मे भी पुरुषों से शायद ही कम होंगी। तब से आज तक अनेक स्थानो मे "कम्यूनों" की स्थापना हुई, स्त्रियों को सेना में लिया गया तथा इंगलैंड मे तो द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान स्त्रियों ने अनेक प्रकार के चमत्कार दिखाए। कहने का अर्थ यह हुआ कि न केवल कल्पनाओं मे वरन् जीवन मे भी अनेक बार अनेक स्थितियों मे शिक्षा की उपयोगिता को परखा गया है और सदैव ही वह इस परीक्षा मे सफल पाई गई है। कम से कम यह निश्चित है कि यदि यह ज्ञात हो जाए कि सवेदनशील व्यक्ति कैसे बनाया जाता है तो शिक्षा अपना काम अवश्य कर सकती है।

वैसे सवेदना के किसी विशेष रूप को विशेष परि-स्थितियों मे जन्माया जा सकता है। एक बार एक प्रयोग किया गया जिसमे प्रयोग कर्ता फासी की सजा मिले व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति जगाना चाहता था। उसने एक प्रयोग किया, जिसमें उसे सहानुभूति जाग्रत करनी थी उन्हे कैदी के परिवार की दयनीय दशा दिखाई। यह भी बताया कि आज का अभियुक्त केवल किन्ही विशेष कारणो से अपराधी बना था। अन्यथा वह हममे से किसी भी साधारण व्यक्ति जैसा ही है और होता। परिणाम मापने पर पता चला कि जिन लोगो के मन मे उस अभियुक्त के प्रति घृणा थी वह काफी कम हो गई थी। और जो लोग उस कैदी को अभी तक मनुष्य मानने के लिए भी तैयार नहीं थे, उसके अपराध को क्षम्य नही मान रहे थे, वह भी उसके मामले को सहानुभूतिपूर्वक देखने को तैयार थे। इसका सीधे शब्दो म यह अर्थ हुआ कि लोगों पर प्रभाव डाला जा सकता है और सही परिपेक्ष्य में बात रखी जाए तो उसका प्रभाव होता भी है।

कहने को प्राय: यह कहा जाता है कि सीधी शिक्षा, कक्षा में किसी सिद्धान्त का पढाया जाना प्राय असम्भव

है। उदाहरण के लिए सत्य या झूठ को पढ़ाने का कोई प्रभावी तरीका नही है। किन्तु मै सोचता हू कि हम लोगो ने कोई विशेष उपयोगी प्रयोग नही किए है। यदि करते तो ज्ञात होता कि यह मात्र भ्रम है कि पढ़ाया जाना सम्भव नही। सत्य तो यह है कि हमने आजमाया नही। यह सच है कि केवल भाषणो मे लोगो के व्यवहार मे परिवर्तन सम्भव होता तो भारत केवल देवताओं से भरा राष्ट्र होना चाहिए था। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। केवल हीन-भावना से हम ग्रसित हो गए। ठीक काम न करने के कारण हममे एक 'गिल्ट" या कमजोरी की भावना का जन्म हो गया। परन्तु हम इससे हटकर यह अवश्य देख सकते हैं कि यदि "सत्य" पढाना है और "सच" बोलने का अभ्यास डालना है तो हमे चाहिए कि बालको को हम यह बात बता पाए कि झूठ बोलने से कितनी हानिया सम्भव है तभी हमे सत्य का सही मूल्य पढाना सम्भव होगा। केवल कहना कि "सच बोलना अच्छा है" से काम नही चल सकता। यह निश्चित है कि सवेदनात्मक मूल्यो के विषय मे उचित उदाहरण उचित ढग से पेश करने होगे। यह सम्भव नही कि हम आम चाहे और बबूल बोए। उद्देश्य परक शिक्षा बड़ी मूल्यवान होती है और उसकी नीव केवल जीवन-दर्शन पर ही आधारित करनी होगी। हमे न केवल एक नया पाठ्यक्रम बनाना होगा उसके लिए विशेष प्रकार के तैयार अध्यापक चुनने होगे। प्रत्येक अध्यापक यह काम नहीं कर पाएगा। इसलिए कुछ छटे हुए लोग इस काम को करने के लिए तैयार करने होगे।

हमारा सबसे बडा कष्ट तो यह है कि हमारा पाठ्यक्रम केवल "सूचनात्मक" है रचनात्मक नही। इसलिए हम बहुत कुछ चाहकर भी नही कर सकते। स्मरण रखना होगा कि प्लेटो को अपने प्रजातन्त्र के लिए विशेष शिक्षा योजना देनी पड़ी थी। यदि हम इस शिक्षा के गम्भीर्य को बनाये रखना चाहते है तो उसके लिए कुछ स्कूल भी छाटने होगे क्योंकि प्रत्येक स्कूल भी प्रत्येक आम अध्यापक की भांति यह विशिष्ट कार्य नही कर सकता। पाठ्यक्रम भी बनाना होगा और नवीन सहायक सामग्री का चयन भी करना होगा। देखना यही है कि इस शिक्षा के लिए हम तैयारी कैसे करते है क्योंकि यह सही है कि हम इस प्रकार की शिक्षा अवश्य दे सकते है। सोचने की बात है "क्या" और "कैसे" न कि क्या यह हो सकता है? आशा है कि अन्य विषयो की भाति ही हम इस दिशा मे भी कुछ करना चाहेगे।

□

बालक, बाल-साहित्य और पत्रकारिता

—जयप्रकाश भारती
हिन्दुस्तान टाइम्स हाऊस,
नई दिल्ली

एक था कलाकार। उसे कही कोई पूछता ही नही था। एक दिन उसने एक चित्र बनाया। जिसने भी चित्र देखा, उसे ही भाया। चित्र छपा तो हाथों-हाथ बिका। फिर छापा गया, फिर बिक गया। छपता रहा और बिकता रहा। कलाकार मालामाल हो गया।

आप सोच रहे होंगे—ऐसा कौन-सा चित्र था? वह फूल से कोमल और भोले बालक का चित्र था। बालक की प्रशंसा मे जितना कहा जाए, कम ही होगा। ईसा मसीह कहा करते थे—"बच्चो को मेरे पास आने दो क्योकि ईश्वर का राज्य उन्हीं के लिए है।"

और ईश्वर के राज्य मे प्रवेश पाने के लिए जैसा सरलसहज मन होना चाहिए, वह या तो बालक मे होता है—या फिर प्रौढ व्यक्ति बडी साधना के बाद, स्वय को वैसा बनाए रख सकता है। आज चारो ओर असतोप, अशाति, कटुता और तनाव का जो वातावरण बना हुआ है, वह इसीलिए कि हम बालक से दूर-दूर हो गए है, होते जा रहे है। बच्चो से कुछ सीखने-समझने या उनकी समस्याओ को सुलझाने की हमे फुर्सत नही है।

शाला मे शिक्षा की शुरूआत बारहखडी से होती है, उसमें 'क' से कमल या कबूतर पढाया जाता है। किन्तु आज के समाज में पालक या माता-पिता के आचार-व्यवहार को देखते हुए 'क' से कठपुतली पढाना ज्यादा सही लगेगा। माता-पिता हो या शिक्षक—सभी बच्चे मे ठूस-ठूस कर अच्छे गुण भरना चाहते है, वे उसे डरा-धमका कर और ठोक-पीट कर अपनी आकाक्षाओ की कठपुतली देखने को उत्सुक रहते है। बालक हमारी जैसी आदतो वाला बने, उसकी रुचि-अरुचि हमसे मेल खाती हो, बस। हर दिन, हर क्षण—हम उस पर अपनी मान्यताए लादते रहना चाहते है। माता-पिता बच्चो मे अपनी छवि उतारने को उतावले रहते है तो शिक्षक उसे गढ-गढ कर आदर्श पुरुप बना देना चाहते है।

हिन्दी को हम सयुक्त राष्ट्र सघ मे पहुंचाना चाहते है। उसे विश्व भापा बना देना चाहते है। किंतु माता-पिता तो घर-घर मे बालक को चद अग्रेजी के शब्द रटवा कर, और हर अतिथि के सामने उनका उच्चारण करवा कर, अपने को धन्य मानते हैं। अग्रेजी माध्मय के स्कूल मे बालक को भर्ती कराना आधुनिकता की पहली शर्त है।

इस तरह बालक मे हिन्दी के प्रति या मातृभापा के प्रति हीन भावना शुरू से जड पकड़ने लगती है—और वह अपने परिवेश से कटने लगता है जहा-तहा सम्मेलन करने या गोप्ठी कर लेने से हिन्दी का प्रचार-प्रसार होने वाला नहीं है। उसकी प्रतिप्ठा मे चार चाद लग सकें—ऐसा भी नही हो सकेगा। इसके लिए हमें बालक की शरण लेनी होगी, नई पीढी के पास जाना होगा। हमारा बाल-साहित्य ही बालक को इस धरती से जोड़ सकता है। उसका रागात्मक सबध यहां के पेड़-पौधो के साथ, पशु-पक्षियो के साथ, फूलों के साथ, पास-पड़ोस के साथ और प्रकृति के साथ स्थापित

कर सकता है। माता-पिता और शिक्षक की भूमिका से भी इनकार नहीं किया जा सकता। आज के हमारे बालक इक्कीसवीं सदी के शुरु मे युवा हो जाएगे। उन्हे पता चलेगा कि डा० हरगोविन्द खुराना इस देश मे जन्मे, डा० एस० चन्द्रशेखर इसी मिट्टी मे पैदा हुए—किन्तु जब उन्हे दुनियां का सर्वोच्च सम्मान मिला, उससे पहले ही वे इस देश से नाता तोड़ चुके थे। ऐसा क्यो हुआ—इसका उत्तर देने के लिए आज के बड़े-बूढ़े और अधिकाश नेता उस समय न होंगे। केवल इन दो वैज्ञानिको को लेकर ही ऐसे प्रश्न नहीं उठेंगे। वे यह भी जानना चाहेंगे कि किन मूल्यों को लेकर हमारा राष्ट्र और समाज खड़ा है।

ऐसे चुनौती भरे वातावरण मे बाल साहित्यकार का दायित्व बड़ा जटिल है। सामान्य साहित्य का लक्ष्य हम यही मानते रहे है कि वह हमारी अनुभूतियो को समृद्ध करता है। हमारी रागात्मक वृत्तियो को नए आयाम देता है, उनका परिष्कार भी करता है। तो बाल साहित्य को इससे कई गुना यही करना चाहिए।

मै बिना सकोच के यह कह सकता हू कि हमारे बाल साहित्यकार, विशेषकर हिन्दी के लेखक इस दिशा मे जागरूक है। पिछले डेढ दशक मे हिंदी में ऐसे बाल साहित्य का सृजन हुआ है जो बाल मन के अधिक निकट है। नए-नए विषय और शैलीगत प्रयोग भी किए गए है। शिशु गीत हिन्दी मे बहुत कम लिखे गए थे किन्तु इधर तो जैसे बाढ़ ही आ गई। बाल-कविता मे भी ताजगी है और तुकबंदी के घेरे से वह बाहर निकल आई है। दिल्ली के प्रकाशको ने शिशु गीत के ऐसे संकलन छापे है जो साज-सज्जा मे किसी भी विदेशी पुस्तक से कम नही है।

हिन्दी बाल साहित्य के इस स्वर्ण युग मे बच्चों की पत्र-पत्रिकाओं ने भी नए कीर्तिमान स्थापित किए है। आज देश में बच्चों की सबसे लोकप्रिय पत्रिका हिन्दी की है, अंग्रेजी की नहीं।

डा० रामरतन भटनागर ने अपने शोध प्रबंध "राइज एड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म" मे जहा-तहा कुछ बाल-पत्रो के नाम गिनाए है। भारतेन्दु युग मे बाल दर्पण (1882) मे बच्चो की पत्रकारिता की यात्रा शुरू होती है। इलाहाबाद से आर्य बाल हितैषी (1902) का भी उल्लेख मिलता है। यो देखे तो हिन्दी की बाल पत्रकारिता की शताब्दी हम मना सकते है।

इस अवधि मे बाल पत्र-पत्रिकाओ ने अनेक कठिनाइयो का सामना किया है। इंडियन प्रैस, इलाहाबाद से प्रकाशित बाल सखा (जनवरी 1917 से प्रारम्भ) ही दीर्घजीवी हो सका और वह तिरेपन वर्ष तक निकलता रहा। "बाल सखा" ने बाल-साहित्य के निर्माण मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। दूसरा पुराना बाल-पत्र है—"बालक"। द्विवेदी युग में 1926 मे आचार्य रामलोचन शरण ने 'बालक" की शुरूआत की। यह पटना से आज भी प्रकाशित हो रहा है। प्रकाशन विभाग की पत्रिका "बाल भारती" भी पैंतीस वर्ष से निरतर निकल रही है। कहानिया, कविताए, लेख तथा विविधतापूर्ण रोचक सामग्री इसमे प्रकाशित होती है।

स्वतत्रता पूर्व के प्रमुख उल्लेखनीय बच्चों के पत्र थे—पटना से प्रकाशित, "चुन्नू मुन्नू" (सपादक : जयनाथ मिश्र), पटना की बाल शिक्षा समिति द्वारा प्रकाशित "किशोर" (संपादक : देवकुमार मिश्र), इलाहाबाद से प्रकाशित "शिशु", "वानर" (सपादक रामनरेश त्रिपाठी) और "मनमोहन" (सपादक सत्यव्रत) और सागर से प्रकाशित 'बच्चो की दुनिया' (सपादक जहूरबख्श) आदि।

हिन्दी मे बाल पत्रकारिता की यात्रा निरन्तर प्रगति की दिशा मे बढ़ रही है। अनेक दैनिक और साप्ताहिक पत्रो मे भी नियमित रूप से बच्चो के लिए सामग्री छपती है। बाल दिवस के अवसर पर "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" ने समय-समय पर कई सुदर विशेषाक निकाले है। होना तो यह चाहिए कि सभी दैनिक, साप्ताहिक तथा अन्य पत्र वर्ष में कम से कम एक विशेषांक बच्चो के लिए अवश्य निकालें।

हिन्दी के बाल-साहित्य पर कम से कम छह शोध

बंध लिखे जा चुके है—और हाल ही मे मगध विश्व-विद्यालय ने "हिन्दी की बाल पत्र-पत्रिकाए" विषय पर श्री वैद्यनाथ सिंह को डाक्टरेट प्रदान की है। बाल-साहित्य के कई अछूते पक्षों पर भी शोध छात्र कार्य कर रहे है, किन्तु हिन्दी के विद्वान, नेता और बड़े लेखक आज भी इस ओर से जैसे आख मूंदे हुए है। किसी भी प्रमुख आलोचक ने बाल-साहित्य और पत्र-कारिता का मूल्याकन करने का कष्टसाध्य काम हाथ मे नही लिया।

आज हम जो कुछ भी कर रहे है, वह सब तो बच्चों के लिए ही है, उनके उज्जवल भविष्य के लिए ही है। कल या परसो उन्हें ही सब कुछ सौंप कर हम विदा लेगे। बगला मे कोई लेखक बड़ो के लिए कितना ही कुछ लिख दे किन्तु उसे तब तक बडा लेखक नही माना जाता, जब तक वह बच्चो के लिए कुछ उत्तम रचनाओं का सृजन न करे। किन्तु हिन्दी मे स्थिति सर्वथा भिन्न है। मुझे यह कहने दीजिए कि बालक से दूर-दूर रहने के कारण ही, हिन्दी के साहित्यकारो मे कोई रवि बाबू की तरह उडान नही भर सका, उन जैसी ऊचाई तक नही पहुंच सका।

बाल साहित्य और पत्रकारिता की श्रीवृद्धि के लिए अनेक विचार तथा सुझाव रखे जा सकते है किन्तु ये पक्ष विशेष उल्लेखनीय है—

(क) बच्चों की पत्रिकाए और पुस्तके सुरक्षित रहे—ऐसा कोई केन्द्रीय पुस्तकालय या सग्राहालय कही नही है। बहुत-सा दुर्लभ साहित्य नष्ट हो चुका है और हो जाएगा।

(ख) हिन्दी के अतर्राष्ट्रीय स्वरूप की चर्चा बेमानी लगती है, यदि हिन्दी के श्रेष्ट बाल साहित्य का अनुवाद विश्व की प्रमुख पाच-छह भाषाओ मे भी न करा सके। इसके लिए कोई अच्छी योजना बननी चाहिए।

(ग) बाल पत्र बहुरंगे हाफटोन चित्रों से युक्त और आकर्षक साज-सज्जा के साथ निकाले जाते है। इससे खर्च बहुत बढ़ जाता है। किन्तु बच्चों की जेब का ध्यान रखते हुए कीमत अधिक भी नही रख सकते। दैनिक समाचार पत्रों की तराजू पर उन्हे नही तौलना चाहिए। खास तौर से सरकारी तत्र की ओर से उन्हे सुविधाएं तथा सरक्षण दिया जाना चाहिए। □

शिक्षक का मानसिक स्वास्थ्य

—रामदत्त शर्मा
शोध छात्र, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली

अध्यापक समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। देश का भविष्य अध्यापक के हाथ में रहता है। आज का बालक कल का नागरिक है। अध्यापक के आचार, विचार एवं व्यवहार का प्रारम्भिक कक्षाओं में बच्चे के मनोवैज्ञानिक विकास पर बहुत असर पडता है। अध्यापक बच्चे के लिए एक आदर्श होता है। आधुनिक युग में जहां देश प्रगति कर रहा है, वहां अनेक प्रकार की मानसिक उलझनें व्यक्ति के जीवन में आती जा रही हैं। अध्यापक इनके लिए अपवाद नहीं है। इसके कुछ कारण है, देश की अस्थिर आर्थिक दशा, बेरोजगारी, आधुनिकता एवं प्रगति के नाम पर कही जाने वाली प्रत्येक सडी-गली चीज की नकल करने की प्रवृति, आंख मूंद कर अपनी संस्कृति की प्रत्येक बात की निन्दा अथवा प्रशंसा, ज्ञान प्राप्ति एवं मौलिक चिंतन के प्रति अरुचि, खण्डित एवं भ्रांत जीवन मूल्यों की उपस्थित स्थिति आदि। इन सबने कुल मिलाकर ऐसी परिस्थियाँ पैदा कर दी हैं जिन्हें मानसिक आरोग्य की दृष्टि से भयावह कहा जा सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ व परिभाषा

मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ अति व्यापक है। इस का स्पष्टीकरण करते हुए कुप्पूस्वामी ने लिखा है—मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ मानसिक रोगों की अनुपस्थिति नहीं है। इसके विपरीत यह व्यक्ति के दैनिक जीवन का सक्रिय निश्चित गुण है। यह गुण उस व्यक्ति के व्यवहार में व्यक्त होता है, जिसका शरीर एवं मस्तिष्क एक ही दिशा में कार्य करते हैं। उसके विचार, भावनायें और क्रियायें एक ही उद्देश्य की ओर सम्मिलित रूप से कार्य करती हैं। मानसिक स्वास्थ्य, कार्य की ऐसी आदतों और व्यक्तियों तथा वस्तुओं के प्रति ऐसे दृष्टिकोणों को व्यक्त करता है, *जिनमें व्यक्ति को अधिकतम संतोष और आनन्द प्राप्त* होता है। परन्तु व्यक्ति को यह संतोष एवं आनन्द उस समूह या समाज से, जिसका वह सदस्य है, तनिक भी विरोध किए बिना प्राप्त करना पड़ता है। इस प्रकार, मानसिक स्वास्थ्य, समायोजन की वह प्रक्रिया है, जिसमें समझौता और सामंजस्य, विकास और निरंतरता का समावेश रहता है।

शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाले कारक

शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाले तथा उसके व्यक्तित्व के असमायोजन के बहुत से कारण हो सकते हैं। शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कुछ कारण नीचे दिए गए हैं -

(1) **आर्थिक कठिनाई**--अध्यापक एक बहुत ही जिम्मेवार नागरिक है जिसको प्रत्येक व्यक्ति आदर की दृष्टि से देखता है। आज के भौतिक युग में जबकि व्यक्ति अधिकाधिक भौतिक साधनों का उपभोग कर रहे हैं, अध्यापक शायद ही अपने जीवन में उन साधनों का उपभोग कर पाता है। ऐसी स्थिति में जबकि महंगाई बढती जा रही है अध्यापक का वेतन उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता। इससे उसके भीतर आर्थिक रूप से असुरक्षा की भावना जड़ कर जाती है,

जिसका प्रभाव उसके मानसिक-स्वास्थ्य पर पड़ता है।

(2) **पद की अरक्षा**—अनेक विद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति अस्थाई रूप से की जाती है। ये विद्यालय धन की बचत करने के लिए किसी न किसी बहाने अनेक शिक्षकों को ग्रीष्मावकाश से पूर्व ही विदाई दे देते है। इससे शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य पर अति अवांछनीय प्रभाव पडता है।

(3) **कार्य का अत्यधिक भार**—प्राय. लोग सोचते है कि शिक्षक को काम भी कम करना पडता है और छुट्टिया भी अधिक मिलती है। यद्यपि उसे दफ्तर मे कार्य करने वाले की अपेक्षा बहुत कम समय के लिए विद्यालय जाना पडता है, किन्तु विद्यालय जाने से पूर्व उसे प्रत्येक कक्षा के लिए पाठ्य सामग्री तैयार करनी पडती है। विद्यालय मे जितने समय शिक्षक पढाता है उसे निरतर अपना ध्यान केन्द्रित रखना पडता है। 'दी कॉमनवैल्थ टीचर ट्रेनिंग स्टडी' के अनुसार शिक्षक के कार्यों की सख्या 1,001 है, जिनमे कुछ सामान्य कार्य है—पाठ तैयार करना, उसे बालकों को पढ़ाना, उनके लिखित कार्य को जाचना, उनकी साप्ताहिक, मासिक, अर्धवार्षिक और वार्षिक परीक्षा लेना, उनके लिए विभिन्न क्रियाओ का आयोजन करना आदि। वस्तुत. उस पर कार्य का इतना अधिक भार रहता है कि वह व्यक्तिगत समायोजन की बात सोच ही नही पाता।

(4) **अपरिपक्व बुद्धि के बालकों से सम्पर्क**—शिक्षक का सम्पर्क अपरिपक्व बुद्धि के बालकों से रहता है। वे अपने व्यवहार के कारण अनेक ऐसी समस्याये उत्पन्न करते है जिनके कारण शिक्षक को मानसिक परेशानी होती है। नैतिक रूप से शिक्षक को उन समस्याओं का समाधान करना जरूरी है। शिक्षक को कई बार गलतफहमियो का शिकार बनना पडता है, जिसका उसके मानसिक स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पडता है।

(5) **शिक्षण-सामग्री का अभाव**—हमारे देश मे अधिकांश विद्यालयो मे पर्याप्त शिक्षण सामग्री नही है, जिसके कारण शिक्षक को अपनी बात समझाने मे बहुत शक्ति खर्च करनी पडती है। एलिस के अनुसार "शिक्षण सामग्री जितनी ही कम होती है उतना ही अधिक शिक्षक को बोलना पडता है, और उतना ही अधिक समय उसे शिक्षण-सामग्री को तैयार या एकत्र करने मे व्यतीत करना पडता है। अधिक बोलने और अधिक व्यस्त रहने मे मानसिक थकान थोडी या अधिक मात्रा मे सदैव बनी रहती है, फलत. उसका मानसिक स्वास्थ्य गिरता जाता है।"

(6) **बाहरी कार्यों पर प्रतिबन्ध** – शिक्षक जहा तन-मन से बच्चों के सर्वांगीण विकास मे सलग्न रहता है, वहा उसे अपने अनेक कार्यों पर प्रतिबन्ध रखना पडता है। जिनका सम्बन्ध विद्यालय तथा शिक्षण से नही भी होता उन कार्यों पर भी उसे प्रतिबन्ध रखना पडता है, निर्धारित सख्या मे बच्चों को ट्यूशन पढाना आदि यहा तक कि उसे अपनी शैक्षिक योग्यता में वृद्धि करने के लिए भी स्वीकृति लेनी पडती है। 'दी नाइन्थ ईयर बुक ऑफ दी डिपार्टमेट ऑफ क्लासरूम टीचर्स" के अनुसार—इस प्रतिबन्ध का निश्चित परिणाम होता है भय, कपट और कटुता, जो मानसिक स्वास्थ्य की विरोधी अभिवृत्तिया है।

(7) **समाज मे निम्न-स्थिति**—समाज के इस परोपकारी एव परिश्रमी-नागरिक का समाज मे कोई स्थान नही है। शिक्षक समाज के भावी नागरिकों का निर्माता एवं पथ-प्रदर्शक होने पर भी अपने को हीन तथा उपेक्षित पाता है जिसके कारण उसकी सभी आशाओं और सभी अभिलाषाओं पर इतना भारी हिमपात हो जाता है कि वह अपने मानसिक स्वास्थ्य के विकास को असम्भव समझ कर स्थाई रूप से विस्मृत कर देता है।

(8) **अस्वस्थ निवास-स्थान**—आर्थिक रूप से सबल न होने के कारण शिक्षक अच्छी बस्ती मे मकान

लेने मे असमर्थ रहता है जिसके फलस्वरूप वह किसी घनी और अस्वस्थ बस्ती मे किराये का छोटा सा मकान जिसमे धूप, वायु और प्रकाश समुचित व्यवस्था नही होती, अपने जीवन के दिन काटता है। इस प्रकार का अस्वस्थ निवास-स्थान तथा उसके आस पास का वातावरण उसको मानसिक रूप से सदैव के लिए अस्वस्थ बना देता है।

(9) **शिक्षकों का पारस्परिक संघर्ष**—शिक्षण एव घर की समस्याओ के अलावा, शिक्षको का पारस्परिक संघर्ष उनको मानसिक रूप से अस्वस्थ बनाने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षक-वर्ग मे एकता का अभाव होने के कारण विद्यालयो की स्थिति इतनी गम्भीर होती जा रही है कि ऐसे विद्यालय के दर्शन होने दुर्लभ है, जिसमें छात्रो और शिक्षको, या शिक्षकों और प्रधानाचार्य का संघर्ष अविराम गति से न चल रहा हो, जिसके कारण विद्यालय का वातावरण हमेशा तनाव पूर्ण बना रहता है। इस प्रकार का वातावरण शिक्षक के मस्तिष्क को संघर्षपूर्ण बनाकर उसे अपने समायोजन और मानसिक स्वास्थ्य का विनाश करने के लिए बाध्य करता है।

शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य का प्रभाव सीधा उसके व्यवहार पर पडता है। उसका व्यवहार जो बच्चो के लिए एक आदर्श है, बच्चो को गलत रास्ते पर ले जा सकता है। शिक्षक के व्यवहार का सीधा प्रभाव बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर पडता है जिसके कारण उसके अध्ययन मे अवरोध पैदा होता है। यदि हम शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाले कारको मे सुधार करे तो बालक के मानसिक स्वास्थ्य मे काफी हद तक सुधार आ जाएगा। शिक्षक को उचित एव नियन्त्रित रूप से वेतन दिया जाए, उज्जवल भविष्य के लिए उपयुक्त परिस्थितिया प्रदान की जाए, सुरक्षा की भावना के लिए उपयुक्त परिस्थितिया प्रदान की जाए, विद्यालयो मे प्रजातान्त्रिक वातावरण एवं न्याय, समानता एव स्वतत्रता हो, कार्य करने की दशाओ मे सुधार हो, शिक्षण के लिए पर्याप्त सामग्री हो तथा शिक्षक के परिश्रम एव कार्यों की सराहना की जाए। उसके मनोरजन के लिए समुचित व्यवस्था हो तो उसके मानसिक स्वास्थ्य मे सुधार लाया जा सकता है। □

भारतीय संस्कृति की पहचान शिक्षा में

—द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी
आलोक नगर,
आगरा

इसके पूर्व कि हम शिक्षा मे भारतीय संस्कृति की पहचान की चर्चा करे, यह आवश्यक होगा, कि हम भारतीय सस्कृति के स्वरूप और उसकी प्रमुख-प्रमुख विशेषताओ पर पहले एक दृष्टि डाल ले।

विश्व के अनेक विद्वान स्थान, काल और धर्म की दृष्टि से सस्कृति को इगित करते है, जैसे—स्थान की दृष्टि से ईजिप्शियन संस्कृति, ईरानीयन संस्कृति, बॉबीलोनियन सस्कृति आदि काल की दृष्टि से प्राचीन संस्कृति, मध्यकालीन सस्कृति, अर्वाचीन सस्कृति तथा धर्म की दृष्टि से हिन्दू सस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, क्रिश्चियन सस्कृति आदि। किन्तु भारतीय ऋषि मुनियो की संस्कृति—विषयक चिन्तन स्थान, काल और धर्म की सीमाओ से बधा हुआ नही था। उनके सामने तो पृथ्वी पर मात्र एक मानव जाति थी जिसके उन्नयन और उत्कर्ष का विचार ही उनके मन में उठता था। इसलिए वे मानव-सस्कृति किस प्रकार की हो, इसी चिन्तन में लीन रहते थे, और "भारतीय सस्कृति" इसी "मानवीय संस्कृति" के पर्याय के रूप मे पल्लवित, पुष्पित और विकसित होती गई। "भारत" शब्द की रचना की दृष्टि से भी हम यह कह सकते है कि "भा" अर्थात् "प्रकाश" मे "रत" अर्थात् दत्तचित होकर अनुष्ठान करने से मनुष्य मे जिस सस्कार-सम्पन्नता की वृद्धि होती है, वही भारतीय संस्कृति है। मनुष्य के पास शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा ये सब शक्तियां हैं। इसमे से प्रत्येक सम्यक् रूप से विकसित हो सकती है, संवर्द्धित हो सकती है तथा अच्छे संस्कारो से सम्पन्न हो सकती है। इसी शक्ति-सवर्द्धन व सस्कार-सम्पन्नता से मानव, मानव तो बन ही सकता है, "अतिमानव" भी बन सकता है, "नर' मे 'नारायण" भी बन सकता है, और यही भारतीय सस्कृति का मूलभूत ध्येय भी है।

भारतीय सस्कृति के इस स्वरूप को ध्यान मे रखते हुए अब हम उसकी कतिपय प्रमुख-प्रमुख विशेषताओ की सक्षेप मे चर्चा करेंगे। ये वे विशेषताए है, जिनसे मिलकर "भारतीय सस्कृति" के प्रकाशमान सूर्य का चित्र हमारे सामने आता है, तथा जिनसे हम शिक्षा मे भारतीय सस्कृति की पहचान करने मे काफी कुछ समर्थ हो सकेंगे। ये विशेषताए है—

(1) सामसिकता एव समन्वयन की शक्ति
(2) गतिशीलता
(3) सहिष्णुता सर्व-धर्म-समभाव
(4) अनेकता मे एकता
(5) आध्यात्मिकता
(6) धर्म व कर्म की प्रधानता
(7) प्राणी-मात्र के कल्याण मे आत्मकल्याण की भावना तथा
(8) विश्व-बधुत्व का भाव

हमने अभी भारतीय सस्कृति के जो मुख्य-मुख्य बिन्दु रखे है, अब उनका थोडा सा खुलासा और कर ले। इस सम्बन्ध मे सबसे पहली बात तो यह है, और जैसा कि स्व० प० जवाहरलाल नेहरू ने भी कहा है कि भारतीय सस्कृति का रूप सामसिक रहा है और

उसका विकास धीरे-धीरे हुआ है। इस संस्कृति मे समन्वय स्थापित करने की तथा नए-नए उपकरणों को पचाकर आत्मसात करने की बडी विलक्षण क्षमता रही है। अपनी इन्ही क्षमताओ के कारण यह संस्कृति गगा के प्रवाह के समान निरन्तर गतिशील रही है। धार्मिक सहिष्णुता तो इस संस्कृति मे सर्वोपरि पाई ही जाती है। यही कारण है कि भारतवासियो ने अशोक और अकबर दोनो को ही "महान" की उपधि से अलकृत किया है। "अनेकता मे एकता" भी भारत की एक बहुत बडी विशेषता है।

भारत जहा एक ओर अध्यात्म प्रधान देश रहा है और धर्म-प्रधान भी, वहीं वह कर्मप्रधान भी रहा है। प्राचीन ऋषि-मुनियो के अनुसार यहा अध्यात्म-ज्ञान का उदय ही सच्ची शिक्षा मानी गई है। किन्तु न तो भारत ने श्रम की उपेक्षा ही की है और न भौतिकता की ही। धर्म को भी यहां किसी सकीर्ण अर्थ मे नही माना गया है। धर्म के जो दस लक्षण मनु ने बताये है—

"धृति, क्षमा, दयोअस्तेयं, शौचमिन्द्रिय, निग्रह,
धी, विर्धा, सत्यमक्राधो, दशक धर्म लक्षणम।

जहा वे एक ओर इसके स्पष्ट प्रमाण है, वहीं गीता मे कर्म-फल का सिद्धान्त तथा तुलसी की यह घोषणा कि "कर्म-प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करै सो तस फल चाखा" इस बात के साक्ष्य है कि भारत ने कर्म की प्रधानता को भी सदैव ही स्वीकारा है। भारत की जो "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना रही है, विश्व-बन्धुत्व का भाव रहा है और प्राणिमात्र के कल्याण मे ही अपने कल्याण की कामना रही है, वह तो बेजोड़ ही है। नए भारत के निर्माण के हमारे जो आधारभूत सिद्धान्त है—सामाजिक समता, सर्व-धर्म-समभाव राष्ट्रीय एकता, लोकतन्त्र तथा विश्व-प्रेम ये भी हमें भारतीय संस्कृति से ही विरासत में प्राप्त है।

यह तो है भारतीय संस्कृति का एक संक्षिप्त खुलासा। अब हम इसको दृष्टिगत करते हुए शिक्षा के संदर्भ में यह आकने का प्रयास करेगे कि आज की हमारी शिक्षा मे इस संस्कृति की किस सीमा तक पहचान हो पा रही है।

नि सन्देह अग्रेजी शासन-काल मे भारत की शिक्षा मे भारतीयता, भारतीय राष्ट्रीयता एव भारतीय संस्कृति को कोई स्थान नही दिया गया था। किन्तु स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हमारे कर्णधारो एव शिक्षा-विदो द्वारा शिक्षा मे भारतीय जीवन-दृष्टि, भारतीय आदर्शो, मूल्यो व मान्यताओ के समावेश के बराबर प्रयास किए गए। गाधी जी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा का सूत्रपात बालक से शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के तथा अहिंसा व शोषण-मुक्त समाज के आधार पर हुआ। विश्व-विद्यालयी शिक्षा पर राधाकृष्णन् आयोग ने, माध्यमिक शिक्षा पर मुदालियर आयोग और कोठारी आयोग ने सम्पूर्ण शिक्षा-क्रमो पर अपने विचार और संस्तुतियां देते हुए विभिन्न स्तरो के लिए निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों, पाठ्यक्रमो व पाठ्यपुस्तको आदि में भारतीय संस्कृति के उन पोषक तत्वो तथा नए प्रगतिशील भारत के उन उभरते हुए आवश्यक मूल्यो के समावेश पर बल दिया जो शिक्षा के उस मूलभूत उद्देश्य की पूर्ति कर सके, जिनके अर्न्तगत बालको मे स्वस्थ आदतो, सही अभिवृतियो, मान्यताओ, और कौशल व रुचियो के उचित विकास पर बल देते हुए उनके शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक, सामाजिक व अध्यात्मिक व्यक्तित्व का निर्माण सभव होता है। केन्द्रीय सरकार के शिक्षा एवं समाज कल्याण-मंत्रालय, दिल्ली द्वारा प्रकाशित "पाचवी पचवर्षीय योजना मे शिक्षा—"1974-1979" में यह स्पष्टरूप से उल्लिखित किया गया है कि समय की सबसे बडी आवश्यकता शिक्षा-व्यवस्था को इस दृष्टि से पुनर्रचित करने की है कि उससे—

1. विद्यार्थियों मे मानवता, लोकतंत्र, समाजवाद व सर्व-धर्म समभाव की भावनाए पनपे,
2. उनमे मातृभूमि के प्रति प्रेम तथा अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति गौरव के भाव जागृत हों,
3. उनमें राष्ट्रीय एकता एव सहिष्णुता के अकुर पुष्ट हों,
4. उनमे भारत को अपनी प्राचीन गरिमा के साथ आधुनिक बनाने की ललक पैदा हो,

5. उनमें श्रम की प्रतिष्ठा उत्पन्न हो, तथा
6 वे मामाजिक समता एव न्याय, भ्रातृत्व-भावना एव समाज-सेवा के लिए समर्पित जीवन का व्रत ले ।

इस प्रकार हम देखते है कि स्वतत्रता के बाद की हमारी शिक्षा पुनर्रचना मे सैद्धान्तिक स्तर पर इस बात का निरतर प्रयास हो रहा है कि वह प्राचीन भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों व आदर्शो तथा अर्वाचीन भारतीय संस्कृति के नवीन उभरते हुए मूल्यो व आदर्शों के लिए सर्वथा अनुरूप हो ।

कहा जाता है कि वृक्ष की पहचान उसके फलों से होती है। उसी प्रकार शिक्षा भारतीय संस्कृति की असली पहचान भी हमारी शिक्षा-सस्थाओं मे निर्मित होकर बाहर निकलने वाले छात्र-छात्राओ के व्यक्तित्वों से ही की जा सकती है। और जब हम उनके व्यक्तित्वों की ओर दृष्टिपात करते है तो हमारे सामने कई बड़े गभीर प्रश्न आ खडे होते है। वे प्रश्न है क्या वे व्यक्तित्व "भारतीय" है ? क्या वे हमारी भारतीय सस्कृति के अनुरूप है ? क्या वे भारतीय सस्कृति की धारा से कटकर कही अलग तो नहीं जा रहे है ? कही हमारे सिद्धान्तो और व्यवहारो मे विरोध या सकीर्णता तो नहीं आ रही है ?

इन प्रश्नों के उतर हमे गभीरतापूर्वक सोचने होंगे और हमे वे प्रयत्न करने होंगे जिनसे कि भारतीय शिक्षा की जमुना भारतीय सस्कृति की गगा मे मिलकर ऐसे व्यक्तित्व-सगम का निर्माण करे जिसे देखते ही यह पहचान हो सके कि ये शिक्षित और सस्कृत व्यक्तित्व "भारतीय" है। □

प्राइमरी कक्षाओं में उच्चारण पर ज़ोर देना

—सुधारानी चौहान
शोपित सेन्टर, रामाकृष्णपुरम
नई दिल्ली

आज के युग में सही उच्चारण पर विशेष गौर किया जाता है। व्यक्तित्व के विकास के लिए शब्दों का सही उच्चारण करना अति आवश्यक है। यदि हम काफी पढ़े लिखे हैं, हमें प्रत्येक विषय का अच्छा ज्ञान है लेकिन हमारा उच्चारण ठीक नहीं है तो बोलने पर हमारा व्यक्तित्व दब जाएगा और हम जीवन के क्षेत्र में वह कामयाबी हासिल नहीं कर सकेंगे जो हमें अपनी योग्यता के कारण करनी चाहिए थी। हम बोलने में हिचकिचाएंगे जिससे हम अन्तर्मुखी बन जाएंगे और समाज में सबसे घुल मिल नहीं सकेंगे। इसलिए आजकल बच्चों के सही उच्चारण पर छोटी कक्षाओं में ही ध्यान दिया जाता है। बच्चों के उच्चारण सुधार पर हमें निम्न प्रकार से ध्यान देना चाहिए:—

1. **बच्चों से पाठ पढ़वाएं**—कोई भी पाठ आरम्भ करने से पहले पढ़वाना चाहिए। यदि कोई बच्चा, पढ़ते समय किसी अक्षर पर अटकता है, उसका सही उच्चारण नहीं कर सकता है तो बच्चे को उस अक्षर का सही अभ्यास करवाना चाहिए। पहले अध्यापिका को वह अक्षर, फिर पूरा शब्द स्वयं बोलना चाहिए, फिर बच्चे से बुलवाना चाहिए। इससे बच्चे का उच्चारण दोष दूर होगा। उसकी झिझक मिटेगी।

2. **उच्चारण के महत्व के विषय में बताना**—बच्चे को उच्चारण के महत्व के विषय में बताना चाहिए जिससे वह शुरू से ही उच्चारण पर विशेष ध्यान दे। वह पाठ को स्वयं भी पढ़े और अपने उच्चारण को ठीक करने की कोशिश करे। उसको अकेले में पाठ या कहानी जोर-जोर से पढ़ने को कहना चाहिए।

3. **बच्चे को पाठ धीमी रफ्तार से पढ़ने को कहना**—धीमी रफ्तार से पढ़ने से शब्दों का उच्चारण सही तरीके से होता है और शब्द भली प्रकार सुनाई भी देते हैं। पाठ पढ़ते समय बच्चों को विराम के विषय में भी बताना चाहिए कि कहां पर उसे कितनी देर रुकना चाहिए। किस शब्द पर अधिक बल देना चाहिए किस में कम। इसके विषय में भी उसे बताना चाहिए। क्योंकि शब्दों पर अधिक या कम बल देने से भी अर्थ में भिन्नता आ जाती है।

5. **ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के उच्चारण के विषय में बताना**—मात्राओं में फर्क को ठीक से न समझने के कारण अर्थ में अन्तर हो जाता है इसलिए सही मात्रा के प्रयुक्त करने के विषय में उसे बतलाना चाहिए और विशेष जोर देना चाहिए। उदाहरणार्थ ओर-और, दिन-दीन, कुल-कूल आदि ऐसे अनेक शब्द हमारी भाषा में पाए जाते हैं इनकी वर्तनी और अर्थ यदि बचपन में ही सही रूप से पता न हो तो बड़े होने तक यह गलती होती रहती है।

5. उनमें श्रम की प्रतिष्ठा उत्पन्न हो, तथा

6 वे सामाजिक समता एवं न्याय, भ्रातृत्व-भावना एव समाज-सेवा के लिए समर्पित जीवन का व्रत ले ।

इस प्रकार हम देखते है कि स्वतत्रता के बाद की हमारी शिक्षा पुनर्रचना मे सैद्धान्तिक स्तर पर इस बात का निरतर प्रयास हो रहा है कि वह प्राचीन भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यो व आदर्शो तथा अर्वाचीन भारतीय संस्कृति के नवीन उभरते हुए मूल्यो व आदर्शों के लिए सर्वथा अनुरूप हो ।

कहा जाता है कि वृक्ष की पहचान उसके फलो से होती है। उसी प्रकार शिक्षा भारतीय सस्कृति की असली पहचान भी हमारी शिक्षा-सस्थाओ मे निर्मित होकर बाहर निकलने वाले छात्र-छात्राओ के व्यक्तित्वों से ही की जा सकती है। और जब हम उनके व्यक्तित्वो की ओर दृष्टिपात करते है तो हमारे सामने कई बड़े गभीर प्रश्न आ खड़े होते है । वे प्रश्न है क्या वे व्यक्तित्व "भारतीय" है ? क्या वे हमारी भारतीय सस्कृति के अनुरूप है ? क्या वे भारतीय सस्कृति की धारा से कटकर कही अलग तो नही जा रहे है ? कही हमारे सिद्धान्तो और व्यवहारो मे विरोध या संकीर्णता तो नही आ रही है ?

इन प्रश्नो के उत्तर हमे गंभीरतापूर्वक सोचने होगे और हमे वे प्रयत्न करने होगे जिनसे कि भारतीय शिक्षा की जमुना भारतीय सस्कृति की गंगा मे मिलकर ऐसे व्यक्तित्व-सगम का निर्माण करे जिसे देखते ही यह पहचान हो सके कि ये शिक्षित और सस्कृत व्यक्तित्व "भारतीय" है । □

प्राइमरी कक्षाओं में उच्चारण पर ज़ोर देना

—सुधारानी चौहान
शोपित सेन्टर, रामाकृष्णपुरम
नई दिल्ली

आज के युग में सही उच्चारण पर विशेष गौर किया जाता है। व्यक्तित्व के विकास के लिए शब्दों का सही उच्चारण करना अति आवश्यक है। यदि हम काफी पढ़े लिखे है, हमे प्रत्येक विषय का अच्छा ज्ञान है लेकिन हमारा उच्चारण ठीक नही है तो बोलने पर हमारा व्यक्तित्व दब जाएगा और हम जीवन के क्षेत्र में वह कामयाबी हासिल नही कर सकेंगे जो हमें अपनी योग्यता के कारण करनी चाहिए थी। हम बोलने में हिचकिचाएंगे जिससे हम अंतर्मुखी बन जाएंगे और समाज मे सबसे घुल मिल नहीं सकेंगे। इसलिए आजकल बच्चो के सही उच्चारण पर छोटी कक्षाओ से ही ध्यान दिया जाता है। बच्चो के उच्चारण सुधार पर हमें निम्न प्रकार से ध्यान देना चाहिए-—

1 **बच्चो से पाठ पढ़वाएं**—कोई भी पाठ आरम्भ करने से पहले पढवाना चाहिए। यदि कोई बच्चा, पढते समय किसी अक्षर पर अटकता है, उसका सही उच्चारण नही कर सकता है तो बच्चे को उस अक्षर का सही अभ्यास करवाना चाहिए। पहले अध्यापिका को वह अक्षर, फिर पूरा शब्द स्वयं बोलना चाहिए, फिर बच्चे से बुलवाना चाहिए। इससे बच्चे का उच्चारण दोष दूर होगा। उसकी झिझक मिटेगी।

2. **उच्चारण के महत्व के विषय में बताना**—बच्चे को उच्चारण के महत्व के विषय में बताना चाहिए जिससे वह शुरू से ही उच्चारण पर विशेष ध्यान दे। वह पाठ को स्वयं भी पढे और अपने उच्चारण को ठीक करने की कोशिश करे। उसको अकेले मे पाठ या कहानी जोर-जोर से पढने को कहना चाहिए।

3 **बच्चे को पाठ धीमी रफ्तार से पढ़ने को कहना**—धीमी रफ्तार से पढने से शब्दो का उच्चारण सही तरीके से होता है और शब्द भली प्रकार सुनाई भी देता है। पाठ पढते समय बच्चो को विराम के विषय मे भी बताना चाहिए कि कहां पर उसे कितनी देर रुकना चाहिए। किस शब्द पर अधिक बल देना चाहिए किस मे कम। इसके विषय मे भी उसे बताना चाहिए। क्योकि शब्दो पर अधिक या कम बल देने से भी अर्थ मे भिन्नता आ जाती है।

5. **ह्रस्व और दीर्घ स्वरो के उच्चारण के विषय में बताना**—मात्राओं मे फर्क को ठीक से न समझने के कारण अर्थ मे अन्तर हो जाता है इसलिए सही मात्रा के प्रयुक्त करने के विषय मे उसे बतलाना चाहिए और विशेष जोर देना चाहिए। उदाहरणार्थ ओर-और, दिन-दीन, कुल-कूल आदि ऐसे अनेक शब्द हमारी भाषा में पाए जाते है इनकी वर्तनी और अर्थ यदि बचपन में ही सही रूप से पता न हो तो बडे होने तक यह गलती होती रहती है।

6. **मिलते-जुलते व्यंजनों का उच्चारण**—छ-क्ष, ज-ज़ ढ-ह, ब-व, ण-न व्यंजनो के उच्चारण और कुछ के लिखित रूप बहुत मिलते जुलते है। इनका विशेष सावधानी से उच्चारण करना और इन्हे ध्यानपूर्वक सुनना आवश्यक है और लिखते समय भी इन्हे पूरी सावधानी के साथ लिखना चाहिए। इनसे बनने वाले शब्द छतरी-क्षत्रिय, जहाज-जमीन, बकरी-वन्दना, वीणा-नन्दन आदि है। इनके उच्चारण और प्रयोग पर कक्षा मे विशेष बल देना चाहिए। अक्सर लोग जल और जमीन दोनों का उच्चारण ज के समान करते है लिखते समय भी उनसे यह गलती होती है। छत क्षत्रिय के साथ भी यही स्थिति है। इस लिए अध्यापक को श्यामपट्ट में इन शब्दो को लिखना चाहिए और बार-बार स्वय इनका उच्चारण करके बच्चों को इनका उच्चारणगत भेद बताना चाहिए और उनसे भी फिर उच्चारण करवाना चहिए।

7. **मात्राओं का विशेष प्रयोग**—र के साथ उ और ऊ की मात्रा विशिष्ट ढंग से लगती है। उदाहरण के लिए रु, रू लेकिन कुछ लोग इसे अन्य वर्णो के साथ जैसे प्रयुक्त होता है वैसे ही लगाते है। बच्चो को शुरू मे ही र के साथ उ और ऊ की मात्रा की प्रयोगविधि बता देनी चाहिए।

इसी प्रकार ट, ड के साथ र का प्रयोग होने पर र उनके नीचे ् के रूप मे जुडता है जैसे ट्र, ड्र। श के साथ र जुड़ने पर श्र लिखा जाता है।

आधा र के लगाने में भी बहुत गलतिया की जाती है। बच्चो को शुरू में ही यह समझाना चाहिए कि दो व्यंजनो के बीच मे आधा र आने पर बाद वाले व्यंजन पर ऊपर से र लगता है जैसे मार्‌ग-मार्ग, वर्‌ण-वर्ण। अर्थ उच्चारण करते समय जब हम र का उच्चारण करते है तो बाद वाले वर्ण के ऊपर र लगता है।

इस प्रकार उच्चारण पर यदि हम प्राइमरी कक्षाओ पर विशेष जोर दें तो बच्चे की उच्चारणगत त्रुटि शुरू में ही दूर हो जाएगी और वह बड़ा हो कर एक अच्छा वक्ता बन सकेगा। उसके व्यक्तित्व का समुचित विकास होगा जिसमे जीवन रूपी रंगमच मे वह आगे ही बढ़ता जाएगा और उन्नति कर अपनी मंजिल को पा सकेगा। ☐

प्राइमरी कक्षाओं में छात्र सहभाग

—प्रभाकर सिह
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्,
नई दिल्ली

शिक्षण एक सक्रिय प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य बालको के व्यवहार मे वाछित परिवर्तन करना है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया मे मुख्य रूप से दो ध्रुव-शिक्षक एव छात्र क्रियाशील रहते है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सफलता इन दोनो ध्रुवो की क्रियाशीलता और उनके बीच होने वाली अर्तक्रिया पर निर्भर करती है। इस प्रक्रिया मे शिक्षक बालकों को कुछ सीखने के लिए प्रेरित करता है, उनका मार्ग दर्शन करता है और उनके समक्ष सूचनाए एव कौशल प्रस्तुत करता है। इन सूचनाओ को ग्रहण करने या कौशल सीखने के लिए उत्तरदायी ध्रुव बालक ही होता है, इसलिए शिक्षक के साथ-साथ बालको की सक्रियता भी कक्षा में अनिवार्य है।

छात्र सहभाग की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

बालक की निम्नलिखित बुनियादी इच्छाओं की पूर्ति हेतु, उसका कक्षा की प्रक्रियाओ मे सहभाग आवश्यक है

1. बुनियादी तौर पर बालक एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए वह मानव वर्ग का एक अंग बनना चाहता है। लम्बे शैशवाकाल के कारण बालक काफी समय तक दूसरों पर आश्रित रहता है इसलिए वह अपने परिवार के सदस्यों के साथ रहना ही नही बल्कि मानव के अन्य समूहों के साथ भी रहना पसद करता है। बालक के लिए उसे अकेले रखने से बढकर और कोई सजा नही हो सकती। जब बालक प्राइमरी पाठशाला में प्रवेश पाता है, तो उसकी सामाजिक परिधि बहुत ही छोटी होती है और उसका कुछ ही लोगो से सबध होता है। ज्यो-ज्यो बालक में विकास होता है उसकी सामाजिक परिधि भी बढती जाती है। माध्यमिक स्तर पर पहुंचते ही उसके सबंधो की सख्या हजारों तक हो जाती है। विकास की प्रत्येक अवस्थाओं मे वह सर्वदा एक सामाजिक प्राणी रहता है और स्वय को जानने के लिए दूसरो से मान्यता एव प्रतिपुष्टि चाहता है।

2. बालक अपनी बहुत सी सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति चाहता है किन्तु उसकी आवश्यकताओ की पूर्ति तब तक नही की जा सकती जब तक कि उसको समाज में स्वय के प्रदर्शन के लिए अवसर प्राप्त नही होता है। प्रत्येक मानव की यह प्राकृतिक चाह होती है कि दूसरे लोग उसे देखें, जानें और पहचाने। अत: प्राइमरी शिक्षक को महत्वपूर्ण कार्यों मे से प्रत्येक बालक की व्यक्तिगत क्षमताओं एव रुचियों के विषय में जानकारी रखना भी एक कार्य है।

3. बालक अपने बडो एव सहपाठियो से स्नेह चाहता है। बालक के विकास की अवस्था जो भी हो उसे स्नेह चाहिए। कक्षा मे प्रत्येक छात्र के सहभाग का महत्व है इसे इगित करते हुए शिक्षक द्वारा छात्रों का उत्साहवर्धन होना चाहिए, जिससे उनको स्वयं की समताओं एव योग्यताओ पर विश्वास हो सके।

4. प्रत्येक समाज की एक व्यवस्था होती है और उसके प्रत्येक भाग का एक विशेष महत्व होता है। यह व्यवस्था कुछ मूलभूत नियमो पर आधारित होती है जिससे समाज के विभिन्न अगो के मध्य एक सतुलित अर्तक्रिया प्रतिपादित होती है कक्षा भी एक सामाजिक इकाई है इसलिए इसके विभिन्न अगों को भी उचित महत्व प्राप्त होना चाहिए जिससे कक्षा में शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया सुचारू रूप से चल सके।

शिक्षक का प्रमुख कार्य बच्चों को ज्ञान प्रदान करना, अनुभव प्रदान करना तथा उनमे आत्मविश्वास के निर्माण के लिए अवसर प्रदान करना है। एक शिक्षक अपना कार्य कितना सफल कर रहा है इसकी जानकारी निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तरों से मालूम की जा सकती हैं.

अ. क्या शिक्षक ने बालकों को उनकी कल्पनाओ का प्रयोग करके अनुभवो के सृजन के लिए अवसर प्रदान किया और इसके लिए उनका उत्साहवर्धन किया ?

ब. क्या शिक्षक बालकों को आपसी वार्तालाप द्वारा उनकी समस्याओ के समाधान के लिए अवसर प्रदान करता है ?

स किस हद तक शिक्षक द्वारा बालको को उसके द्वारा लिखी गई बातो को पढने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में छात्र सहभाग क्यों ?

निम्नलिखित सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक कारणो से कक्षा मे शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया मे बालको का सहभाग आवश्यक है।

1 अधिगम मे बालको की रूचि मे वृद्धि एव उनके ध्यानाकर्षण के लिए

2. बालको की क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए

3 बालको द्वारा स्वयं को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का एक भिन्न अग समझने के लिए

4. बालको मे सूझबूझ के विकास के लिए

5. बालको के सक्रिय सहभाग से शिक्षक को स्वय के कार्यो के मूल्याकन और उसके अनुसार पुनः नियोजन में सहायता मिलती है

6 शिक्षक-छात्र एवं छात्र-छात्रा अर्तक्रिया को उत्तम ढग से सचालित करने के लिए

7. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया मे छात्र सहभाग शिक्षक को प्रेरित एव पुनर्बलित करता है।

छात्र सहभाग को प्रभावित करने वाले कारक

1. **भौतिक परिस्थितियां** कक्षा मे छात्रो की संख्या, छात्रो के बैठने की व्यवस्था कक्षा का आकार, उपकरणों एवं दृश्य-श्रव्य साधनो की उपलब्धि आदि छात्रो की सक्रियता एव सहभाग को प्रभावित करते है।

2. **छात्रों की व्यक्तिगत क्षमताएं** - छात्रो की व्यक्तिगत क्षमताए जैसे बुद्धि, अभिरुचि, अभिप्रेरणा, विषय-वस्तु का ज्ञान, चिन्तन शक्ति आदि भी छात्र सहभाग को प्रभावित करते हैं।

3 **विषय वस्तु एवं समस्या**—यदि विषय वस्तु एव समस्या छात्रो के पूर्वज्ञान से सम्बध उनकी आवश्यकताओ एव रुचियो के अनुकूल तथा अपसारी एव आलोचनात्मक चिन्तन के लिए उपयुक्त हो, तब छात्रो की सक्रियता और सहभाग अधिक होता है।

4 **शिक्षक संबंधित कारक**—शिक्षक, शिक्षण प्रक्रिया का प्रमुख अग हैं। उसका कार्य छात्रो को सीखने के लिए प्रेरित करने से लेकर उनके द्वारा सीखे हुए ज्ञान या कौशल का मूल्यांकन करना है। उसके ज्ञान, भाव एव प्रत्यक्ष व्यवहार छात्रों की सक्रियता को प्रभावित करते है। शिक्षक का

विषय का उचित ज्ञान, छात्रो के विषय मे पूर्ण जानकारी, छात्रो के प्रति उसकी उचित अभिवृत्ति छात्रों के सहभाग को विकसित करने मे सहायक होते है।

छात्र सहभाग विकास के उपाय

कक्षा मे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्रो के सहभाग मे वृद्धि के लिए निम्नलिखित उपायो को प्रयोग में लाना चाहिए—

1 **मानसिक तत्परता का निर्माण**— किसी कार्य को करने के लिए छात्र की मानसिक तैयारी आवश्यक है। इसके लिए दो बातें आवश्यक है ——

अ छात्र संवेगात्मक एव भावात्मक रूप से कार्य सीखने के लिए तैयार हो, तथा

ब अधिगम के लिए छात्रो मे आवश्यक पूर्वज्ञान एवं योग्यताओं की उपस्थिति हो।

कक्षा मे तर्क-वितर्क, विचार-विमर्श एव विवेचना में छात्रो को भाग लेने के लिए उन्हे भावात्मक एवं ज्ञानात्मक रूप से तैयार रखना चाहिए। अधिकतम सक्रियता के लिए ऐसे पाठ्यवस्तु का चयन करना चाहिए, जिससे छात्रों को आपसी चिन्तन के लिए अवसर प्राप्त हो सकें।

छात्रो की मानसिक तत्परता का निर्माण दो ढग से किया जा सकता है—

अ अध्यापन से पूर्व तत्परता, जिसमे कक्षा मे चर्चा के विषय को पहले ही घोषित कर दिया जाता है। आवश्यकता पडने पर बालकों को पुस्तको के नाम तथा पुस्तको मे पृष्ठ सख्या आदि के विषय में भी जानकारी दे दी जाती है।

ब अध्यापन-कालिक तत्परता जिससे शिक्षक छात्रो के पूर्वज्ञान को पाठ से प्रस्तावना मे प्रयोग करता है।

2. **प्रश्न पूछना**—प्रश्न एक उद्दीपन है, जो छात्रों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय होने मे अन्य प्रयासो से अधिक सहायक होता है। कक्षा मे विभिन्न प्रकार के प्रश्नो के माध्यम से छात्रों का ध्यान अपनी ओर तथा पाठ्यवस्तु की ओर केन्द्रित करके शिक्षक छात्र अंतक्रिया एव छात्र-छात्रा अर्तक्रिया से छात्र सक्रियता को बढ़ाया जा सकता है। इस उद्देश्य के लिए शिक्षक निम्नलिखित प्रकार के प्रश्नो का प्रयोग कर सकता है —

अ उच्चस्तरीय प्रश्न

ब विस्तृत उत्तर वाले प्रश्न

स अपसारी या खुले प्रश्न, एव

द अनुशीलन प्रश्न

3 **पुनर्बलन एवं प्रसंशा**—कक्षा मे बालको के सहभाग को पुनर्बलको के प्रयोग या उनकी प्रसंशा करके भी बढा सकते हैं। छात्रो की प्रसंशा बहुत अच्छा, ठीक, उत्तम आदि शब्दो के प्रयोग से या आशाब्दिक ढंग से जैसे मुस्कुराकर, सिर हिलाकर या मित्रता भाव से देखकर किया जा सकता है। माउन के अनुसार—हूं या अहा जैसे शब्दो का भी प्रयोग समयानुसार किया जा सकता है।

4. **छात्र विचारों का प्रयोग**—छात्र के विचारों का प्रयोग एक विशिष्ट प्रकार का पुनर्बल है जो छात्रलब्धि एव धनात्मक अभिवृत्ति से संबधित प्रतीत होता है। कक्षा शिक्षक द्वारा कक्षा मे छात्रो के विचारों को स्वीकार किया जा सकता है, उन पर चर्चा की जा सकती है या विभिन्न छात्रो के विचारों की तुलना की जा सकती है।

5 **अंतक्रिया में परिवर्तन**—सामान्यत: कक्षा मे शिक्षक प्रभावशाली रहता है। शिक्षक की स्वयं की बातो को कम करके छात्र-छात्रा अंतक्रिया को प्रोत्साहन देना चाहिए। यह कार्य कुछ साधारण निर्देशो की सहायता से वार्तालाप के समय किया जा सकता है। वार्तालाप के समय जब छात्र बोल रहे हों तो शिक्षक को छात्रो के साथ अधिक दृष्टि संबध से बचना चाहिए। कभी कभी कक्षा मे कुछ

छात्र प्रश्न पूछना चाहते है या अपनी राय व्यक्त करना चाहते हैं किन्तु इसके लिए वे शिक्षक की सहमति चाहते है। इस स्थिति में शिक्षक को ऐसे छात्रों की ओर देखना चाहिए। शिक्षण के इस कार्य मे छात्रो को प्रोत्साहन मिलता है, इससे श्रोता छात्रों को भी कक्षा में बोलने का साहस मिलता है।

6. **छात्रो का शारीरिक सहभाग**—कक्षा मे छात्रों को श्याम पट्ट पर अनेक उत्तरो को लिखने के लिए अवसर देने से प्रयोगो आदि मे उनको कुछ कार्य सौंप देने से उनकी सक्रियता बढ जाती है। कक्षा मे किए गए नाटक खेल या अन्य सामूहिक प्रक्रियाओ मे छात्रो को सम्मिलित करके उनके सहभाग को विकसित किया जा सकता है।

7 कभी कभी विरामो के प्रयोग से भी छात्रो की सक्रियता मे वृद्धि हो जाती है। यदि कक्षा मे शिक्षक लगातार भाषण कर रहा है और एकाएक मौन हो जाता है तो उसका मौन होना भी छात्रो के लिए उद्दीपन हो जाता है। शिक्षण प्रक्रिया के दौरान कुछ अवसरो जैसे प्रश्न पूछने के बाद, छात्रों द्वारा उत्तर देते समय शिक्षक का मौन रहना अनिवार्य हो जाता है। □

खेल-खेल में भाषा शिक्षण

—डा० इन्द्रसेन शर्मा
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद,
नई दिल्ली

भाषा जीवन का एक महत्वपूर्ण अग है। भाषा के अभाव में जीवन अधूरा है। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य परिवार, जाति, समाज एव राष्ट्र के रूप मे गुथ जाता है। भाषा के बिना मनुष्य पगु बन जाता है। यह वह धुरी है जो उसे अपनी और समाज के विभिन्न वर्गो से जोड़ती है। जो मनुष्य भाषा की दृष्टि से सक्षम और सुसस्कृत है उसे समाज मे चारो ओर आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इसलिए नही कि वह बोल सकता है अथवा कठिन भाषा बोल सकता है अपितु इस लिए कि भाषा पर उसका इतना अधिकार है कि वह अपने विचार, चिन्तन और अनुभवों की पूर्ण अभिव्यक्ति सक्षमता के साथ कर सकता है।

जब भाषा का जीवन मे इतना अधिक महत्व है तब हमारे प्राथमिक विद्यालयों मे इसके अध्यापन पर बल क्यों नही दिया जाता? भाषा के अध्यापन को, विशेषरूप मे मातृभाषा के अध्यापन को, यह कह कर नकार दिया जाता है कि वह तो बालक जानता ही है, घर मे बोलता ही है। किन्तु हमारे अध्यापको को यह नही भूलना चाहिए कि अन्य सभी विषयो की शिक्षा का आधार भी भाषा ही है। अत: बालक का भाषा की दृष्टि से परिपक्व होना नितान्त आवश्यक है।

भाषा के उचित ज्ञान का महत्व प्रतिपादित हो जाने के पश्चात् प्रश्न यह उठता है कि बालक को भाषा सिखाने का सरलतम उपाय कौन सा है? यू तो विभिन्न विद्वानों ने भाषा सिखाने की विभिन्न विधिया बताई है किन्तु ऐसी विधि जो सभी प्रकार की रुचियों वाले बालकों के लिए रुचिकर हो, खेल विधि है। कारण यह है कि बालकों की रुचियाँ भिन्न-भिन्न होते हुए भी खेल मे सभी की समान रुचि होती है। अत यदि सभी बालको में समान रूप से पाई जाने वाली खेल की स्वाभाविक प्रवृत्ति का उपयोग भाषा शिक्षक करे तो अधिक लाभ की संभावना है।

इस प्रकार के शैक्षणिक खेलो मे जहां सभी छात्रों को समान अवसर मिलना चाहिए वही यह भी आवश्यक है कि मन्द बुद्धि वाले छात्रो को तीव्र बुद्धि वाले छात्रो की अपेक्षा अधिक समय मिले। जहा तक सभव हो मन्द बुद्धि वाले छात्रो को अभ्यास एव आवृति के अधिक अवसर दिए जाये। नीचे कुछ इस प्रकार के खेल दिए जा रहे है जिनके द्वारा छात्रो को भाषा सिखाने, नए शब्दो का ज्ञान कराने, शब्द बनाने, वाक्य बनाने आदि मे सहायता मिल सकती है। इन खेलो के द्वारा बालक अनायास ही भाषा की अनेक पेचीदगियो को स्वय समझता चला जाता है।

1 अक्षरों से शब्द बनाओ—आरम्भ मे कक्षा के सभी छात्रो को एक वृत मे बैठा लो। किसी भी छात्र को कोई अक्षर बोलने को कहो। उससे आगे वाले छात्र को उस अक्षर से कोई शब्द बनाने को कहो। यदि वह न बना सके तो फिर अक्षर बोलने वाले छात्र से ही उस अक्षर से शब्द बनवाओ। तत्पश्चात दूसरा बालक तीसरे से और तीसरा चौथे से नये अक्षरो से शब्द बनवाए। यह क्रम अन्त तक चलता रहना चाहिए। इससे छात्र सम्पूर्ण वर्णमाला से अनेक शब्द बनाना सीख जायेंगे। आगे की कक्षाओ मे एक अक्षर से 3-3 या 5-5 शब्द भी बनाने के लिए छात्रो को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

2. अक्षर, शब्द एव वाक्यांश पहचानो—अध्यापक श्यामपट पर कोई शब्द लिखे। उसे छात्रों

को बताए और उसकी पहचान कराए। तत्पश्चात कुछ शब्द लिखे हुए कार्ड्स उन्हे दें और उनमे से उस शब्द वाला कार्ड निकालने को कहे। उसके बाद कुछ दूरी पर कुछ शब्द लिखी हुई कागज की झण्डियों में से उस शब्द वाली झडी को लाने के लिए कहे। जो बालक उस झडी को सर्वप्रथम लाए उसे विजयी घोषित किया जाए। अन्य बालको को पुन. उसकी पहिचान का अभ्यास कराया जाए। इसी प्रकार आरम्भ मे अक्षर फिर शब्द और बाद में वाक्यांश से वाक्य की पहिचान पर लाया जा सकता है। इस प्रकार खेलो मे सभी बालक रुचि लेते है।

3. नवीन शब्द बनाओ—अध्यापक श्यामपट पर एक लम्बा सा शब्द लिखे। छात्रो से उस शब्द में प्रयुक्त अक्षरो से भिन्न-भिन्न शब्द बनाने को कहा जाए। इसको थोडा कठिन बनाने के लिए एक-एक अक्षर से पॉच-पाच शब्द भी बनवाए जा सकते है। उच्च प्राथमिक कक्षाओं मे ऐसा प्रतिबन्ध भी लगाया जा सकता है कि उनके द्वारा बनाए गए शब्द मे उन्हे दिए गए शब्द मे प्रयुक्त अक्षरो से बाहर का कोई अक्षर न आए। यथा—'जवाहरलाल' शब्द देकर 'वाला', 'जला', 'लाल', 'लाज', 'हवा', 'जहर', 'हलाल' 'लावा' आदि शब्द बनवाए जा सकते है। इस अभ्यास से यदि एक ओर छात्रों के शब्द भण्डार में वृद्धि होगी तो दूसरी ओर उनकी सोचने की शक्ति का भी विकास होगा। इतना ही नहीं अपितु इस प्रकार के अभ्यास से उनमें स्वस्थ प्रतियोगिता भी विकसित होगी।

4. पहचानो और लिखो—अध्यापक कुछ कार्डस के दो सेट तैयार करे। एक सेट पर कुछ व्यवसाय वाले जैसे धोबी, दर्जी, किसान, बढई, कुम्हार, लुहार, मोची, डाकिया, पुलिस आदि लोगों के चित्र बनाए। दूसरे सेट के कार्ड्स में इन सभी व्यवसायो से संबंधित शब्द जैसे धोबी, दर्जी, लुहार, बढई, कुम्हार आदि लिख दिए जाए। इसी प्रकार कक्षा के छात्रो को भी दो दलो मे विभक्त कर लेना चाहिए। अध्यापक को चाहिए कि वह चित्रों वाले कार्ड्स अपने पास रख ले और शब्दो वाले कार्ड्स को मिला कर एक डिब्बे में रखे। पहले दल के एक छात्र को वह किसी एक चित्र वाला कार्ड दिखलाएगा और छात्र उस चित्र वाले शब्द के कार्ड को डिब्बे मे से छाट कर लाएगा। दूसरे दल के एक छात्र को अध्यापक वह शब्द श्यामपट या अपनी पट्टी पर लिखकर दिखाने को कहेगा। इस प्रकार सभी छात्रो की बारी आती रहेगी और खेल चलता रहेगा। जिस दल के छात्र कार्ड नही खोज सकेंगे या लिख नही सकेंगे वह दल हारा हुआ माना जाएगा। दूसरे दिन छात्रो के दलो मे परिवर्तन कर दिया जाएगा। अर्थात जो दल कार्ड खोजने वाला था वह लिखने वाले दल का स्थान ले लेगा और लिखने वाला दल कार्ड खोजने वाले दल का।

भाषा सिखाने, शब्द भण्डार मे वृद्धि कराने, वाक्य बनाने आदि से सम्बन्धित इस प्रकार के अनेक खेल हो सकते है। अन्त्याक्षरी भी इसी प्रकार का एक सर्वप्रचलित खेल है। इस प्रकार के खेलो में सभी बालक समान रुचि लेते है। साथ ही ये खेल व्यय-साध्य भी नही हैं। ऐसे ही अनेक खेलो पर अध्यापक स्वय विचार कर सकते हैं। इन खेलों मे क्षेत्र विशेष में बालको द्वारा खेले जाने वाले खेलो और स्थानीय उपलब्ध सामग्री का उपयोग कर इन्हे और भी रुचिकर बनाया जा सकता है। ध्यान रखने की बात केवल यह है कि खेल हमारा साधन है साध्य नही। साध्य है भाषा शिक्षण। हमारा ध्यान पग-पग पर उसी पर केन्द्रित रहना चाहिए। यदि साधन साध्य बन गया तो अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। □

पर्यावरणी उपागम के लिए शिक्षण कौशल

—श्रीमती सरला राजपूत
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय,
भोपाल

पर्यावरणी उपागम का मुख्य उद्देश्य प्राथमिक स्तर के बच्चों को अपने भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण से अवगत कराना और पर्यावरण के संरक्षण के प्रति उचित दृष्टिकोण का विकास करना है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षक में कुछ कौशल का होना अनिवार्य है जिससे वह इस उपागम का सफलता से प्रयोग कर सकता है। ये कौशल अध्यापक में विषय ज्ञान तथा शिक्षण बिन्दुओं को प्रश्नावली ढंग से सिखाने की कला के अतिरिक्त होंगे। यही नहीं, ये कौशल शिक्षण प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग हैं तथा शिक्षण की सफलता इन कौशलों के सफल प्रयोग पर ही निर्भर करती है। व्यवहारिक कौशल का आशय उन कौशलों से है जिन्हें बच्चों में विकसित किए जाने की आवश्यकता है। जो कौशल अध्यापक बच्चों में विकसित करना चाहता है उनका स्वयं उसमें होना आवश्यक है जैसे यदि बच्चों में अवलोकन करने का कौशल सिखाना है तो अध्यापक को स्वयं एक कुशल अवलोकन कर्ता होना चाहिए। साथ ही उसमें यह कौशल बच्चों को सिखा सकने की क्षमता होनी चाहिए। इसी प्रकार जहां तक संगठनात्मक कौशल का प्रश्न है उसके अन्तर्गत किसी भी पाठ को पढ़ने के लिए अध्यापक के द्वारा साधनों का चयन, कक्षा में उनका उचित प्रयोग तथा यदि कोई क्रिया करानी है तो उसे क्रिया के अनुसार व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से बच्चों से करवाना आदि के लिए आवश्यक कुशलता होनी चाहिए। इसमें बच्चों को समय समय पर निर्देश देना तथा बच्चों को कार्य करने में सफल बनाना आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए यदि अध्यापक को यह क्रिया करानी है कि वस्त्रों पर दाग किन वस्तुओं से छुड़ाए जा सकते हैं। अध्यापक वस्त्र के कुछ टुकड़ों को जिस पर स्याही, रंग या तारकोल के दाग लगे हों इकट्ठा करेगा तथा उन्हें छुड़ाने के साधन जैसे दूध, नीबू, मिट्टी का तेल आदि कक्षा में ला कर रखेगा। बच्चों को संख्या के अनुसार समूहों में बांट कर कपड़े के टुकड़ों तथा दाग छुटाने के साधन भी बांट देगा तथा निर्देश देगा कि क्रिया किस प्रकार की जाए। बच्चे जब कार्य कर रहे हों तो उसे देखना होगा कि वे सहयोग एवं अनुशासन में कार्य कर रहे हैं। यह सभी प्रयत्न अच्छी तरह से करना ही संगठनात्मक कौशल के अन्तर्गत आएगा। यह कौशल केवल कक्षा के अंदर ही उपयोग में नहीं लाया जाता यह तो कक्षा के बाहर की जाने वाली गतिविधियों के लिए भी आवश्यक है, विशेष रूप से शैक्षिक भ्रमण के लिए।

अवलोकन एवं अन्वेषण सिखाने का कौशल—बच्चे अपने आसपास के भौतिक एवं सामाजिक वातावरण को ध्यान से देखें, देखने के लिए उत्सुक हों और देखकर पता लगाए या जानकारी प्राप्त करें। ध्यान से देखने तथा उनकी तथ्य के प्रति रुचि उत्पन्न हो। इस कार्य को अध्यापक प्रदर्शन, प्रयोग तथा क्रियाओं की सहायता से कर सकता है। अन्वेषण भी दो प्रकार के हो सकते हैं रुचि-उन्मुख अन्वेषण एवं समस्या-उन्मुख अन्वेषण। रुचि उन्मुख अन्वेषण के द्वारा बच्चा किसी भी धारणा को बृहत एवम् व्यापक रूप में समझ सकता है तथा उसमें और जानने की रुचि विकसित हो सकती है। लेकिन यदि बच्चे में मान्यता या मूल्यों का विकास प्रायोजना के माध्यम से विकसित करना

है तो समस्या उन्मुख अन्वेषण ही अधिक सहायक होगा। चिड़िया घोसले मे रहती है, घोसले कई प्रकार के होते है इस पाठ को पढाने के लिए तो रुचि उन्मुख अन्वेषण कौशल सिखाना उपयुक्त होगा परन्तु यातायात के नियम-दुर्घटनाए क्यो होती है ? पाठ के लिए समस्या उन्मुख अन्वेषण कौशल आवश्यक होगा। यहा एक सावधानी बरती जा सकती है कि छोटी कक्षा के बच्चो को रुचि उन्मुख अन्वेषण के कौशल सिखाए जाए तो बच्चे आसानी से ग्रहण कर सकेंगे साथ ही समस्या उन्मुख अन्वेषण कौशल का केवल परिचय मात्र ही आवश्यक है जो आगे आने वाली कक्षाओं में अधिक लाभकारी हो सकेगा।

सामुदायिक साधनों के उपयोग का कौशल—सामाजिक अध्ययन के सदर्भ मे सामुदायिक साधनो का उपयोग अधिक प्रभावशाली ढग से हो सकता है। इस कार्य को करने के दो तरीके हैं, समुदाय के महत्वपूर्ण व्यक्ति को विद्यालय मे बुलाकर बच्चो के पाठ्यक्रम से सम्बन्धित किसी विषय की व्यवहारिक जानकारी प्रदान करवाना अथवा बच्चो को ही उस स्थल पर ले जाना जो उनके लिए उपयोगी हो। पहली स्थिति सगठन की दृष्टि से सरल प्रतीत होती है फिर भी अध्यापक को कुछ व्यवस्थाए करनी पड़ती है। इस दिशा मे उसके प्रमुख प्रयास हो सकते हैं—सर्वप्रथम जिस व्यक्ति को वह उपयोगी समझता है उसका चयन जैसे सचार के साधनों को स्पष्ट करने के लिए पोस्टमास्टर या स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के लिए डाक्टर। उनसे मिल कर विद्यालय मे निश्चित तारीख और समय पर आने का निवेदन करना तथा विद्यालय के प्राचार्य की अनुमति लेकर कक्षा मे उनके आने की व्यवस्था करना। पोस्टमास्टर को पहले ही विषय बताना तथा प्रश्नों की सूची देना जिससे उन्हे यह पता लग जाए कि उन्हें क्या बोलना है या क्या जानकारी देनी है। प्रश्नसूची के प्रश्न अध्यापक बच्चो की सहायता से तैयार करेंगे। साथ ही बच्चो को ध्यान से सुनने, प्रश्न पूछने और अनुशासन से बैठना भी अध्यापक को सिखाना होगा। सामुदायिक साधनों के अंतर्गत व्यक्ति के अतिरिक्त वस्तुओं, जीव जतुओ को साक्षात लाकर भी दिखाया जा सकता है।

कक्षा के बाहर किसी स्थान पर ले जाने मे अध्यापक का उत्तरदायित्व अधिक बढ जाता है। पहली प्रक्रिया मे जो कदम उठाए गए है उनमे कुछ और प्रयासो को जोडा जा सकता है जैसे अभिभावको से परामर्श, वाहन की व्यवस्था तथा समय के अधिक लगने क कारण चाय, पानी एव नाश्ते का प्रबध। इन प्रयासो मे विद्यार्थियो का योगदान आवश्यक है। वे स्वय निश्चित कर सकते है कि खाने की व्यवस्था वे घर से लंच लाकर करेंगे अथवा पैसा इकट्ठा करके बाजार से खरीदेंगे, तथा वाहन पकड़ने के लिए कहा एकत्रित होगे। इनके अतिरिक्त बच्चो को जानकारी एकत्र करने का ढंग, तथ्यो का वर्गीकरण तथा विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकालने का कौशल सिखाना भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए यदि भोपाल के एक स्कूल के विद्यार्थी अपने स्कूल के पास के चौराहे पर एक घटे के लिए पंक्ति बद्ध होकर फुटपाथ पर बैठ कर अवलोकन करके आने जाने वाले वाहनो की संख्या एकत्र करे तथा वाहनों के प्रकार भी नोट करें, अत मे स्कूल मे वापस आकर स्वय या अध्यापक की मदद से उन सख्याओ का वाहनो के आधार पर वर्गीकरण कर सकते है तथा यह निष्कर्ष भी निकाल सकते है कि ऊचे-नीचे स्थानो पर रिक्शा नही चलता।

पर्यावरणी तथ्यों को समग्र रूप से प्रस्तुत करने का कौशल—पर्यावरण एक पूर्ण इकाई है तथा इसको टुकड़ो मे बाटना एव सीमाओ मे आवद्ध करना उचित नही है। इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक उसे बच्चो को समग्र रूप से प्रस्तुत करे। इस समग्रता के लिए अध्यापक को विभिन्न विषयो की सामान्य जानकारी आवश्यक है जिससे वह विज्ञान, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, नागरिक जीवन एव मनो-विज्ञान के आधार पर धारणाओ को स्पष्ट कर सके। उदाहरण के लिए यदि पशुधन विषय है तो इसके अंतर्गत पशुओ के प्रकार, पालतू एव वन्य पशु मे अन्तर, पशुओ पर

निर्भरता। शाकाहारी एवं मांसाहारी लोग, भौतिक परिस्थितियों का प्रभाव, मांस का निर्यात, चमड़े के उद्योग इत्यादि विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की जा सकती है तथा सभी धारणाएं समझाई जा सकती हैं। इसी से विद्यार्थी पर्यावरण की समग्रता से परिचित हो सकते हैं तथा पर्यावरणी समस्याओं से अवगत हो सकते हैं। यहां एक बात ध्यान देने योग्य है कि अध्यापकों की जिस प्रकार की शिक्षा (कुछ विषयों तक सीमित एवं पृथकतावादी पद्धति) से हुई है उनमें समग्र रूप में पर्यावरण के शिक्षण की अपेक्षा करना बहुत महत्वाकांक्षी योजना होगी फिर भी अध्यापक सतत् शिक्षा के अंतर्गत अपने अनुभवों को बढ़ा सकता है तथा समन्वयकारी पद्धति अपना सकता है।

बच्चों के अनुभवों को पाठ से जोड़ने का कौशल – यह कौशल इस उपागम में विशेष स्थान रखता है। बच्चों के अनुभव अध्यापक को धारणाओं को समझाने तथा विस्तार करने में सहायक हो सकते हैं। प्रश्न करने का कौशल भी इस कौशल के विकास तथा इसे सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्रश्न सरल भाषा में तथा स्पष्ट होने चाहिए ताकि बच्चे अपेक्षित उत्तर दे सकें। बच्चों को बीच में संकेत देकर भी अपेक्षित उत्तर देने में मदद की जा सकती है। यदि "ऋतु" विषय पढ़ाना है तो प्रश्न मौसम पर किए जा सकते हैं और उत्तर में आए हुए अनुभवों को ऋतु की धारणा से जोड़ा जा सकता है।

तथ्यों तथा आंकड़ों को चिह्नों, रेखाओं एवं ग्राफों के माध्यम से प्रस्तुत करने का कौशल –

सभी विषयों पर जानकारी आसपास के वातावरण से नहीं प्राप्त की जा सकती है। कुछ तथ्य भूतकालीन वातावरण के हो सकते हैं, कुछ दूर के स्थानों के हो सकते हैं, कुछ अमूर्त धारणाएं हो सकती हैं उन्हें प्रस्तुत करने के लिए विभिन्न माध्यमों का उपयोग किया जा सकता है। ये माध्यम चित्र, रेखाचित्र, ग्राफ, नक्शा इत्यादि हो सकते हैं। भूतकाल की या ऐतिहासिक धारणाओं को पुराने नक्शे या चित्रों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। अमूर्त धारणाओं जैसे सत्ता की धारणा को भी प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति के चित्रों के माध्यम से अधिक अच्छी तरह स्पष्ट किया जा सकता है। दूर दराज के वातावरण को भी नक्शे, चित्र आदि के माध्यम से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। विशेष रूप से भूगोल की धारणाओं के लिए नक्शे का उपयोग आवश्यक है। आकड़ों का प्रस्तुतीकरण ग्राफ, रेखाचित्र के माध्यम से उचित ढंग से हो सकता है। यहां यह ध्यान देना आवश्यक है कि बच्चे इन माध्यमों को केवल पढ़ना एवं समझना ही न सीखें बल्कि स्वयं बनाना भी सीखें। यदि नक्शा बनाना है तो वे अपने स्कूल, खेल के मैदान अथवा यदि किसी स्थान पर पर्यटन के लिए गए हैं तो उसका नक्शा बना सकते हैं। अध्यापकों को नक्शे का पूर्ण रूपेण सही होने पर जोर नहीं देना चाहिए, यदि वे पूर्णता के करीब हों तो मान्य हो सकते हैं। इस समय नक्शा भरने के कौशल पर विशेष जोर दिया जा सकता है। बच्चे विभिन्न तथ्यों को विभिन्न प्रतीकों के प्रयोग से नक्शे में दर्शा सकते हैं। इसी प्रकार चित्र भी बनवाए जा सकते हैं तथा रंगों का उपयोग करवाया जा सकता है। ग्राफ बनाने का कौशल विकसित करने के लिए अध्यापक को स्वयं श्याम पट पर ग्राफ बनाकर बच्चों को सिखाना एवं समझाना पड़ेगा। बाद में ग्राफ पेपर पर बच्चों से बनाने के लिए कहना पड़ेगा। इसके माध्यम से पशुओं का वर्गीकरण आंकड़ों के रूप में दर्शाया जा सकता है। उद्योगों की स्थिति की भी जानकारी दी जा सकती है। शहर में कितने छोटे तथा कितने बड़े उद्योग हैं बार ग्राफ के माध्यम से आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है। इन कौशलों का पर्याप्त विकास अध्यापक में अपेक्षित है तभी वह बच्चों की धारणाएं स्पष्ट कर सकता है तथा इन माध्यमों को बनाने का कौशल सिखा सकता है।

इस प्रकार पर्यावरणी उपागम को उपयोग में लाने के लिए अध्यापक को जिन मुख्य कौशलों की आवश्यकता हो सकती है उनका उल्लेख किया गया है। ये कौशल अलग अलग तथा मिश्रित दोनों रूप में प्रयोग हो सकते हैं। लेकिन अपने पाठ के लिए नियोजन करते समय अध्यापक को यह अवश्य ध्यान देना होगा कि कौन सा कौशल उपयोग में लाना अधिक उपयुक्त एवं प्रभावकारी होगा। □

दृश्य-श्रव्य सामग्री के रूप में कठपुतली का प्रयोग

—डॉ० नरेश कुमार
पटेल नगर प्रथम,
गाजियाबाद

प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर दृश्य-श्रव्य सामग्री के रूप मे कठपुतली का प्रयोग सर्वाधिक प्रभावशाली साधन है। छोटे बच्चो को जब कोई चीज उपदेशात्मक ढग से पढाई जाती है तो वह उन्हे अरुचिकर होता है। अत प्राथमिक शिक्षा मे पाठ्य-सामग्री को रोचक रूप मे प्रस्तुत करने का प्रश्न विचारणीय है। नि सन्देह कठपुतलियों के माध्यम से विषय सामग्री को रोचक ढग से प्रस्तुत किया जा सकता है। कठपुतलियों के संवादो को बच्चे तल्लीन होकर सुनते है क्योकि उनके सवाद विस्मयकारी एव कौतुहलवर्धक होते है। इस प्रकार के शिक्षण से छात्रो का ध्यान अधिक समय तक केन्द्रित किया जा सकता है। वस्तुत कठपुतलियो के प्रदर्शन की सहायता से दिया गया ज्ञान छात्रो के लिए स्थायी होगा।

हिन्दी विषय मे रोचक सवादो के द्वारा नाटक, कहानी आदि को मनोरजक रूप मे कठपुतलियों की सहायता से प्रस्तुत किया जा सकता है। व्याकरण के शिक्षण मे अवश्य ही कठिनाई आएंगी। अत: व्याकरण को अलग से पढाया जा सकता है। भूगोल, इतिहास नागरिक शास्त्र आदि सामाजिक विषयो की पढाई सुगम तथा बोधगम्य हो सकेगी। यदि किसी बच्चे की उच्चारण की समस्या है तो पर्दे के पीछे बार-बार शब्दो का उच्चारण कराके उसकी सकोचवश हकलाहट को दूर किया जा सकता है और उच्चारण में अपेक्षित सुधार लाए जा सकते है। छोटे बच्चों को परियो तथा पशुओं की कहानी बहुत पसन्द आती है। ज्ञान के आनन्दपूर्ण वितरण की दृष्टि से इन कहानियो को छाया-पुतलियो के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता। गत्ते पर छाया-पुतलियो को बनाने मे समय तथा व्यय कम लगता है।

कठपुतलियो से बच्चो का आत्मिक लगाव स्थापित हो जाता है। कठपुतलियों को चलाने में बच्चो को आनन्द मिलेगा और उनकी भावात्मक अभिव्यक्ति स्वाभाविक एव सुगम होगी। प्राइमरी कक्षाओ मे बच्चो के अच्छे संस्कारो की नींव डालने की आवश्यकता होती है। अत: महापुरुषो के जीवन के प्रेरणास्पद प्रसगो को दिखा कर बच्चो का चरित्र-निर्माण किया जा सकता है। सफाई, सहयोग समय के सदुपयोग आदि से सम्बन्धित प्रदर्शन की व्यवस्था की जानी अपेक्षित है।

प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर चित्रकला, रंगाई, कागज-कुट्टी आदि हस्त-कौशल की पढाई एव अभ्यास को पुतली-निर्माण की प्रक्रियाओं मे सम्मिलित किया जा सकता है। पुतली-निर्माण से बच्चो मे रचनात्मक कार्यों के प्रति रुचि उत्पन्न होगी। यह भी देखा गया है कि अन्य बेसिक क्राफ्ट की तुलना में इसमें अधिक आनन्द मिलेगा क्योंकि इसमे अजीवित वस्तुओं को जीवित बनाने का सा आनन्द प्राप्त होता है। बेसिक क्राफ्ट के साथ-साथ कठपुतली को भी पाठ्यक्रम मे समुचित महत्व दिया जाना चाहिए।

अब यह प्रश्न विचारणीय है कि प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर कौन सी पुतलियो का प्रयोग किया जाए। दस्ताने वाली पुतलियां छोटे बच्चो के लिए अधिक

उपयोग सिद्ध हो सकती है। दस्ताने वाली पुतलियो के माध्यम से बातो को हल्के-फुल्के ढंग मे प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार छोटे बच्चो के सामने व्याख्यान पद्धति द्वारा पाठ्य-सामग्री को गम्भीरता के वातावरण मे न प्रस्तुत करके मनोरजनात्मक ढग से प्रस्तुत किया जा सकता है। फलस्वरूप बच्चो का प्रारम्भ मे ही अध्ययन के प्रति लगाव स्थापित किया जा सकता है। परियो, भूत-प्रेत आदि से सम्बन्धित जिन सवादो में कल्पना की उडान की पराकाष्ठा हो, उन्हे छडी शैली की पुतलियो के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। जटलि विचारो से सम्बन्धित प्रसगो तथा अग-भगिमाओ के वैविध्य के प्रदर्शन के लिए सूत्र सचालित पुतली का प्रयोग किया जाना चाहिए।

प्राथमिक विद्यालयो मे कठपुतली प्रदर्शन की व्यवस्था अपेक्षित है। विभिन्न राज्यों के शिक्षा-विभाग प्राथमिक विद्यालयो मे कार्यरत शिक्षकों के लिए कठपुतली निर्माण एव सचालन की प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रशिक्षण की व्यवस्था करे और विद्यालयों में आवश्यक सुविधाए उपलब्ध कराने की ओर ध्यान दिया जाए।

□

शिक्षा और संस्कार

—श्रीमती शशिकला
नई दिल्ली

शिक्षा की परिभाषा और उद्देश्य समय के साथ बदलते आए है। वैदिक काल में ईश्वर भक्ति या मोक्ष की प्राप्ति ही इसका उद्देश्य था, किन्तु आज इसका उद्देश्य मानव का सर्वांगीण विकास है। अर्थात शिक्षा वह है जो व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास करे। डा० राधाकृष्णन ने लिखा है—"शिक्षा को मनुष्य और समाज का निर्माण करना चाहिए, इस कार्य के बिना शिक्षा अनर्थक और अपूर्ण है। यह स्पष्ट है कि केवल पढना और लिखना आना ही शिक्षा नही, मानव का सस्कारवान होना ही शिक्षा है।"

सस्कार का यदि शाब्दिक अर्थ देखा जाए तो वह सजाना, सुव्यवस्थित करना, सुधारना या मानसिक शिक्षा है। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही हो सकता है। शिक्षा से मानव व्यवहार में अच्छे संस्कार समाहित हो सकते है। संस्कार आत्मा है, इसके अभाव मे शरीर केवल कीट मात्र ही है। अत: मानव का सस्कारित होना परम आवश्यक है। बालक जो कुछ सुनता, देखता है उसका प्रभाव उसके अचेतन मन पर अवश्य होता है। यही प्रभाव उसके आजीवन पर्यन्त व्यवहार सचालित करता है। और जीवन पर एक अमिट छाप छोड जाता है।

बालक एक कच्ची शाखा है उसे हम बचपन में ही अच्छे संस्कार देकर जिस प्रकार भी चाहें गोड़ सकते है। उनकी प्राथमिक शिक्षा एक विशाल भवन की नींव है। इस नीव को अच्छे विचारों, सद्गुणो का विकास करके शिक्षक को सुदृढ बनाना है। जिससे इस पर बना भवन खड़ा रह सके। बालक को शिक्षा द्वारा शिक्षक ही सस्कारित करता है। इसलिए प्राथमिक शिक्षक को धैर्य और कर्मठ होकर इस क्षेत्र में उतरना चाहिए तभी देश को सुसस्कारवान नागरिक मिल सकेंगे।

बालक के संस्कार औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा से बनते है यह तो स्पप्ट है कि प्रारम्भिक जीवन मे सस्कार वह परिवार और समाज से लेता है और बाद मे शिल्प द्वारा।

शिक्षक को बच्चों को चरित्रवान बनाना चाहिए। यदि हम प्राचीन शिक्षा प्रणाली पर दृष्टि डाले तो ज्ञात होगा कि उस समय शिक्षा अधिक समर्थ थी। गुरु अपने शिष्यो को केवल पढना-लिखना ही नही सिखाता था बल्कि उन्हे एक चरित्रवान मानव भी बनाता था। इसके लिए शिक्षक को स्वय के चरित्र का उदाहरण बालको के समक्ष रखना होगा क्योंकि वही नन्हें बालको का आराध्य है। वे शिक्षक के व्यक्तित्व से प्रभावित होते है। शिक्षक स्वय चरित्रवान अनुशासित और सद्गुणी हो तभी बालक भी वैसे बनेगें।

शिवाजी को शिवाजी बनाने वाली जीजाबाई थी। वे ही उनकी शिक्षिका थी उन्होंने शिवाजी के जीवन मे वीरता, स्वाभिमान और राष्ट्रप्रेम भरकर हर पल उनका मार्ग प्रदर्शन किया— ऐसे उदाहरणो से इतिहास भरा पड़ा है। इतिहास के इन महापुरपो के उदाहरण बालकों के सम्मुख रख कर उनके व्यक्तित्व का निखार किया जा सकता है।

आज के मानव में गुरुजनों के सम्मान की प्रवृति का ह्रास होता जा रहा है, हिदायक को उन्हे सिखाना है और व्यवहार को परखना है कि वास्तव मे वे इस गुण को अपने जीवन में उतार रहे है या नही। भारत को गर्व है कि इस भूमि पर आरुणी, एकलव्य जैसे

गुरुभक्त हुए है। बालक गुरुजनो का सम्मान करे और अनुजो पर स्नेह।

शिक्षा ही मानव को अनुशासित और सहिष्णु बनाती है। शिक्षा के अभाव में मनुष्य पशुतुल्य है बचपन से ही बालको को अनुशासन सिखाना होगा। नियमितता पाठशाला से ही उनके सस्कारों मे डाल सकते है। वे समय पर पाठशाला पहुंचे, प्रार्थना-स्थल पर उनका व्यवहार अनुशासित हो।

आधुनिक युग मे हम सादगी और उच्चविचारो से दूर होते जा रहे है। इसके लिए हमारे आस-पास का वातावरण दोषी है। इस वातावरण से बालक अछूते नहीं। बालको के जीवन को शिक्षक सादगी, सद्विचार और उदारता से सजा सकता है। विवेकानन्द ने एक बार विशाल सभा मे कहा था कि भारत मे व्यक्ति चरित्र से पहचाना जाता हैं। अतः शिक्षा के द्वारा ही बालको को सादा, विनम्र और विचारशील बना सकते है।

जिसके हृदय मे राष्ट्रप्रेम नही, वह सच्चा नागरिक नही है। बालको के अन्दर राष्ट्रप्रेम की भावना भरनी चाहिए। शिक्षक राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत और वीर-गाथाओ द्वारा उनके मन पर राष्ट्रभक्ति की छाप डाल सकता है। यदि ऐसा किया गया तो हर सच्चा नागरिक भगतसिह, सुभाषचन्द्र बोस बनेगा। इसमें सदेह नही है।

शिक्षा बालक के व्यवहार से परिलक्षित होती है। इस व्यवहार मे ही सुसस्कार भरते है। जिससे वे सच्चे अर्थों मे शिक्षित हो सके। औपचारिक शिक्षा जो पाठशाला से मिलती है और चाहे अनौपचारिक शिक्षा जो परिवार या समाज से बालको को मिल रही है। उसका उद्देश्य बालको के व्यवहार को सद्गुणों से सजाना है जिससे वे सस्कारवान विद्यार्थी और नागरिक बने तथा नैतिकता उनकी रग-रग में समायी हो तभी शिक्षक का दायित्व पूरा होगा। यह वैज्ञानिक युग है। इसलिए शिक्षक को नए और पुराने विचारो का समन्वय करके चलना होगा। पुरानी सस्कृति और सभ्यता से हम मानवीयता पूरक और चरित्र ग्रहण करें। निर्माणात्मक तत्व, तभी नए युग से वैज्ञानिकता और मानव की विध्वंसक वृत्ति पर रोक लगा सकेगे।

हमें गर्व है कि हमारे देश ने सबसे अधिक विद्वानों और महापुरुषो को जन्म दिया है। हमें उनके संस्कार विरासत में मिले हैं। हमे विवेक से जीना है, विवेक से चलना है। जागरूक नागरिक बनना है तभी हम अपने देश की सच्ची भावना से सेवा कर सकेगे। □

बालक क्यों भूलते हैं—कारण और निवारण

—हरीशंकर शर्मा
राज० उ० मा० वि० बसेडी,
धौलपुर

हम चेतन मस्तिष्क के क्षेत्र से भूलने की घटनाओं अन्य बालकों के साथ देखने को मिली। किसी सीखे हुए विषय का याद न आना अर्थात चेतन मस्तिष्क मे न आ सकना ही विस्मरण की मानसिक प्रक्रिया है। यह स्मृति (स्मरण) की विपरीत प्रक्रिया है। वह धारणा की असफलता है।

प्रत्यास्मरण धारणा की सही कसौटी नही है, कभी-कभी देखा गया है कि प्रत्यास्मरण न होने पर भी अनुभव या विचार धारणा मे बना रहता है परन्तु किन्ही कारणो से चेतना मे नहीं आ पाता। अत. प्रत्यास्मरण की असफलता आशिक या अस्थायी विस्मरण है, जबकि धारणा की असफलता पूर्णत. स्थायी विस्मरण है।

एथिन्ग ह्रास के अनुसार विस्मरण एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया है। समय के बीतने पर यह क्रिया स्वय होती रहती है क्योकि उन क्षणो मे मस्तिष्क निस्क्रिय रहता है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने इसे सक्रिय निस्क्रिय मानसिक प्रक्रिया भी कहा है अर्थात विस्मरण जहां समय के बीतने के साथ होता है वहा उसमे मानसिक क्रिया का भी कुछ हाथ आवश्यक है।

सिगमैन्ड फ्राइड के अनुसार विस्मरण का एक कारण दुखद विचारों या अनुभवो का दमन भी है। यदि किसी विषय का स्मरण करने के बाद सोचा जाय तो वह सामाग्री अधिक समय तक मस्तिष्क मे बनी रहती है। मस्तिष्क को किसी प्रकार का आघात पहुचने से मादक द्रव्य के सेवन से, अनुभूति, सवेग, मानसिकतनाव आदि से भी विस्मरण की क्रिया तेज होती है।

निम्नलिखित तत्व विस्मरण का कारण होते है

(1) **विक्षेप क्रियायें**—इस सिद्धान्त के अनुसार विस्मरण का कारण सीखने के बाद होने वाली विक्षेप क्रियाये है, अर्थात सीखने के बाद की गई क्रियाये जितनी अधिक विक्षेप करी या सीखी हुई क्रिया से भिन्न होगी, विस्मरण उतना ही होगा यदि विषय याद करने के बाद तुरन्त ही इसका विषय बिना समय अन्तराल के दे दिया जाय तो पहला मैटर कम [illegible] रह पायेगा।

(2) **अनाभ्यास**—इस सिद्धान्त के अनुसार किसी ज्ञान अथवा क्रिया का बारम्बार अभ्यास न होने पर वह धीरे-धीरे विस्मृत होता जाता है।

(3) **भूतानिमुख अवरोध**—कुछ विषयों का अध्ययन भूतानिमुख अवरोध अर्थात पहले सीखे हुए विषयो मे अवरोध करने वाला होता है। यह मूलर का दृष्टिकोण है। भूतानिमुख अवरोध का अर्थ सीखी हुई बात पर विशेष क्रियाओं का घातक प्रभाव पडता है। भूतानिमुख अवरोध पर निम्नलिखित चार बातो का विशेष प्रभाव पड़ता है।

(अ) सीखने वालो की आयु व बुद्धि—अर्थात आयु तथा बुद्धि के बढने के साथ भूतानिमुख अवरोध का प्रभाव कम होता जाता है।

(ब) पूर्व शिक्षण और विक्षेप शिक्षण की मात्रा मे अन्तर-पूर्वशिक्षण से विक्षेप शिक्षण की मात्रा जितनी ही अधिक होगी उतना ही अधिक भूतानिमुख अवरोध भी होगा।

(म) विक्षेप क्रियाओ का कालिक सबध—पूर्व-शिक्षण तथा विक्षेप क्रियाओ में जितना कम समय होगा उतनी ही अधिक रुकावट होगी। धारणा तथा सीखने मे विशेप क्रिया हानि-कारक होती है।

(द) पूर्व-शिक्षण और विक्षेप शिक्षण मे समानता—विक्षेप क्रियाओ और पूर्व शिक्षण और विक्षेप शिक्षण मे—जितनी अधिक समानता होगी उतना ही अधिक भूतानिमुख अवरोध भी होगा जैसे—एक बालक को त्रिकोणमिति के सूत्र याद करने के तुरन्त वाद ही सस्कृत के श्लोक व रूप याद करने को दिए गए तो पूछने पर ज्ञात हुआ कि त्रिकोणमिति के सूत्रों को स्मरण रखने मे सस्कृत के श्लोक अवरोध पैदा करते हैं।

(य) दमन—मनोविश्लेषण वादियों के अनुसार विस्मरण का कारण दमन है। अर्थात जिन विचारों व अनुभवों को बालक याद करना नही चाहते उसे वे प्राय भूल जाते है। चूकि वे अनुभव व विचार अचेतन मन मे चले जाते हे—फ्रायड के अनुसार मानव मन स्वभावत· दुखद विचारों का दमन करता है क्योंकि उसको याद करने मे कष्ट होता है।

(4) **सीखने की विधि व मात्रा**—अनुकरण, प्रयत्न और मूल अन्त दृष्टि विस्मरण है। अत: व्यव-धान सहित सीखने के लिए बौद्धिक विधियो से सीखे हुए विषय की अपेक्षा आशिक व्यवधान रहित निष्क्रिय और बोध रहित विधियो से सीखे हुए विषय मे विस्म-रण अधिक होता है। निश्चित सीमा मे अतिशिक्षण के अभाव मे विस्मरण होता है। बालक एक विषय को याद कर सकता है एक ही समय मे दूसरे को नहीं।

(5) **सीखने की गति**—मन्द गति से याद किया गया विषय तीव्र गति से याद किए गए विषय की अपेक्षा जल्दी विस्मृत होता है।

(6) **शिक्षण का उपकरण**—बालको के अध्ययन के पश्चात देखा गया है कि लम्बे और अधिक परिमाण वाले उपकरण की अपेक्षा छोटे और कम परिमाण वाले उपकरण का शीघ्र विस्मरण होता है। इसी प्रकार सार्थक की अपेक्षा निरर्थक उपकरण और सुखद की अपेक्षा दुखद उपकरण का विस्मरण शीघ्र होता है।

(7) **प्रेरणा व रुचि का अभाव**—जिस विषय मे रुचि नही व बालक प्रेरित नही हो वह विषय वस्तु देर से याद होती है और शीघ्र ही मस्तिष्क से निकल जाती है। इसके लिए निम्न बिन्दु आवश्यक है।

(8) **मानसिक तत्परता**—मानसिक तत्परता धारणा और प्रत्यास्मरण मे सहायक है। अत: मान-सिक तत्परता जितनी ही अधिक अनुकूल होगी विस्म-रण उतना ही कम होगा।

(9) **मानसिक चिन्तन और पुनरावृत्ति**—मान-सिक चिन्तन और पुनरावृत्ति धारणा और प्रत्यास्मरण मे सहायक है अत. इनके अभाव मे विस्मरण अधिक होगा।

(10) **मादक वस्तुओं का सेवन**—मादक वस्तुओ जैसे—शराब, भाग, गांजा, चरस, आदि नशीले व मादक वस्तुओं के सेवन से मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पडता है और स्मृति सस्कार निर्बल पड जाते है तथा याद की गई बात अचेतन मस्तिष्क मे चली जाती है। अत: अधिक सेवन घातक है।

(11) **मस्तिष्क आघात**—मस्तिष्क आघात से प्राय: नवीन घटनायें व नवीन अनुभव विस्मृत हो जाते है आघात जितना अधिक होगा विस्मरण भी उतना ही अधिक होगा।

(12) **परिवर्तित उत्तेजना परिस्थिति**—उत्तेजना की परिस्थितियों के साथ उत्तेजना का साहचर्य सबंध जुड जाने के कारण उत्तेजना-परिस्थिति परिवर्तित होने से उत्तेजना विषय का अनुभव भी विस्मृत हो जाते हैं। □

राज्यों से?

मध्य प्रदेश

राज्य शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद मध्य प्रदेश के अनेक कार्यों मे से एक प्रमुख काम है, स्कूल शिक्षा प्रणाली मे गुणात्मक सुधार करना। हमारे विद्यालयो की इस कारण से बहुत आलोचना की जाती है कि विद्यालयो के छात्रो का विभिन्न विषयो के ज्ञान का स्तर अच्छा नही है। इसका प्रमुख कारण है, नवीन शिक्षण विधियो को न अपनाना। अभी तक जिन शिक्षण विधियो का हम उपयोग करते आए है, वे केवल ज्ञान देने पर बल देती रही है और उन्होने कौशल एव अभिवृत्ति के विकास की उपेक्षा की है।

जो शिक्षण विधिया कौशल और अभिवृत्ति के विकास पर बल देती है, उनमें से एक महत्वपूर्ण विधि इकाई विधि है। इस शिक्षण विधि मे उद्देश्य स्पष्ट होते है, और शिक्षण की प्रत्येक क्रिया समग्र ज्ञान (पाठ) का एक अश मात्र दिखाई देती है। यह विधि पाठ्य वस्तु को पर्याप्त इकाइयो में व्यवस्थित करने पर बल देती है, ताकि छात्र को समुचित ज्ञान प्राप्त हो सके, उनमे तत्सम्बन्धी कुशलताओं का जन्म हो, उनकी आदतो, रुचियो और मनोवृत्तियो का परिष्कार हो और अन्तत उनके व्यक्तित्व का सर्वोन्मुखी विकास हो।

इस शिक्षण विधि को ठीक प्रकार अपनाने से छात्रो मे तार्किक चिन्तन करने, समस्या का समाधान करने, योजना बनाकर कार्य करने, प्रयोग करने, क्रियाशील होकर ज्ञान प्राप्त करने व एकाग्र होकर अध्ययन करने की योग्यताओं का विकास करने मे सहायता मिलती है।

इन्ही उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए परिषद् ने कक्षा एक से ग्यारह तक के पाठ्यक्रम के सभी विषयो को इकाई विधि से पढाने की एक योजना हाथ मे ली है। शासकीय शिक्षा महाविद्यालयों के मार्गदर्शन मे बुनियादी प्रशिक्षण संस्थाओं की मदद मे लगभग सभी विधियो का इकाईवार विभाजन पूर्ण करा लिया है। इस विभाजन को सभी सभागीय शिक्षण अधीक्षक एव जिला शिक्षा अधिकारियों तक पहुचा दिया जाएगा। यह अपेक्षा की जाती है कि वे अधिकारी उन्हे शीघ्र अपनी सभी शालाओं तक पहुचा देगे।

इस विभाजन को अन्तिम नही माना गया है। शिक्षकगण इसमे सुधार की बात लगातार सोचते रहेगे। उनके सुझावो का समय समय पर परीक्षण करके विभाजन को निखारा जाता रहेगा।

राज्य शासन ने अपनी पाठ्यपुस्तकों का मूल्याकन कराने के लिए 24 सदस्यों की एक स्टीयरिंग समिति का गठन किया है जिसके अध्यक्ष श्री शिव-मगल सिंह "सुमन" होगे। उपाध्यक्ष, सचालक राज्य शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिपद्, म०प्र० होगे।

यह समिति मूल्याकन एव विश्लेषण के सिद्धात निर्धारित करेगी। यथावश्यक उपसमितिया गठित करेगी। किए जाने वाले कार्य का पर्यवेक्षण एव परीक्षण का अपना प्रतिवेदन पाठ्यक्रम की रूपरेखा के साथ राज्य शासन को प्रस्तुत करेगी।

पाठ्यपुस्तकों का मूल्याकन इन सदर्भो मे किया जाएगा—

अकादमिक व शैक्षणिक साप्रदायिक सद्भावना एवं राष्ट्रीय एकता की भावना की पुष्टि, स्वतत्रता संग्राम के इतिहास का पर्याप्त एव सही ढग से दिग्दर्शन, सविधान मे निहित लोकतात्रिक एव

शोषण विहीन ममतामूलक समाजवादी समाज की स्थापना से संबधित मूल्यो की सही प्रेरणा अन्य वाछनीय सामाजिक मूल्यो का समावेश, आदिवासियो की सभ्यता संस्कृति और परिवेश से सबद्धता, मानव अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव एव शाति की भावनाए, स्त्री-पुरुष समानता की भावना एव पर्यावरण परीक्षण की जागरुकता।

मध्य प्रदेश में महिला शिक्षा

महिला शिक्षा को बढावा देने के राज्य सरकारो के प्रयासों को बढावा देने को सघीय सरकार ने एक नवीन योजना शुरू की है। इस योजना का उद्देश्य प्राथमिक शालाओं मे लड़कियो की संख्या बढाना तथा प्रौढ महिलाओ मे साक्षरता के प्रतिशत का बढावा देना है। जो राज्य इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य करेंगे, उन्हे 10 करोड का विशेष एवार्ड दिया जाएगा। ये एवार्ड राज्य जिला ब्लाक एव पचायत स्तर पर दिए जाएगे। प्रयास यह किया जाएगा कि सन् 1990 के अन्त तक 14 वर्ष तक की आयु की लड़कियो को प्राथमिक शिक्षा दी जाने लगे और प्रौढ महिलाओं की साक्षरता का प्रतिशत काफी बढ़ जाए।

दिल्ली

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के शिक्षा प्रौद्योगिकी केन्द्र, दिल्ली द्वारा ध्वनि एव चित्रण के माध्यम से 12 वर्ष से अधिक आयु वाले बच्चो की विशेष जानकारी हेतु विभिन्न विषयों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। अभी तक तैयार किए गए कार्यक्रमों का विवरण इस प्रकार है—

फूल—इस कार्यक्रम में गुलाब, अन्य मौसमी फूलों एव उनकी किस्मो का विवरण, रागों पर आधारित सगीत एवं हिन्दी कमेन्ट्री के माध्यम से दिया गया है।

रंगीन स्लाइड स० 80 व 1 कैसेट
कीमत रुपया 572.00

भारतीय दुल्हन—भारत वर्ष के विभिन्न राज्यो मे दुल्हनों को पहनाया जाने वाला विशेष परिधान एव गहने तथा उनके विशेष शृगार का परिचय इस कार्यक्रम का मुख्य अग है। विशेष तथा शादी के अवसर पर बजने वाले सगीत एव हिन्दी कमेन्ट्री ने इस कार्यक्रम को और रोचक बना दिया है।

रंगीन स्लाइड स० 77 व 1 कैसेट
कीमत रुपया 552.50

रेल परिवहन संग्रहालय—सिगनल्स, केनस, इजिन आदि के द्वारा भारतीय रेलो के इतिहास की सक्षिप्त जानकारी इस कार्यक्रम का प्रमुख ध्येय है।

रंगीन स्लाइड स० 80 व 1 कैसेट
कीमत रुपया 572.00

ग्राम झांकी—इस कार्यक्रम मे भारत के विभिन्न प्रदेशो के गावों की लोक कला शिल्प एवं वास्तु कला को बहुत ही सुन्दर ढग से दर्शाया गया है। विभिन्न राज्यो से सवधित सगीत एवं हिन्दी कमेन्ट्री इस कार्यक्रम की जान है।

रंगीन स्लाइड स० 111 व 1 कैसेट
कीमत रुपया 773.50

उत्तर प्रदेश

यूनीसेफ सहायता प्राप्त "सामुदायिक शिक्षा में विकासात्मक गतिविधिया एव सहभागिता" प्रायोजना राज्य मे 1977 से चल रही है। इसका उद्देश्य नवीन प्रकार की शैक्षिक क्रियाओ का विकास व परीक्षण करना है। ये नवीन क्रियाकलाप उन बहु-सख्यक समुदायो की न्यूनतम शैक्षिक आवश्यकताओ की पूर्ति करेंगे जो वर्तमान समय में आशिक व मूल रूप मे किसी भी प्रकार की शिक्षा से वंचित है।

अक्टूबर 1983 मे सामुदायिक शिक्षा केन्द्रो का राज्य स्तरीय वार्षिक सम्मेलन होगा, जिसमे इन केन्द्रो पर सचालित किए जा रहे बालवाडी, युवक मण्डल, महिला मण्डल और औपचारिकेतर शिक्षा केन्द्रो के कार्यक्रमों का मूल्याकन किया जाएगा। इसमे ग्राम के सुविधाविहीन एवं निर्बल समाज के शिक्षा

वञ्चित बालक, बालिकाएं, पुरुष व महिलाएं भाग लेंगी।

हाई स्कूल स्तरीय अध्यापकों का विज्ञान विषय में पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण—

उत्तर प्रदेश मे दस वर्षीय सामान्य शिक्षा प्रणाली लागू की गई है, जिसके अन्तर्गत विज्ञान भी एक अनिवार्य विषय रखा गया है। पाठ्यक्रम में विज्ञान के दो स्तर विज्ञान-1 तथा विज्ञान-2 रखे गए हैं। विज्ञान-1 भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान तथा जीव विज्ञान का एक समन्वित पाठ्यक्रम है। इस पाठ्यक्रम मे प्रदेश के प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय के हाई स्कूल के विज्ञान तथा जीव विज्ञान के अध्यापको को पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु प्रदेश के प्रत्येक जनपद में माह जुलाई तथा अगस्त मे छः दिवसीय प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए गए। इस प्रकार जनपद के लगभग सभी माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं जीव विज्ञान अध्यापकों को विज्ञान-1 विषय मे पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण प्रदान किया गया। यह प्रशिक्षण गत वर्ष इस संस्थान तथा अन्य तीन विशिष्ट संस्थाओं राजकीय सी० पी० आई०, इलाहाबाद राजकीय रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय लखनऊ तथा राजकीय बेसिक ट्रेनिंग कालेज वाराणसी में रिसोर्स पर्सनल के रूप में प्रशिक्षित किए गए इस्टीट्यूट कालेजो के भौतिकी, रसायन विज्ञान तथा जीव विज्ञान के प्रवक्ताओं द्वारा इस संस्थान मे निर्मित गाइड लाइन्स के आधार पर प्रदान किया गया।

विद्यार्थी विज्ञान सेमीनार—

राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद्, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार विगत कई वर्षों से राष्ट्रीय विद्यार्थी विज्ञान सेमीनार का आयोजन करता आ रहा है जिसमें देश के विभिन्न राज्यों/केन्द्र शासित क्षेत्रों से एक या दो उत्कृष्ट प्रतिभागी सम्मिलित होते है। इस वर्ष प्रथम बार उत्तर प्रदेश के दो उत्कृष्ट प्रतिभागी राष्ट्रीय विद्यार्थी सेमीनार हेतु जिसका आयोजन नई दिल्ली मे होता है, चुने गए इन प्रतिभागियों के चयन हेतु राज्य स्तरीय विद्यार्थी विज्ञान सेमीनार का आयोजन शिक्षा विभाग द्वारा राजकीय सी० पी० आई०, इलाहाबाद मे किया गया। इसका उद्घाटन अपर शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) तथा समापन एवं पुरस्कार वितरण शिक्षा निदेशक (उच्च शिक्षा) द्वारा सम्पादित किया गया।

राज्य स्तरीय विद्यार्थी विज्ञान सेमीनार मे भाग लेने हेतु प्रत्येक मण्डल से प्रथम तीन प्रतिभागियो का चयन आयोजित मण्डल स्तरीय विद्यार्थी विज्ञान सेमीनार से किया गया। उपर्युक्त सेमीनार मे प्रदेश के 10 मण्डलो से कुल 24 छात्र/छात्राओं ने भाग लिया। सेमीनार का विषय "रोग एण्ड मैनकाइंड" था जिस पर प्रतिभागियो ने आवश्यक माडल, चार्ट इत्यादि की सहायता से अपने विचार प्रस्तुत किए। प्रतिभागियों के वक्तव्यों का मूल्यांकन तीन विशेषज्ञों के निर्णय मण्डल द्वारा किया गया। प्रथम नौ स्थान पाने वाले प्रतिभागियों को आधुनिक विज्ञान की रोचक पुस्तके पुरस्कार स्वरूप दी गई। प्रथम दो स्थान पाने वाले प्रतिभागियो का राष्ट्रीय विद्यार्थी सेमीनार मे प्रदेश का प्रतिनिधित्व करने हेतु चुना गया तथा उन्हे संबंधित उप शिक्षा निदेशक की देख रेख मे आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था भी की गई। □

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 8 अंक 4 अक्तूबर 1983

प्राथमिक शिक्षा प्रशिक्षण की प्रासंगिकता	—सुनील बिहारी महंती	3
अनौपचारिक शिक्षार्थियों की आवश्यकताएं	—पी० के० त्रिपाठी	8
शैशवकालीन शिक्षा की आवश्यकता	—उपदेश बेवली	11
बाल साहित्य	—जगन्नाथ महंती	15
ग्रामीण प्राइमरी पाठशालाओं के छात्रों की अवरुद्धता	—रमेश चन्द्र शर्मा	19
कक्षा में छात्रों की श्रेष्ठतम निष्पत्ति	—ललित किशोर	23
आन्ध्र प्रदेश में स्कूल स्तर पर पाठ्यक्रमीय परिवर्तन	—आर० कृष्णा राव —आर० पापा	26
शिशु शिक्षा का सार्वजनीकरण	—नमिता द्विवेदी	29
शिशु व्यवहार: एक सर्वेक्षण	—मंजु भंडारी	32
प्राइमरी स्तर के बच्चों में सृजनात्मक विकास	—डा० वाचस्पति द्विवेदी	37
समाचार और विचार		40

प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण की प्रासंगिकता

□ सुनील बिहारी महंती

किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए अध्यापक प्रशिक्षण का सर्वाधिक महत्व है क्योंकि स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता को अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालयों से प्रशिक्षित हुए अध्यापक ही सुधारते हैं। यह बात प्राथमिक स्कूल अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर और भी ज्यादा लागू होती है क्योंकि प्राथमिक स्कूलों में ही औपचारिक रूप से आजीवन शिक्षा की बुनियाद डाली जाती है। स्कूल शिक्षकों के कार्य करने की स्थितियों को सुधारने की आवश्यकता को महसूस करते हुए भारत सरकार ने अभी हाल में स्कूल शिक्षा पर एक आयोग गठित किया है जो अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों की दशाओं और उनके कार्यक्रमों की गुणवत्ता को भी परखेगा। आइए इसी पृष्ठभूमि में यू० के० के स्कॉटलैंड के प्राथमिक स्कूल शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विश्लेषण करें और देखें कि हम उनसे क्या सीख सकते हैं।

स्कॉटलैंड की अध्यापक प्रशिक्षण प्रणाली ही हमारे अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आधार रही है। वहां के अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान अपना पाठ्यक्रम बनाने के लिए स्वतंत्र हैं। ये महाविद्यालय प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षण के लिए ही खास कर नहीं बने हैं। उदाहरण के लिए मोरे हाउस कॉलेज ऑफ एजुकेशन प्राथमिक स्कूलों, माध्यमिक स्कूलों, शारीरिक रूप से अपंगों के स्कूलों के लिए शिक्षक तैयार करता है, साथ ही स्कूल प्रशासक व हेडमास्टर आदि की नौकरियों के लिए भी प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। इन अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के कार्यक्रमों को स्कॉटलैंड की सामान्य अध्यापन परिषद् स्वीकृत करती है। यह परिषद् एक स्वायत्त संस्था है जिसे अध्यापकों के प्रतिनिधि ही मुख्य रूप से संभालते हैं। यह परिषद् अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों से पास होने वाले शिक्षकों को यू. के. के स्कॉटलैंड क्षेत्र में बने स्कूलों में काम करने का लाइसेंस देती है।

वहां पर तीन प्रकार के प्राथमिक स्कूल अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलते हैं—(क) स्कूल लीविंग की परीक्षा पास किए लोगों के लिए तीन-वर्षीय डिप्लोमा कोर्स, (ख) डिग्री धारियों के लिए एक-वर्षीय डिप्लोमा कोर्स, और (ग) स्कूल लीविंग की परीक्षा पास किए व्यक्तियों के लिए चार वर्षीय डिग्री कोर्स। वहां पर शैक्षणिक सत्र अक्तूबर में शुरू होता है और अगले साल जून तक चलता है। इसमें दिसम्बर-जनवरी के दौरान तीन सप्ताहों के लिए क्रिसमस की और मार्च-अप्रैल के दौरान तीन सप्ताहों के लिए ईस्टर की छुट्टियां होती हैं। कुछ कालेजों में टर्म के बीच में दो-तीन दिनों की छुट्टियां रहती हैं। सप्ताह में पांच कार्य दिवस होते हैं—सोमवार से शुक्रवार तक। कार्य का समय सवेरे नौ बजे से सायं पांच बजे तक रहता है जिसके बीच में एक घंटे का भोजन-अवकाश होता है। हर शैक्षणिक सत्र में कालेज 150 दिनों का शिक्षण-कार्य चलाता है। हर वर्ष में उपलब्ध कुल सप्ताहों

का एक तिहाई भाग छात्र-शिक्षण द्वारा लिया जाता है जो हर शैक्षणिक वर्ष मे लगभग 30 सप्ताह बैठता है। तीन वर्षीय डिप्लोमा कोर्स के विद्यार्थियों के लिए यह करीब-करीब 90 सप्ताह होते है। थ्योरी भागो में शिक्षा और मनोविज्ञान, प्राथमिक स्कूल शिक्षण विधियां और विषय वस्तु का ज्ञान शामिल होता है। हर छात्र-शिक्षक को टेलिविजन, कैमरा, प्रोजेक्टर, टेपरिकार्डर जैसे श्रव्य-दृश्य साधनो मे प्रशिक्षित किया जाता है। कोर्स कार्य में नियमित गोष्ठिया और टर्म पेपर्स शामिल हैं। इस तरह के कार्यक्रमो को पूरे साल मूल्यांकित किया जाता रहता है। अभ्यास-पूर्व शिक्षण स्तर पर छात्र-शिक्षको को शिक्षण के लिए अपेक्षित प्रश्न विधि, परीक्षण विधि, शिक्षण सामग्री की प्रयोग विधि जैसी विभिन्न कुशलताओं मे प्रशिक्षित किया जाता है। अपने स्वय के मूल्य-निर्धारण के लिए छात्र-शिक्षक वीडियो टेप का इस्तेमाल भी करते है। अभ्यास के लिए शिक्षण कार्यक्रमो के दौरान छात्र-शिक्षको को विभिन्न स्कूल शिक्षको के साथ संलग्न कर दिया जाता है जो उनके गाइड के तौर पर उनका निर्देशन करते हैं और पाठ योजना तैयार करने मे उनकी मदद करते है। कभी-कभी, स्कूल शिक्षक छात्र-शिक्षको के साथ मिल कर अध्ययन-यात्रा के कार्यक्रम करने, प्रदर्शनिया आयोजित करने और परियोजना व उसके कार्य करने मे मिलजुल कर योजनाए बनाते है। शिक्षण अभ्यास कराने वाले स्कूल स्कॉटलैंड भर मे फैले हुए है। कालेज के शिक्षक शिक्षण अभ्यास कार्यक्रमो का निरीक्षण करने के लिए इन स्कूलो को जाया करते हैं जिसके लिए उन्हे यात्रा भत्ता मिलता है। ऐसी यात्राओ के दिन और समय के बारे मे सामान्यत: छात्र-शिक्षको को पहले से सूचना दे दी जाती है। कालेज के शिक्षक पाठों को ध्यान से देखते है, अपने निरीक्षणों को लिखते है और उनके बारे में छात्र-शिक्षक से पाठ-शिक्षण के तुरंत बाद विचार विमर्श करते हैं। कालेज-शिक्षक की अनुपस्थिति मे, शिक्षक पाठों की जाच करते है और उनके बारे में छात्र-शिक्षकों से विचार विमर्श करते हैं। छात्र-शिक्षण का मूल्यांकन सामान्यत: सम्बद्ध कालेज शिक्षक द्वारा किया जाता है लेकिन इस काम में उस स्कूल शिक्षक से परामर्श भी किया जाता है जिसके साथ छात्र-शिक्षक सलग्न रहता है। जब किसी छात्र-शिक्षक को 'ई' ग्रेड मिलता है तो उसे आगामी अगस्त महीने मे और चार महीनो तक पढ़ाने के लिए कहा जाता है।

"हमारे प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए प्रासंगिकता"

अवधि—हमारे प्राथमिक स्कूल शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमो की अवधि तुलनात्मक रूप से छोटी है। स्नातक शिक्षा और बी. एड. पूरी करने वाले प्राथमिक शिक्षको के लिए हमारे यहा कोई विशिष्ट ग्रेड नही है। इसलिए स्नातक और स्नातकोत्तर व्यक्ति जब माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयो में जगह नही पाते तो प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयो मे दाखिला ढूढ़ते है। प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण से अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए हमें इस सम्भावना पर विचार करना चाहिए कि स्कूल की अंतिम परीक्षा पास करने वालों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम की अवधि दो वर्षो से बढ़ाकर तीन वर्षों की कर दी जाए और स्नातक तथा स्नातकोत्तर व्यक्तियो के लिए अलग से एक वर्षीय कार्यक्रम रखा जाए। क्षत्रीय शिक्षा महाविद्यालयो मे बी. एड. (प्रारम्भिक) कोर्स चलता है लेकिन उन्हे सचमुच प्राथमिक स्कूलों की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए बहुत कुछ करना होगा। प्राथमिक स्कूल शिक्षण के विभिन्न पहलुओ की दृष्टि से वे अभी कुछ नही कर पाए है। चूंकि प्राथमिक स्कूल शिक्षक से अपेक्षा की जाती है कि वह प्राथमिक स्कूलो मे पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषयो को पढा सकेगा इसलिए प्रशिक्षु को सभी विधियां पढ़ाई जाती है।

अलगाव हटाना—हमारे प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण सस्थान माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के साथ बिना मिले-जुले अपने कार्यक्रम चलाते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण है जिनमे दोनो तरह के सस्थान एक ही इमारत मे काम करते है लेकिन उनमे आपस में कोई तालमेल नही होता जबकि उनका प्रशासक

एक ही होता है। दोनों की प्रशिक्षण विधियों मे बहुत कुछ समानता है। समान उद्देश्य के लिए बहुत से स्रोतो का इस्तेमाल किया जा सकता है। यदि दोनों मिल कर काम करें तो दोनो के शैक्षणिक कर्मचारी एक दूसरे की विशेषज्ञता से लाभान्वित हो सकते है। इसलिए यह जरूरी है कि प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण सस्थानो व कार्यक्रमों को एक साथ ही रखा जाए और इस बात की कोशिश की जाए कि दोनों के अध्यापक-शिक्षकों के बीच प्रभावी संवाद स्थापित होगा। बल्कि अच्छा तो यह होगा कि दोनो के अध्यापक-शिक्षक एक ही हों। मिसाल के तौर पर उडीसा में प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण सस्थानो मे कला शिक्षकों एव शारीरिक शिक्षा के अध्यापकों का प्रावधान है किंतु माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानो मे नहीं है। अभी हाल मे राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ने एक नया पाठ्यक्रम सुझाया है जिसके अनुसार स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा और मनोरंजन को पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया गया है। प्रशिक्षण महाविद्यालयों में शारीरिक शिक्षा अनुदेशक नही होते जबकि प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अनुदेशक खाली बैठे रहते है क्योकि उनके पास अधिक काम नही होता। इन दोनो प्रकार के अध्यापक शिक्षा संस्थानों को एक दूसरे मे मिलाने पर शारीरिक शिक्षा अनुदेशकों की सेवाओं का लाभ दोनों ही संस्थान उठा सकते है। यही स्थिति कला शिक्षा के क्षेत्र मे भी है। इन दोनो प्रकार के संस्थानों मे एक ही पुस्तकालय और वाचनालय से काम चलाया जा सकता है। इससे दोनों मिलकर अधिक पुस्तकें और शैक्षिक पत्र पत्रिकाएं खरीद सकते है।

पाठ्यक्रम बनाने की स्वतंत्रता

हमारे शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम सामान्यत. एक जैसे ही होते है और किसी भी राज्य में एक ही नमूने को चलाते जाते हैं। अधिकतर ऐसे संस्थान माध्यमिक शिक्षा मंडलों अथवा राज्य शिक्षा विभागों से सलग्न होते है जो अपने से जुड़े सभी सस्थानो मे एक ही पाठ्यक्रम को कोर्म में लगाते है। उन सबकी परीक्षा भी एक ही होती है। इस प्रकार, अध्यापक-शिक्षक साल-दर-साल एक ही घिसे-पिटे नमूने को चलाए जाते है। वे अपने यहां अभिनव परिवर्तनो को नही लाते। किसी एक सस्थान मे प्रयोग के तौर स्वायत्तता लाकर देखा जा सकता है कि यह प्रयोग सफल हुआ अथवा नही। क्रमश यह स्वायत्तता अन्य सस्थानों को भी दी जा सकती है। नौकरी के पहले एक व्यावहारिक परीक्षण के माध्यम से प्रत्यापन (एक्रीडिटेशन) प्रणाली लाकर स्तर को नियंत्रित किया जा सकता है। आगे चलकर प्रोबेशन अवधि की समाप्ति पर, जो कम से कम दो वर्षों की हो, पुन: व्यावहारिक परीक्षण लिया जा सकता है। आज की मूल्याकन प्रणाली ने, भ्रष्टाचार को जन्म दिया है जब यह हट जाएगी, तो इन संस्थानों का सगठन सुधरेगा और शिक्षको का मनोबल ऊंचा होगा।

स्कूलों के साथ जुड़ना—कोई भी अच्छा अध्यापक प्रशिक्षण सस्थान अपने सहयोगी स्कूलों के कार्यक्रमो से अपने आपको गहराई से जोड़े रखता है। सस्थान के शिक्षक इन स्कूलो मे नियमित कक्षाए लेते है जिससे कि शिक्षक-प्रशिक्षुओं को जो शिक्षण विधि वे पढाते आए हैं वह स्कूलो के लिए तथ्य परक व ग्राह्य हो सके। देश के लगभग सभी सस्थानों में यह प्रणाली प्रचलित नही है। ऐसी स्थिति मे, शिक्षक प्रशिक्षण सस्थानो मे पढाई गई शिक्षण विधिया धरी की धरी रह जाती है। अधिकांश मामलो मे वे स्कूलों तक पहुंचती ही नहीं। स्कूल शिक्षको को शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमो का सहभागी बनना पडेगा। इससे उनकी अपनी शिक्षण कला सुधरेगी। साथ ही प्रशिक्षण कार्यक्रमो मे भी सुधार आएगा।

पाठ्यक्रमों का सुधार — राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् ने जो शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम सुझाया है, वह सारे पक्षों को समाहित नहीं करता। इसने कुछ ही सुझाव दिए है जो अधूरे हैं। थियरी कोर्सो के शिक्षण के लिए जो विधिया अपनाई जानी है उन्हे इसने स्पष्ट नही किया है। इसलिए इस बात की जरूरत है कि सम्भाव्य रूपांतरो पर ध्यान दिलाने के

लिए एक विस्तृत पाठ्यक्रम निर्देशिका बनाई जाए तथा शिक्षक-प्रशिक्षुओं के स्वाध्याय पर ज्यादा जोर दिया जाय। विधि कोर्सों मे पढ़ाई गई विविध तकनीकों का इस्तेमाल करते हुए आदर्श पाठों को बनाने पर जोर दिया जाना चाहिए न कि केवल एक ही पाठ पर। गोष्ठियों, टर्म पेपर्स आदि के लिए और अवसर दिए जाने चाहिए। विभिन्न प्रकार के स्कूलों, खास कर कुछ अच्छे संस्थानों को देखने जाने का प्रावधान होना चाहिए। छात्र शिक्षण कार्यक्रमों के विभिन्न पक्षो के बारे में स्कूलों के शिक्षकों, प्रशिक्षण संस्थान के शैक्षणिक कर्मचारियों और छात्रो के मध्य समय-समय पर सभाएं होती रहनी चाहिए। निरीक्षको को पूरे पाठ पर ध्यान देना चाहिए और अपने निरीक्षणो पर पाठ के पढ़ाए जाने के तुरंत बाद सम्बद्ध छात्र-शिक्षक के साथ विचार विमर्श करना चाहिए। इस अभ्यास से एक ही दिन मे किसी स्कूल में पढाए गए सभी पाठों का निरीक्षण कर पाना सम्भव नही होगा। प्रशिक्षण संस्थान के शिक्षक जिन पाठो का निरीक्षण नहीं कर पाए है, उनको देखने की जिम्मेदारी स्कूल के प्रशिक्षित अध्यापकों को लेनी पड़ेगी। शिक्षको की विषय वस्तु के बारे मे जानकारी को बढाना पड़ेगा। अनेक राज्यों में अंग्रेजी की पढ़ाई अपर प्राइमरी कक्षा से शुरू हो जाती है। शिक्षक-प्रशिक्षुओ द्वारा बोली जाने वाली अंग्रेजी को सुधारने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में कुछ नही किया गया है। यही हाल विज्ञान, भूगोल जैसे विषयो का भी है। इसके लिए अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के स्रोतो की गुणवत्ता की जांच करनी होगी।

स्रोतों की गुणवत्ता—स्रोत दो प्रकार के होते हैं—मानव स्रोत और सामग्री स्रोत। मानव स्रोतो को अच्छे शिक्षक प्रशिक्षण के लिए अच्छी किस्म का होना पड़ेगा। हमारे अधिकांश अध्यापक-शिक्षक सही तौर पर अंग्रेजी बोलना नहीं जानते। ऐसी दशा मे हम यह उम्मीद कैसे कर सकते हैं कि उनके पढ़ाए हुए शिक्षक सही अंग्रेजी बोल सकेंगे। अंग्रेजी-शिक्षण में अध्यापक शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की सख्त जरूरत है। हैदराबाद स्थित केन्द्रीय अंग्रेजी एव विदेशी भाषा सस्थान इस काम को प्राथमिकता के आधार पर शुरू करवा सकता है। इसी तरह की जरूरत अन्य विषयों के लिए भी पड़ेगी। अन्य विषयों के विशेषज्ञ राज्य शिक्षा संस्थानो एवं राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदो मे होते है जो प्राइमरी स्कूल शिक्षा मे समुचित रूप से अनुभवी और योग्य होते है।

सामग्री स्रोतो का महत्व भी कम नही है। हमारे अधिकाश शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानो की सामग्री या तो बहुत खराब है या उनमे सामग्री अथवा उपकरण है ही नहीं। उदाहरण के लिए सम्पूर्ण उड़ीसा राज्य में किसी भी शिक्षक प्रशिक्षण सस्थान मे भाषा प्रयोगशाला नहीं है। इसी तरह की स्थितिया अन्य राज्यों में भी है। भाषा प्रयोगशाला होने से शिक्षक-प्रशिक्षुओं को अपना उच्चारण सुधारने में मदद मिलती है। विभिन्न प्रकार की श्रव्य-दृश्य सामग्रियों की भी जरूरत है। इनसे शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सुधारा जा सकता है।

हमारे शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम अध्यापक-शिक्षकों और अन्य योग्य अधिकारियों की अकर्मण्यता के कारण बहुत पिछड़े हुए है। राज्य शिक्षा सस्थानों एव राज्य शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषदों मे पहल करने की कमी है। प्रायः ही देखा जाता है कि उनके कर्मचारी प्राइमरी स्कूलों की शिक्षण परिस्थितियों को भूल चुके है। और इस बात को नजर अंदाज कर दिया जाता है कि उन्हे प्राइमरी स्कूलों में पढ़ाने का अनुभव होना चाहिए। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को वे लाग सही परामर्श दे सके इसके लिए जरूरी है कि प्राइमरी स्कूलों में पढ़ाना उनकी ड्यूटी मे शामिल कर दिया जाए। इन संस्थानों मे योग्य कर्मचारियों को रखा जाना चाहिए। उनमें अपेक्षित संसाधन सामग्री भी होनी चाहिए। इसमे कोई शक नहीं कि सब ओर अकर्मण्यता व्याप्त है। जो समाधन सामग्री या व्यक्ति उपलब्ध भी हैं उनका इस्तेमाल प्रायः नहीं होता। उदाहरण के लिए अनेक राज्य शिक्षा संस्थानों, राज्य

शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों तथा राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थानों में चलती फिरती विज्ञान शालाएं होती हैं लेकिन ये गाडियां बेकार ही खडी रहती हैं। इनमें फिल्में और अन्य दृश्य श्रव्य सामग्री होती है जो अलमारियों में पड़े-पड़े सड़ती रहती है, कभी बाहर नहीं निकाली जाती। उपलब्ध संसाधन सामग्री को प्रचारित प्रसारित करने के लिए कोई तरीके का कार्यक्रम नहीं किया जाता। कई वर्षों पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को यूनिसेफ परियोजना के अंतर्गत बहुत से उपकरण बांटे गए थे। ऐसे अनेक उदाहरण प्रकाश में आए हैं कि लापरवाही या नासमझी के कारण किसी एक संस्थान को कई-कई कैसेट रिकार्डर दे दिए गए जहाँ वे यों ही पड़े रहे जबकि कई अन्य संस्थानों में एक भी कैसेट रिकार्डर नहीं था। इस तरह से कह सकते हैं कि शिक्षकों के निर्माण के कार्यक्रमों में लगे हुए अधिकारियों से और अधिक जिम्मेवारी की अपेक्षा की जाती है। जब तक जिम्मेवारी का बोध नहीं जागेगा, कुछ भी कर पाना संभव न होगा। □□

अनौपचारिक शिक्षार्थियों की आवश्यकताएं

□ पी. के. त्रिपाठी

शिक्षा जगत मे अनौपचारिक शिक्षा की परिकल्पना अभी बन ही रही है। यह जीवन केन्द्रित है। शिक्षा के लिए इसकी दृष्टि समस्या उन्मूलन की है जो शिक्षार्थी के परिवेश मे प्रासंगिक हैं। भारत जैसे विकासशील देश मे, जहां के साठ प्रतिशत से अधिक लोग निरक्षर है, इसे अपनाना ही पड़ेगा। निरक्षरता की यह चौंकाने वाली स्थिति पढ़ाई के बीच मे ही स्कूल छोड़ देने वोलो की विशाल संख्या के कारण ही आई है। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के सदर्भ मे अनौपचारिक शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका असंदिग्ध है। इसके अलावा यह बात भी है कि प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण अभी तक इसलिए भी नही हो पाया है कि औपचारिक शिक्षा प्रणाली की अपनी सीमाए है और समाज के निचले तबके से आने वाले शिक्षार्थियो की आर्थिक-सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितिया दयनीय है। अनौपचारिक शिक्षा के महत्व को जानकर भारत सरकार ने राज्य सरकारों के सहयोग से उडीसा, आध्र प्रदेश, असम आदि जैसे शैक्षिक रूप से पिछडे राज्यो में अनौपचारिक शिक्षा की एक प्रायोगिक परियोजना चलाने का निश्चय किया। अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है कि इसकी नीव मजबूत हो और शुरूआत पुरअसर। इस उद्देश्य से इसके लिए समुचित पाठ्यक्रम का निर्माण बहुत जरूरी है। दूसरी ओर यह बात भी है कि बेहतर और समुचित पाठ्यक्रम तभी बन सकता है जब उसे आदर्शों, विषय वस्तु एवं शिक्षण सामग्री की पृष्ठभूमि में अनौपचारिक छात्रों की अधिगम-आवश्यकताओ पर आधारित हो। इस प्रायोगिक परियोजना को उड़ीसा में सन 1980 से ही शुरू किया जा चुका है। लेकिन इस कार्यक्रम में अनेक कारणों से अभी जान नही आ पाई है। जिनमे से एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि अनौपचारिक छात्रो की अधिगम आवश्यकताओ का समुचित पाठ्यक्रम ही नही बन पाया है।

उद्देश्य

(1) छ. से चौदह वर्ष तक के अनौपचारिक शिक्षार्थियों की विभिन्न श्रेणियों की पहचान करना।

(2) अनौपचारिक शिक्षार्थियों की शैक्षणिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य मे उनमे विवरणों का निर्धारण करना।

(3) अनौपचारिक शिक्षार्थियो की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के सदर्भ मे उनमें विवरणो का निर्धारण करना।

(4) उन धन्धो की पहचान करना जिनमे ऊपर गिनाई गई श्रेणियों के अनोपचारिक छात्र लगे हुए है।

(5) आदर्शों, विषय वस्तु एवं शिक्षण-सामग्री के सदर्भ मे अनौपचारिक छात्रो की अधिगम आवश्यकताओं को विश्लेषित करना व उन्हें समझना।

परिकल्पनाएं

(1) वर्तमान शैक्षणिक स्थिति और सामाजिक-आर्थिक दशाओं की दृष्टि से अनौपचारिक शिक्षार्थियों में अंतर है।

(2) अनौपचारिक शिक्षार्थी अपने परिवारों को आर्थिक मदद देने के लिए विभिन्न धन्धो मे लगे हुए है ।

(3) आदर्शो, विषय वस्तु एव शिक्षण-सामग्री के सदर्भ मे अनौपचारिक शिक्षार्थियों मे अतर है ।

(4) अनौपचारिक शिक्षार्थियों की अधिगम आवश्यकताएं व्यवसाय-उन्मुख है ।

अध्ययन की विधि

नमूना—इस अध्ययन को भुवनेश्वर के एस. टी स्कूलों के अंतर्गत आने वाले सभी प्राइमरी स्तर के अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रो तक ही सीमित रखा गया । नमूने के लिए छः से चौदह वर्ष की श्रेणी मे आने वाले सौ अनौपचारिक छात्रों को लिया गया । अध्ययन के लिए नमूना चुनने के लिए सप्रयोजन विधि अपनाई गई ।

उपकरण और कार्य विधि—हर अनौपचारिक शिक्षार्थी से जानकारी एकत्र करने के लिए खोजकर्ता ने एक साक्षात्कार सारणी बनाई । व्यक्तिगत रूप से साक्षात्कार करके यह सारणी भरी गई ।

विश्लेषण की विधि—खोजकर्ता ने अध्ययन के जो उद्देश्य बनाए थे और परिकल्पनाए स्थापित की थी, उन्हीं को ध्यान में रखकर आधार सामग्री का विश्लेषण किया गया और उसे एकत्र करने के बाद सारणीबद्ध किया गया, जिससे कि विश्लेषण सरलता से किया जा सके । आधार सामग्री को विश्लेषित कर उसे प्रतिशतता के रूप में बदला गया ।

मुख्य निष्कर्ष

(1) छः से चौदह वर्ष के आयु वर्ग के अनौपचारिक शिक्षार्थियों में लिंग, उम्र और शैक्षिक पृष्ठभूमि की दृष्टि से काफी भिन्नता है । अधिकाश अनौपचारिक शिक्षार्थी बारह वर्ष के है और वे नमूने का 25.7 प्रतिशत भाग बनाते है । साथ ही यह भी पता चला कि आठ, नौ दस और बारह वर्ष के शिक्षार्थियों की संख्या अन्य उम्र वालों से अधिक है । अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों मे लड़के और लड़कियां दोनो ही आते है । शैक्षिक पृष्ठभूमि के मामले मे द्रष्टव्य है कि इन केन्द्रो मे दो तरह के शिक्षार्थी आए—59 नए और 41 ऐसे छात्र जो पढ़ाई के बीच में ही स्कूल छोड गए थे ।

(2) देखा गया कि अनौपचारिक शिक्षार्थियो की वर्तमान शैक्षणिक परिस्थितियो और सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में अतर था । पाया गया कि केन्द्रो के शिक्षार्थियो में पठन, लेखन और अभिव्यक्ति की क्षमताओं की दृष्टि से शैक्षणिक स्थितियो में अतर था । अधिकाश अनौपचारिक छात्र अति गरीब परिवारो के थे । अभिभावको के व्यवसाय और आमदनी की दृष्टि से भी उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थितियो में अंतर था । यह खोज इस परिकल्पना की पुष्टि करती है कि वर्तमान शैक्षणिक स्थितियों और सामाजिक-आर्थिक दशाओ की दृष्टि से अनौपचारिक शिक्षार्थियो मे अतर है ।

(3) देखा गया कि अधिकांश अनौपचारिक छात्र किसी भी तरह के आय उन्मुख व्यवसाय में नही लगे हुए है । ज्यादातर शिक्षार्थी, खास कर लड़किया घरेलू काम-काज मे फंसी रहती है । इस आयु वर्ग के लड़के अपने माता पिता के कामों मे हाथ बटाते हैं, लेकिन यह बात नियमित नहीं है । इस दृष्टि से दूसरी परिकल्पना-अनौपचारिक छात्र अपने परिवारो को आर्थिक मदद देने के लिए विभिन्न धन्धों मे लगे हुए है—को पूरी तरह से गलत भी नही कहा जा सकता ।

(4) अधिकांश शिक्षार्थियों ने यह इगित किया कि उन्हे सवेरे के समय दो-तीन घटो तक अनौपचारिक शिक्षा पाना ठीक लगता है ।

(5) यह भी पाया गया कि औपचारिक प्रणाली के अंतर्गत पढ़ाई के बीच मे ही स्कूल जाना छोड़ देने के प्रमुख कारण निम्नलिखित है—

(क) परिवार की विपन्नता ।

(ख) बच्चों को स्कूल भेजने में अभिभावकों की उदासीनता ।

(ग) स्कूल जाने में बच्चे की अरूचि।

(घ) बच्चे की शिक्षा में लगने वाले खर्च को बर्दाश्त न कर पाने की स्थिति।

(6) जहा तक अनौपचारिक शिक्षा के उद्देश्यों आदर्शों का प्रश्न है, सभी शिक्षार्थियों ने इन छ: श्यो को बताया है—

(क) साक्षर बनना।

(ख) गिनना जानना।

(ग) नागरिकता की जानकारी पाना।

(घ) व्यावसायिक प्रवीणता हासिल करना।

(ङ) स्वास्थ्य और स्वच्छता का ज्ञान पाना।

(च) विकास के कार्यों को करने वाले माध्यमों की कार्यविधि के बारे मे जानकारी पाना।

विषय वस्तु के बारे में भी अनौपचारिक शिक्षार्थियों ने अपनी दिलचस्पी प्रकट की है। देखा गया कि विभिन्न शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए औपचारिक छात्रों की तुलना मे अनौपचारिक छात्रो ने जो विपय वस्तु सुझाई है वह भिन्न है। शिक्षण-सामग्री के बारे मे भी सभी अनौपचारिक छात्रों ने अपनी रूचि छोटी-छोटी पुस्तिकाओ मे दिखाई है जिनमें विभिन्न प्रकार के चित्र अवश्य हों। शिक्षण के लिए कुछ दृश्य-श्रव्य सामग्री के लिए भी उन्होने पसदगी जाहिर की है।

चूकि अनौपचारिक केन्द्रों मे अधिकांश छात्र नए आए हुए हैं इसलिए उनकी अधिगम आवश्यकताएं बहुत अलग किस्म की नही है। उन्होने कुछ सम्भाव्य बातो के बारे मे अपनी राय मिला दी है। इस सिलसिले में यह परिकल्पना कि अनौपचारिक शिक्षार्थी उद्देश्यो, विषय वस्तु और शिक्षण-सामग्री के बारे में भिन्न रूप से सोचते हैं, समुचित नहीं पाई गई। □□

शैशवकालीन शिक्षा की आवश्यकता

□ उपदेश बेवली

भारत की अभी हाल की जनगणना से पता चला है कि यहा की आधी आबादी बच्चों की है और उनमें भी 25 प्रतिशत शिशु है। इनमें से 80 प्रतिशत गावो में रहते है। शहरो में अधिकाश बच्चे गंदी बस्तियों में रहते हैं सम्भवत साठ प्रतिशत या उससे कुछ अधिक। गावों मे अंदाजन साठ प्रतिशत बच्चे खेत विहीन मजदूरो, प्रवासी किसानों और गरीब किसानो के परिवारों के होते है। अधिकाश विकासशील देशों मे 1 से 4 वर्ष के शिशुओ की मृत्यु दर 2 से 3 प्रतिशत है।

द्वितीय विकास दशक के लिए संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र के बाद दक्षिण पूर्व एशिया के सभी विकासशील देशो ने सामाजिक-आर्थिक नीतिया बना ली हैं जिनमें समतावादी सिद्धातों और सामाजिक न्याय को अपनाया गया है। स्कूल जाने की उम्र वाले शिक्षार्थियों के लिए काफी जोश दिखाने वाले अधिकाश विकासशील देशो में जिनमे भारत भी शामिल है, 0 से 5-6 वर्ष तक की उम्र वाले शिशुओ की शिक्षा के प्रति राष्ट्रीय चिंता आजकल ही दिखने लगी है। इस नई चेतना का आधार वह चेतना है जो सामाजिक न्याय और समानता के लिए सभी जगह जागी है। और यह एक ठोस कारण से जागी है। वह यह कि प्राथमिक स्कूलो में पढाई के बीच मे ही स्कूल छोड़ कर बैठ जाने वाले छात्रों की ओर और सुविधा वंचित सामाजिक वर्ग के विपन्न निष्पादन प्रदर्शित करने वाले छात्रो की ओर लोगों की निगाह गई है। साथ ही कामकाजी गरीब महिलाओ के शिशुओं को संभालने की ओर भी ध्यान गया है।

इस राष्ट्रीय चिंता के बाद अनेक विकासशील देशों में स्कूल-पूर्व शिक्षा के लिए बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाए गए हैं, जबकि कुछ और देशों में विकास सीमित पैमाने पर हुआ है। अनेक विकासशील देशों में शैशवकालीन शिक्षा के लिए जो सीमित कार्यकलाप चल रहे थे वे सामान्यतः शहरो के लिए थे और वहा भी एक विशिष्ट वर्ग के लिए ही थे। लेकिन अब चूंकि जन सामान्य की ओर लोगों का ध्यान गया है, शैशवकालीन शिक्षा के लिए नई परियोजनाएं शुरू की गई हैं जिनमे जनसामान्य की विपन्न आर्थिक दशा और सामाजिक स्थिति को ध्यान मे रखा गया है। इन देशों ने यह कोशिश की है कि शिशु को उसके समग्र रूप में, उसके सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में जिसमे शिशु के शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक और बौद्धिक विकास को बढ़ावा दिया जाता है, समझा जाए।

स्कूल-पूर्व शिक्षा की आवश्यकता

मूलतः किसी भी देश के विकास का स्तर उन दशाओं को तय करता है जिनमे शिशुओ का जन्म होता है, वे रहते है और वयस्क होते है। लेकिन दूसरी ओर यह तथ्य भी है कि बच्चे ही कल की आशा है और विकास स्वयं उन स्थितियों पर निर्भर करता है जिनमें नई पीढ़ी को समुचित रूप से तैयार किया जाता है।

शिशु विकास एक जटिल प्रक्रिया है। यह शिशुओं की बुनियादी जरूरतो की समझ पर निर्भर करता है जो इस प्रकार हैं—

(1) स्वास्थ्य और उचित शारीरिक विकास से सम्बद्ध जरूरतें।

(2) भाषा के विकास की जरूरत।

(3) बोधात्मक एवं बौद्धिक विकास के वातावरण से प्रत्यक्ष अंतर्क्रिया करने वाले अवसरों की जरूरत।

(4) सामाजिक एवं भावनात्मक विकास की जरूरत।

(5) *सौन्दर्य बोध सम्बन्धी विकास की जरूरत।*

पहले प्रकार की जरूरतें शिशु के स्वास्थ्य से संबंधित हैं। कुपोषण के दुष्प्रभावों को अच्छी तरह से समझा गया है। अति प्राथमिक शिक्षा के अधिकाश कार्यक्रम शिशुओ के स्कूल में होने के दौरान उन्हे भोजन प्रदान करने का ध्यान रखते है। यह ऐसी प्राथमिक आवश्यकता है जिसे शिशु के कुछ सीखने योग्य बनने के पहले ही पूरी करना निहायत जरूरी है। स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्य जरूरतो मे शामिल है—चिकित्सा एव दांतों की देखभाल, आँखों और कानो की देखभाल और इनके रोगों से बचने के उपाय।

इसी जरूरत मे आती है शारीरिक रूप से अपगता की उन दशाओं की पहचान जो शिशु के सामान्य विकास मे बाधा डाल सकती है। प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम समय रहते ही शिशुओ की जाच की व्यवस्था कर सकते है जिससे अपगता को बढने के पहले ही रोका जा सकता है।

दूसरे प्रकार की जरूरत शिशुओ मे भाषा-विकास से सम्बद्ध है। अनुसधान परिणाम उस दलील का समर्थन करते है जो यह मानती है कि भाषा-विकास का एक जीववैज्ञानिक आधार है और शरीर-रचना की कुछ विशेषताए है जो एक पूर्ण भाषा सरचना के विकास की देखभाल करती है। फिर भी कुछ ऐसी स्थितियों की अपेक्षा की जाती है जिनमें कोई शिशु इस उपलब्ध भाषा संरचना का इस्तेमाल कर पाने के योग्य बन सके। ये स्थितिया है—वयस्क आदर्शों की उपलब्धता, इन आदर्शों से शिशु को प्राप्त होने वाला पुनर्निवेशन, और उन सार्थक अवसरो की उपलब्धता जिनमें बच्चा भाषा का व्यावहारिक प्रयोग सीखता है।

तीसरे प्रकार की जरूरत जिसे प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम विशेष रूप से पूरा कर सकते है, उन अवसरो की जरूरत है जिनमे बच्चा अपने वातावरण के साथ प्रत्यक्षत: अंतर्क्रिया कर सकता है। बच्चे की बुद्धि या मेधा पर वातारण प्रभाव डाल सकता है। इसलिए बच्चे को उपलब्ध वातावरण की गुणवत्ता का विशेष महत्व है। शैशवकालीन वर्षों के दौरान अनेक अनुभव ऐसे होते है जो बच्चे को अपने आप अपने वातावरण मे विचरने का मौका देते है। बच्चे और उसके सामाजिक परिवेश के मध्य ऐसे सहज आदान-प्रदान हुआ करते है। जो आगे चलकर चिंतन का आधार बनते हैं। इसलिए प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम प्रभावी रूप से इस जरूरत को पूरा करने वाले वातावरण की सृष्टि कर सकते है।

प्राथमिक शिक्षा को जिस चौथी जरूरत का ध्यान रखना है, वह है शिशु का सामाजिक और भावनात्मक विकास। शिशु की सामान्य क्षमता को प्रभावित करने वाले अनेक सामाजिक, भावनात्मक और प्रेरक घटक है। यदि कोई शिशु यह महसूस करता है कि वह कुछ प्राप्त कर सकने योग्य है, और वह अपने जोड के बच्चों के साथ अच्छी तरह निभा ले जाता है, उसमे आत्म-विश्वास है तथा वह स्कूल मे सफलता प्राप्त करने के प्रति आशावान है तो हमें मानना चाहिए कि उसमे बोधात्मक क्षमताएं है।

प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम मे बोधात्मक और प्रभावी विकासों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। परिवेश जिन विकासात्मक कारकों को रूप प्रदान करता है, वे निश्चय ही शिशु की सामाजिक एवं भावनात्मक वृद्धि से सबद्ध है। शिशु के प्रभावी विकास को रूप प्रदान करने मे प्रारम्भिक शिक्षा के प्रभाव को उसका सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण क्रियागत लक्ष्य माना जा सकता है।

शिशु अपने आप मे एक पूर्ण मानव होता है और उसके व्यक्तित्व के सभी पहलू एक साथ विकसित होते हैं। बच्चे शरीर मे, बुद्धि में और अनुभूतियो में बढते है। इन तीनो प्रकार की वृद्धिया आपस में सम्बद्ध होती हैं और तीनों मिलकर पूरे शिशु की छवि दिखाती हैं। सभी सामान्य बच्चे वृद्धि का यही क्रम अपनाते है, हालांकि उनके विकास की गति अलग-अलग होती

है। सभी बच्चों को प्रेम, भोजन, देखभाल और प्रशिक्षण की बुनियादी जरूरतें होती हैं। माता-पिता और परिवार के अन्य जन मिलकर बच्चे को सबसे पहले और मूल रूप से प्रभावित करते हैं। भोजन और आश्रय की जरूरतों को परिवार वाले ही पूरा करते हैं। शिशुओं को माता-पिता अपनी विशिष्ट संस्कृति के अनुसार पालते पोसते है और वे रीति रिवाजो, विश्वासो और अभिवृत्तियों द्वारा प्रभावित होते है, साथ ही इस बात का भी प्रभाव पडता है कि माता-पिता बच्चे के साथ किस प्रकार का व्यवहार करते है और बच्चे के व्यवहार पर कैसी प्रतिक्रिया प्रकट करते है। इन कामो के लिए माता-पिता कैसी तैयारी करते है यही बच्चो की स्वस्थ वृद्धि को तय करता है। दुर्भाग्य से विश्व के अनेक भागो मे जिनमे भारत भी शामिल है, मातृत्व-पितृत्व की उचित तैयारी नही की जाती और जिन स्थितियो मे लोग रहते हैं वे बच्चे का सत्यानाश कर देती हैं।

शिशु के शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक और भावनात्मक विकास के सबसे महत्वपूर्ण वर्ष उसके प्रारम्भिक पांच वर्ष होते है। भारत मे ऐसे अनेक कारण हैं जो बच्चे का पूरा विकास नही होने देते। गरीबी, अज्ञान, भोजन और स्वास्थ्य का अभाव एवं अपर्याप्त सामाजिक सेवाए इसमें बाधा डालती है। माताएं सामान्यत: कुपोषण का शिकार होती है। उन्हें सामर्थ्य से अधिक काम करना पडता है जिससे उनकी तंदुरुस्ती खराब रहती है परिणाम स्वरूप वे अपने परिवारो का ध्यान नही रख पाती है। भोजन सम्बन्धी समस्याए स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओ को जन्म देती है जिससे घरो का वातावरण बिगड़ता है। अनेक कारणों से बच्चे बीमार रहते हैं। ज्यादातर बीमारियां दूषित पानी, मक्खियों, धूल और बासी खाने के कारण होती हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि लोग स्वच्छता के बारे में नही जानते। आग की दुर्घटनाएं प्राय: ही हुआ करती है क्योंकि आग बच्चे की पहुंच में होती है और माताए दूसरे कामों में उलझी रहती है।

पिछले कुछ वर्षों में कम खर्च वाले पूरक प्रोटीन खाद्यों के उत्पादन के लिए भारत से विकासशील देशों में काफी प्रयास किए गए हैं। शिशु विकास की एकीकृत योजना जैसी परियोजनाओ ने सभी शिशुओं को पूरक रूप मे समुचित भोजन उपलब्ध कराने का काम किया है। इस बात को सभी जानते है कि अच्छे पोपण से बच्चा जल्दी सीखता है। ज़रूरत है कि सभी परिवार वाले इस बात को ठीक से समझ ले कि रोजाना समुचित खुराक, खुली जगह, मकान और स्वच्छता की सुविधाओं की आवश्यकता बच्चो के सही विकास के लिए है।

बौद्धिक विकास के लिए प्रेरक अनुभवों की प्रकृति

बुनियादी कुशलताओं को आत्मसात करने मे सहायता देने के लिए शिशु को अभिभावकों और छोटे बडे बच्चो की जरूरत होती है जो उसके साथ खेल सकें और उसे समय दे सकें। शिशु को उत्साही बनाने के लिए बढावा देना चाहिए और उसे तरह-तरह के नए नए कार्यकलापो की ओर मोडना चाहिए। माता पिता बच्चे के साथ जो वक्त गुजारते हैं वह बड़ा महत्वपूर्ण है। इसी वक्त में वे सीखने मे बच्चे की मदद करते है। *खेल खिलौने बच्चे के अधिगम में* महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है चाहे वे खेल खिलौने कितने ही सादे क्यों न हों। सबसे पहले बच्चे माता पिता के खेल में शब्दों या गीतों से जवाब देते हैं। फिर वे अकेले ही खेलना सीख जाते है और खिलौनों के रूप में किसी भी तरह की चीज को ले लेते है। अक्सर बच्चे सीधी सादी चीजो को खिलौना बना लेते हैं, और उनसे वही संतोष पाते हैं जो महंगे खिलौनों से मिल सकता है। गांव के आसपास पाई जाने वाली प्राकृतिक वस्तुओं से किस्म किस्म के खिलौने बनाए जा सकते है। जैसे जैसे बच्चे बड़े होते है उन्हे साथ खेलने के लिए बहिन भाई और पड़ोस के बच्चो की ज़रूरत होती है। बच्चे के स्कूल-पूर्व के वर्षों में माता पिता का काम यह है कि वे उसकी रचनात्मक गतिविधियों, हंसी मजाक, के खेलों और अनुभवो को बढ़ाने वाले कार्यकलापो में उसकी मदद करें और उसके कामो की तारीफ़ कर उसे बढ़ावा दें। चाहे

बच्चा धूल मे किसी लकडी से चित्र बनाए या गोदा-गादी करे या तरह तरह की तितलियां इकट्ठी करे या घर के बर्तनो में धूल माटी भरे और इस काम में हाथ पाव गंदे कर ले—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। महत्वपूर्ण यह है कि उसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए ताकि उसके बचकाने खेलो का आनद उसे कुछ सिखा सके।

बौद्धिक विकास के लिए, परिवेश में ऐसे अवसरों की व्यवस्था होनी चाहिए जिनमे नए नए काम बच्चा कर सके। जिनमें वह कुछ खोज सके और इन खोजो से कुछ सीख सके। उसे ऐसे अनुभव मिलने चाहिए जिनमें वह स्वयं कुछ कर सके और ऐसे अनुभव बार-बार मिलने चाहिए। उसके आसपास जो भी सजीव, निर्जीव और सामाजिक वातावरण होता है वही आगे चलकर वह आधार प्रदान करता है जिसमे भविष्य के चिंतन की नीव होती है। वातावरण में उपलब्ध सीप शख, कंकड़-पत्थर, फूल-पत्ती आदि के संग्रह करने जैसी गतिविधियों को चलने देना चाहिए। इनकी मदद से शिक्षक शिशु को रूप, आकार, गिनती समानता, कोण जैसी संकल्पनाओं से परिचित करा सकता है। इस तरह की गतिविधिया विज्ञान शिक्षण का आधार बनती है। किसी भी चीज को समझने के पहले बच्चे को अनुभव चाहिए। देखना, स्पर्श करना, सुनना, चखना, सूंघना, चुनना, सजाना, रखना आदि अनुभव हैं। *विज्ञान कौतूहल, अनुभव, विश्लेषण और अंत में* अन्वेषण की अभिव्यक्ति से बनता है। इस प्रक्रिया का मुख्य भाग है वस्तुओ, गतिविधियों और विचारों को ऐसी तरतीब देना जिससे एक नए पैटर्न की सृष्टि हो सके। परिवेश मे रहने वाले लोगो और उनके धधों से बच्चो को परिचित होना चाहिए। सब्जी मडी, किराना बाजार, चौक, गल्ला बाजार आदि की सैर कराना बड़ा फलदायक सिद्ध हो सकता है। किसी रिक्शेवाले, अस्पताल की दाई, फल वाले या दर्जी से बातचीत बड़ी प्रेरक हो सकती है।

बच्चों को अपने परिवेश की चीज़ों या घटनाओं को जानना चाहिए। उदाहरण के लिए वे मौसम, पानी की चीजों, हवा की चीजो, जमीन की चीजों, घर में इस्तेमाल होने वाली चीजो आदि के बारे में सीख सकते है। इसी प्रकार उन्हे स्थानीय त्यौहारों, महत्व-पूर्ण अवसरो आदि के बारे मे जानना चाहिए एव उत्सवो, जलसो आदि मे जाना चाहिए। घर में या घर के बाहर तुरंत की जाने वाली जांच पड़ताल की गतिविधियां अनेक प्रकार की गतिविधियो को रास्ता दिखाएगी। गिनना, नापना, चार्ट बनाना, छापना, लिखना आदि सहज रूप से आ जाएगा। इस प्रकार के अधिकांश अन्वेषण कार्य रचनात्मक लेखन को प्रेरित करते है जिससे भाषा सीखने मे आसानी रहती है।

"शिशुओं में रचनात्मक योग्यताओं के विकास के लिए कला की गतिविधियों का इस्तेमाल"

रचनात्मकता से हमारा तात्पर्य नए विचारों के प्रतिपादन और अभिनव परिवर्तन शील तथा मौलिक होने से है। शिक्षकों एवं अभिभावकों को रचनात्मकता को बढावा देना चाहिए। जिन कार्यकलापों को शिशुओ मे लाना चाहिए, वे है—चित्र बनाना और रगना, कागज काट कर चिपकाना, अभिनय, नाटक, कहानी सुनाना, कठपुतली नचाना, संगीत की धुन पर थिरकना और गुनगुनाना। बने बनाए रास्तों पर चलाने की बजाए बच्चों को मुक्त छोड देना चाहिए। यदि किसी बच्चे को रग या गीली मिट्टी देकर स्वतंत्र रूप से रंगने या खिलौने बनाने की इजाजत दे दी जाए तो हम उसकी रचना देखकर दग रह जाएंगे। इसी तरह कहानी सुनाने या अभिनय करने मे भी बच्चे की सृजनात्मकता का आदर करना चाहिए। शिक्षकों और अभिभावको का काम तो बस इतना है कि उन्हे सभी प्रकार सामग्री दे दें और उन्हे अपने आप रचने दें। स्कूल-पूर्व की आयु वाला शिशु प्रतीकात्मक खेल खेलता है। वह छडी को घोडा बना सकता है और तरह तरह की चीजे बटोर कर अपनी गृहस्थी जमा सकता है। इस प्रकार की सभी गतिविधियो को बढावा दिया जाना चाहिए। उस शिक्षक से बढकर बुरा और कौन होगा जो शिशुओ को खेलने से रोकता है और गलत तरीके से कोई काम करने पर उनको सजा देता है। शिक्षक की ऐसी हरकतें शिशु की पहल प्रवृत्ति को दबाती हैं और उसका आत्मविश्वास मार देती है। रचनात्मक गतिविधियां सौंदर्य और प्रकृति की सराहना से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई हैं। अतएव, *श्रद्धा को मन में बैठाने या पेड़ों को पूजने जैसी* भावनाओ को गतिविधियो में स्थान देना चाहिए। इससे अनुप्रेरण और आध्यात्मिक विकास को बढावा मिलेगा तथा भावनात्मक अनुभूतियां पनपेंगी। □□

बाल साहित्य

□ जगन्नाथ महंती

मानव-विकास की बुनियाद जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही पड़ जाती है, इसीलिए शैशवकाल की इतनी महत्ता है। शैशवकाल में परिवेश की भूमिका असदिग्ध है। शिशु के परिवेश मे उल्लेखनीय है— खिलौनों जैसी चित्रों भरी किताबें, कहानिया, शिशु गीत और कविताए। बच्चों को किताबें पढ़ने और देखने मे असीम आनंद मिलता है। बचपन में किताबों का जितना ही सानिध्य मिलता है उतना ही पढ़ने की आदत का विकास होता है। शैशवकाल का यह सानिध्य या अनुभव ही उसकी रुचियो और प्रवृत्तियों का निर्णायक होता है। आख खोलने के बाद जो बच्चा चारों ओर किताबें पाता है उसकी दिलचस्पी किताबों की दुनियां मे जाग जाती है और किताबे उसकी साथी बन जाती है। ऐसे बच्चे भाग्यशाली होते है, न केवल इसलिए कि उन्हे भावनात्मक तृप्ति मिलने लगती है बल्कि इसलिए भी कि उन्हें अधिगम अनुभव भी होने लग जाते है जो कि उनके व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए अपरिहार्य हैं।

शिशु साहित्य के लाभ

(1) शोध अध्ययनों से पता चला है कि बड़ो की अपेक्षा बच्चे समुचित पुस्तकों को पढ़ने मे कहीं ज्यादा दिलचस्पी लेते है। शैशवकाल में यदि पढ़ने की सही आदत पड़ जाए, तो यह आगे चल कर कई गुना बढ़ जाती है। इससे बच्चों का ज्ञान और भी बढ़ता है तथा उनकी कुशलताओ का विकास होता है जो कि आधुनिक युग के लिए जरूरी है।

(2) मनोवैज्ञानिक रूप से यह प्रमाणित हो चुका है कि समुचित दिक्परिवर्तनों की व्यवस्था करके बच्चे के संवेगात्मक विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है। और सभी तरह के दिक्परिवर्तनो मे अच्छी किताबें पडना ही सबसे महत्वपूर्ण है। शिशुओं मे पढ़ने की आदत डालने से उनके अति सवेगी मनोभावों को उचित दिशा मे मोडकर रचनात्मकता की ओर उन्मुख किया जा सकता है और व्यक्तित्व को सतुलित रूप से विकसित किया जा सकता है।

(3) कहानियो, नाटको एव कविताओ के विविध चरित्रो में बच्चे प्राय: अपने अनुभवों और अपनी छवियो को ही पाते है। कभी कभी वे कहानी या कविता लिखकर अपने को अभिव्यक्त भी करते हैं जिससे उनकी भावनाओ और अनुभूतियो को निकास मिल जाता है। इस प्रकार उनकी छिपी हुई प्रतिभाए उजागर होती है और अभिव्यक्ति का सुख भी उन्हें मिल जाता है।

(4) प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण को सफल बनाने की दृष्टि से, यह आवश्यक है कि स्कूल-पूर्व की शिक्षा को बढाया जाए और शिशुओ के लिए समुचित साहित्य की व्यवस्था की जाए। जब तक हम स्कूल-पूर्व की शिक्षा और प्राइमरी शिक्षा को बच्चो के लिए रोचक और आकर्षक नही बनाते, तब तक स्कूल की पढ़ाई छोड़ देने की प्रवृत्ति को रोका नही जा सकता। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए आकर्षक और दिलचस्प पठन सामग्री का सहारा लेना बहुत जरूरी है।

(5) शोध-अनुसधान से यह भी पता चला है कि भाषा सीखने मे ही बच्चों को सबसे ज्यादा दिक्कत होती है। खास कर ग्रामीण बच्चे शहरी बच्चो की तुलना मे स्कूल-पूर्व स्तर पर भाषा सम्बन्धी सभी कार्यों में पिछड़े रहते है। यह दिक्कत प्राइमरी कक्षा में भी होती है। सुविधा-वंचित परिवारो के बच्चे तो भाषाई

योग्यता में और भी पिछड़े रहते हैं। यदि स्कूलों में और घरों पर भी बच्चों के लिए समुचित पुस्तकों व पत्रिकाओं की व्यवस्था सुचारू रूप से कर दी जाए, तो उनमें पढ़ने की आदत पनपेगी और उनकी भाषा-क्षमता सुधरेगी। आगे चल कर ऐसे बच्चे स्कूलों में ज्यादा अच्छा निष्पादन दिखाते हैं और अन्य विषयों में भी बेहतर कर दिखाते हैं। (श्रीमती राजलक्ष्मी मुरलीधरन, 1981)

(6) भारत जैसे विकासशील देश में, जहां अधि-संख्य वयस्क निरक्षर हैं और बच्चों को पढ़ाई में बढ़ावा देने की सुविधा नहीं है, शिशु साहित्य का महत्व और भी बढ़ जाता है। अच्छी छपाई वाली आकर्षक व दिल-चस्प सचित्र किताबें ऐसे बच्चों को प्रेरित कर सकती है और वे मजे ले लेकर बहुत कुछ सीख सकते हैं।

ऊपर बताए गए शिशु साहित्य के लाभों का समाहार करते हुए, इंगलैंड की ओपेन यूनिवर्सिटी के ऐलन डेवीज़ के नुक्तों का जिक्र करना अप्रासंगिक न होगा। उनके अनुसार शिशु साहित्य (क) बच्चे की भाषा का विकास करता है, (ख) उसकी पठन क्षमता बढ़ाता है, (ग) बच्चे में कल्पना शक्ति जगाता है जिससे अन्य क्षेत्रों की गतिविधियां सम्पन्न होती है, (घ) साहित्यिक चरित्रों की समस्याओं की तुलना अपनी समस्याओं के साथ करके अपने आपको समझने में बच्चे की मदद करता है, (ङ) बच्चों के क्षितिज का विकास करता है, (च) दूसरों के अनुभवों को भोगने में बच्चे की सहायता करता है, और (छ) बच्चे को मनोरंजन प्रदान करता है। (ऐलन डेवीज़, 1975)

शिशु साहित्य का अर्थ और उसकी प्रकृति

जो साहित्य शिशुओं व बच्चों के लिए समुचित या प्रासंगिक होता है, उसे शिशु या बाल साहित्य कह सकते हैं। यह समौचित्य या प्रासंगिकता बच्चों की मनोवैज्ञानिक स्थितियों और जरूरतों पर निर्भर करती है। डेवीज़ (1975) ने बाल साहित्य के दो निकष बताए है। पहला तो यह कि ऐसी पुस्तकें मुख्य रूप से जानकारी या सुधार प्रदान करने की बजाय मनोरंजन और मजा प्रदान करती है। दूसरा यह कि ऐसा साहित्य अपने आप पढ़ने के लिए होता है।

शिशु साहित्य और सामान्य साहित्य का भेद बताते हुए डेवीज कहता है—

> अगर बच्चों की लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन से पूछा जाए कि यह तय करने में कोई दिक्कत तो नहीं होती कि कोई किताब बच्चों के लिए है या नहीं तो उसका उत्तर प्रायः यही होगा कि नब्बे फीसदी मामलों में कोई दिक्कत नहीं होती। बाकी बचे दस फ़ीसदी मामले इस बात पर निर्भर करते है कि आप किशोरों या नवयुवकों को बच्चा मानते हैं या वयस्क क्योंकि दस प्रतिशत पुस्तकें ऐसी समस्याओं से जूझती है जो किशोरों या युवाओं की होती है, जैसे कि मादक द्रव्य या अविवाहिताओं का मातृत्व आदि। (डेवीज, 1975)

दस प्रतिशत संदेहास्पद मामलों को तय करने के लिए दो निकषों पर निर्भर करना होगा। पहला तो यह कि ऐसी पुस्तकों के चरितनायक बच्चे हैं या युवा। दूसरा यह है कि उनकी कथावस्तु अर्थात् प्रतिपाद्य विचार और सम्बन्ध सरल हैं या जटिल। यह बात भाषा को भी प्रभावित करती है। इसीलिए 'गुलीवर की यात्राएं' जैसी पुस्तक दूसरे निकष के आधार पर बाल साहित्य के अंतर्गत आ जाती है। कह सकते हैं कि कथावस्तु की सरलता ही निर्णायक निष्कर्ष है। संक्षेप में, सभी साहित्य बाल-साहित्य होता है जब तक कि वह जटिल न हो। दूसरे निकष के आधार पर ही 'आपका बंटी' या 'घेरे के बाहर' को बाल साहित्य के अंतर्गत नहीं लिया जा सकता।

अमरीकी समीक्षक आइजन एप्स्टीन (1969) का कहना है कि सैद्धांतिक रूप से अच्छे बाल साहित्य और अच्छे साहित्य में कोई अंतर नहीं होता। बच्चों के साहित्य के मानक वही होते है जो सभी साहित्यों के लिए होते है। बच्चे की पठन आवश्यकता वहीहो ती है जो वयस्कों की होती है। एप्स्टीन का अभिप्राय

यह है कि बच्चों के लिए रचे जाने वाले साहित्य को लेकर बेकार में तूमार खड़ा किया जाता है।

ये दोनो दृष्टियां बाल साहित्य के बारे मे अत्यंत सरलीकृत और सामान्यीकृत चित्र प्रस्तुत करती है। इन दोनों मे से कोई भी बात को साफ़ करके नही देखती। यह सोचना कि लाइब्रेरियन बाल साहित्य और सामान्य साहित्य के अतर को समझ सकता है, बात को जरूरत से ज्यादा सरल बना देता है। यह सोचना भी उतना ही भ्रामक है कि दोनों प्रकार के साहित्य एक जैसे ही है और बच्चे की पठन आवश्यकता वही है जो बडे की है। बाल साहित्य और सामान्य साहित्य को एक दूसरे से अलग होना ही पडेगा क्योकि बच्चों की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताए एवं स्थितिया सर्वथा भिन्न है।

शिशुओं की सामाजिक आवश्यकताएं

तीन से आठ वर्ष के और नौ से चौदह वर्ष के बच्चो का साहित्य एक जैसा नहीं होता। एक वर्ग के बच्चों के लिए जो पुस्तकें सर्वोत्तम होंगी, वे दूसरे वर्ग के लिए उत्तम भी हों, यह जरूरी नहीं है। ऐसा इस कारण है कि दोनों वर्गों की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक परिस्थितियां तथा आवश्यकताए अलग अलग है। खास कर मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक विकास यह अंतर ला देता है। जितनी ही छोटी उम्र के बच्चे होंगे उतना ही मुश्किल उनके लायक किताब लिखने का काम होगा। जिस प्रकार वयस्क साहित्य बाल साहित्य की बुनियाद पर बनता है उसी प्रकार बाल साहित्य शिशु साहित्य की बुनियाद पर बनता है।

खिलौनों से प्यार करने वाला छोटा-सा शिशु भी किताबों से प्यार करना सीख सकता है। इसीलिए किताबों को ऐसा बना होना चाहिए कि बच्चे उन्हें खिलौना समझें। शिशु किताबो को पढ़ नहीं सकता फिर भी वह किताबो को उलटना-पलटना और उनके चित्रों को देखना पसंद करता है। इसीलिए शिशुओं को चित्रो से भरी किताबें बहुत अच्छी लगती है। इसी दृष्टि से शिशुओं के लिए बनी किताबों की जिल्दसाजी मजबूत होने के साथ साथ उनके लिए प्रयुक्त पाठ्य सामग्री व आवरण का कागज भी अच्छी किस्म का होना चाहिए।

ऐसी किताबों को कभी कभी कपड़े से बने कागज पर छापा जाता है। कई वर्षों पूर्व लदन के एक प्रकाशक ने ऐसी ही किताबें छापी थी। उसने घोषणा की थी कि कितनी भी बुरी तरह से इन किताबो को क्यों न इस्तेमाल किया जाए ये जल्दी खराब नही होगी। गंदी हो जाने पर इन्हें लक्स से धोया भी जा सकता है— इस आशय की सनद लक्स कम्पनी ने दी थी। (एन.सी.ई.आर.टी., 1980)

इस प्रकार की किताबो की एक और दिलचस्प मिसाल भी है। बिल्लियों के बारे मे एक किताब छपी थी जो बिल्कुल खिलौना लगती थी। देखने में वह बिल्कुल बिल्ली जैसी थी। यहा तक कि किताब छूने पर बिल्ली की आंखें नाचने लगती थी। पन्ना पलटने पर वह म्याऊँ म्याऊँ करती थी। किताब मे बडे आकर्षक रगो में बिल्ली की तस्वीरें छपी थी। इसी तरह से कुछ किताबें खुल कर घर बन जाती है। कुछ बगीचा या कोई और चीज बन जाती हैं। तीन आयामो वाली ऐसी किताबों को शिशु वर्ग बहुत पसंद करता होगा।

लेखक ध्यान दें

शिशुओं के लिए साहित्य को उनकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला होना चाहिए। शिशु साहित्य उनके लिए उनके आसपास के संसार की पुनर्रचना करता है और शिशु उनके माध्यम से उनमे आए चरित्रों के अनुभवों को पुन: जीते हैं। शिशु आत्मकेन्द्रित होते हैं और उन्हें वही बातें जचती है जिन्हें वे पसंद करते हैं। अलबत्ता यह बात है कि धीरे धीरे उनके परिवेश बढ़ते जाते हैं और उनमें अन्य बच्चे, स्कूल, पेड़, पौधे, पशु-पक्षी आदि आ जाते हैं।

वास्तव मे शिशु साहित्य को शिशुओ की कल्पना और जिज्ञासा को उकसाने वाला होना चाहिए।

उसमें रचनात्मक खेल तथा नाटक होने चाहिए। इन किताबों को शिशुओं की समझ और अनुभवों के स्तर का होना चाहिए। इनमें शिशुओं को हसाने-गुदगुदाने की सामर्थ्य होनी चाहिए। अधिकांश बच्चों को सीधी सादी कहानियां, शिशु गीत, क्रियापूर्ण गाने जैसी चीजे भाती है। एक साथ ढेर सारी संकल्पनाओं और विचारों को ठूंस देना मुनासिब नहीं है। ऐसी किताबो में छपने वाले चित्रों को आकर्षक रंगों में होना चाहिए। किताबों को सस्ता भी होना चाहिए। कुल मिलाकर शिशु साहित्य को शिशु के स्तर, रूचि और हितों वाला होना चाहिए।

केरल के राज्य शिशु साहित्य संस्थान के निदेशक अब्राहम जोजेफ ने ठीक ही कहा है कि लेखकों को अपने भीतर के शिशु को मुक्त कर देना चाहिए और उसे सोचने, बोलने, गाने, लिखने और रंगने के लिए स्वच्छद कर देना चाहिए। (एन.सी ई आर.टी., 1983)।

लेखकों को यह अहसास होना चाहिए कि हर छोटा शिशु एक बड़ा प्रश्न चिह्न होता है और संसार एक कौतुक नगरी है—एक आश्चर्य लोक—जिसमें शिशु अपने कौतूहलों के साथ विचरण करता है। इसलिए लेखकों को शिशुओं के साथ बड़ी हमदर्दी रखनी चाहिए, उन्हें पूरी तरह से समझना चाहिए और उनके प्रति गहरी आस्था का भाव लिए होना चाहिए। यही भाव शिशुओं की कौतुकनगरी के प्रति भी होना चाहिए। □□

संदर्भ

1. ऐलन डेवीज—**लिट्रेचर फॉर चिल्ड्रेन**, यू० के०, लंदन, ओपेन यूनिवर्सिटी, 1975
2. आइजन एप्स्टीन—**गुड वनीज आलवेज ओबे**, इन शीला यूगॉफ़ आदि, **रीडिंग्स इन चिल्ड्रेन्स लिट्रेचर**, टोरंटो, ओ यू. पी., 1969
3. जगन्नाथ महंती—**थ्रू दि बुक एजेज**, कटक, जे. महापात्र एंड कम्पनी, 1980
4. राजलक्ष्मी मुरलीधरन— **लिट्रेचर फॉर यंग चिल्ड्रेन**, त्रिवेंद्रम, केरल मे हुई बाल साहित्य गोष्ठी में पढे गए प्रबंध से, केरल, 1981
5. एन. सी. ई. आर. टी —**इक्कीसवीं राष्ट्रीय बाल साहित्य प्रतियोगिता की रिपोर्ट**, नई दिल्ली, 1980
6. एन. सी. ई. आर, टी.—**फ़ोकस ऑन प्रॉब्लम्स एंड प्रॉस्पेक्ट्स ऑफ चिल्ड्रेन्स लिट्रेचर**, नई दिल्ली, जनवरी, 1983

ग्रामीण प्राइमरी पाठशालाओं में छात्रों की अवरुद्धता

□ रमेशचंद्र शर्मा

प्रस्तुत अन्वेषण का विषय ग्रामीण क्षेत्रो के प्राइमरी स्कूलो की विशेषताओं और उनमें छात्रों की अवरुद्धता के प्रभाव क्षेत्र का अध्ययन करना है। इस अन्वेषण के प्रमुख उद्देश्य थे—

(1) ग्रामीण क्षेत्रों के प्राइमरी स्कूलों के विशिष्ट लक्षणो का अध्ययन करना।

(2) ग्रामीण क्षेत्रो के प्राइमरी स्कूलो मे एक ही कक्षा मे दो वर्ष तक रुके रहने वाले छात्रो की अवरुद्धता का अध्ययन करना।

विधि

आंध्र प्रदेश के महबूबनगर और मेडक जिलो की चार पचायत समितियो से बीस गावो को नमूने के लिए चुना गया था। इन गांवो और पुरवो के सभी प्राइमरी स्कूलो को नमूने मे सम्मिलित किया गया था चाहे वे सरकारी थे या प्राइवेट। पूरी तरह से सरकारी सहायता पाने वाले थे या कुछ सहायता पाने वाले या बिना किसी सहायता के चलने वाले। कुल मिलाकर 22 प्राइमरी स्कूलो को लिया गया था—महबूबनगर जिले से ग्यारह और मेडक जिले से ग्यारह। इन सभी स्कूलों की शिक्षण भाषा तेलुगु थी।

अन्वेषण के प्रमुख उद्देश्यों को ध्यान मे रखकर स्कूलों के विशिष्ट लक्षणों एवं उनमें छात्रों की अवरुद्धता के प्रभाव क्षेत्र से सम्बद्ध जानकारी एकत्र की गई। स्कूलों के विशिष्ट लक्षणो का तात्पर्य है—स्कूल की स्थिति, स्कूल का पास पड़ोस, स्कूल की इमारत, व उसका फर्श, इमारत का स्वमित्व, पीने के पानी की सुविधा, स्कूल मे अध्यापकों की सख्या और स्कूल में फर्नीचर तथा अन्य उपकरण। अवरुद्धता का तात्पर्य है—छात्रों का एक ही कक्षा में एक शैक्षणिक साल से अधिक समय तक बने रहना। अवरुद्धता से सम्बद्ध जानकारी विभिन्न कक्षाओ की उपस्थिति पजिकाओं से ली गई। आंध्र प्रदेश के स्कूलों मे कक्षा मे छात्रो को एक शैक्षणिक वर्ष से अधिक समय तक न रोकने की नीति अपनाई गई है। इसलिए केवल उन्ही छात्रो के बारे में जानकारी जुटाई जा सकी जो उपस्थिति की कमी के कारण एक ही कक्षा मे दूसरे साल भी रुके रहने के लिए मजबूर थे।

यह जानकारी 1977-78 से 1981-82 तक के पाच वर्षों के बारे मे थी—

जानकारी एकत्र करने के लिए अन्वेषक ने एक स्कूल तालिका बनाई थी जिसे बीसो जिलों के सभी प्राइमरी स्कूलों मे भेज दिया गया। अन्वेषक सभी स्कूलो मे व्यक्तिगत रूप से गया। इसके अलावा, इस सिलसिले मे अन्वेषक ने प्राइमरी शिक्षा से सम्बद्ध पंचायत समिति और जिला स्तर के सरकारी अधिकारियो व कर्मचारियो से अनौपचारिक बातचीत भी की।

परिणाम

आधार सामग्री के विश्लेषण पर आधारित निम्नलिखित बातो का पता चला—

(1) ग्रामीण क्षेत्रों के प्राइमरी स्कूल पंचायत समितियों द्वारा चलाए जाते थे। वे बिस्तार अधिकारी (शिक्षा) के प्रत्यक्ष निरीक्षण में थे।

(2) सर्वेक्षण के अंतर्गत आए 40 प्रतिशत स्कूल गांवो की गलियों में चल रहे थे, 13.63 प्रतिशत स्कूल गांव के बीच में थे, 13.63 प्रतिशत मुख्य सड़क पर थे और 13.63 प्रतिशत स्कूल गावों की सीमा पर थे। कोई भी स्कूल बाजार के पास नहीं था।

(3) नमूने के स्कूलों मे अधिकाश (77 27 प्रतिशत) धूल धक्कड़ वाले परिवेश मे स्थित थे। केवल 18 प्रतिशत स्वस्थ वातावरण में थे। महबूबनगर का एक स्कूल शोरगुल वाले इलाके में स्थित था।

(4) लगभग 40 प्रतिशत स्कूल पक्की इमारतो में थे जबकि 18.18 प्रतिशत कच्ची झोपड़ियो में थे। दोनो ही जिलो के 40 प्रतिशत स्कूल अधपक्की इमारतो में थे। मेडक जिले की अपेक्षा महबूबनगर में पक्की इमारतों वाले स्कूल अधिक थे।

(5) लगभग 59 प्रतिशत स्कूलों मे कच्चा फर्श था जबकि दोनों जिलो मे 31 81 प्रतिशत स्कूलो मे पत्थर का फर्श था। केवल 9.09 प्रतिशत स्कूलों मे सीमेंट का फर्श था। महबूबनगर की तुलना मे मेडक जिले के स्कूलो में कच्चे फर्श वाले स्कूल अधिक थे।

(6) दोनो ही जिलो मे लगभग 45 प्रतिशत स्कूल बिना किराए की इमारतों में थे जबकि 27.27 प्रतिशत स्कूल अपनी ही इमारतो में थे। महबूबनगर का एक स्कूल आंशिक रूप से अपनी और आशिक रूप से भाड़े की इमारत मे था। मेडक जिले के स्कूलो की इमारतें ज्यादातर किराए पर थी जबकि महबूबनगर के ज्यादातर स्कूल बिना किराए की इमारतों मे थे।

(7) दोनो ही जिलो में लगभग 73 प्रतिशत स्कूलों मे पीने के पानी की सुविधा पास पड़ोस मे ही थी, जबकि 18.18 प्रतिशत स्कूलो मे यह सुविधा इमारत के भीतर ही थी। मेडक जिले के दो स्कूलों मे पीने के पानी की सुविधा न तो पास पड़ोस मे थी न ही इमारत के भीतर।

(8) लगभग 27 प्रतिशत स्कूलों में केवल दो कक्षाएं—1 व 2—चल रही थीं, जबकि 36.37 प्रतिशत स्कूलो में पांचो कक्षाएं—1 से 5 तक—चल रही थीं। मेडक जिले की तुलना में महबूबनगर जिले मे ऐसे स्कूलो की संख्या अधिक थी जिनमें कक्षा 1 से 5 तक की व्यवस्था थी जबकि मेडक जिले में कक्षा 1 से 3 तक के स्कूल अधिक थे।

(9) नमूने के आधे से ज्यादा स्कूलो, अर्थात् 14 स्कूलो मे (63 63 प्रतिशत) एक ही अध्यापक था। दो और चार अध्यापको वाले स्कूलो का प्रतिशत 9.09 था। महबूबनगर मे एक स्कूल ऐसा भी था जिसमे पाच अध्यापक थे। महबूबनगर की तुलना में मेडक में एक ही अध्यापक वाले स्कूल अधिक थे।

(10) कक्षा 1 से 5 वाले दो स्कूल ऐसे पाए गए जिनमे केवल एक अध्यापक था। कक्षा 1 से 4 वाले दो स्कूलों मे भी एक ही अध्यापक था। लगभग 27 प्रतिशत ऐसे स्कूल जिनमे कक्षा 1 से 2 तक की पढ़ाई होती थी, और 27.26 प्रतिशत ऐसे स्कूल जिनमें तीन कक्षाएं थीं, एक ही अध्यापक वाले थे। दो स्कूल (9.09 प्रतिशत) जिनमें कक्षा 1 से 5 तक की पढ़ाई होती थी, चार अध्यापकों वाले थे। महबूबनगर मे एक स्कूल पाँच अध्यापकों वाला भी था। इसमें कक्षा 1 से 5 तक की पढ़ाई होती थी।

(11) पाया गया कि दोनो जिलो में कोई भी स्कूल ऐसा नहीं था जिसमे स्कूल की सभी जरूरी बातें होतीं। किसी भी स्कूल में दर्पण या प्राथमिक चिकित्सा का बक्सा न मिला। रद्दी की टोकरी केवल एक स्कूल में थी। जिले का नक्शा केवल दो स्कूलों में मिल सका। तीन स्कूलों मे नोटिस बोर्ड और खेलने का सामान उपलब्ध था। दोनो ही जिलों के चार स्कूलों में बाल फ्रेम, चित्रों वाली किताबें, विश्व का मानचित्र, और गिलास उपलब्ध थे। पाच स्कूलों मे घड़ी या अलमारी, टाट पट्टी या बचें और ग्लोब उपलब्ध था, जबकि स्कूल की नाम पट्टिका व झाडू और भारत के मानचित्र क्रमशः 6 व 7 स्कूलों मे मिले। छात्रों की

सुविधा वाले सामानों की तुलना में, शिक्षकों की सुविधा वाले सामान ज्यादा स्कूलों में मिले। दोनों ही जिलों मे बच्चों को सुविधा प्रदान करने वाले सामान की दृष्टि से बड़ी दयनीय स्थिति थी। शिक्षकों को सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से अधिकाश स्कूलों मे अध्यापक के लिए एक कुर्सी एक मेज थी। 36 36 प्रतिशत स्कूलों में झाडन व 77.27 प्रतिशत स्कूलों मे ब्लैक बोर्ड था हालांकि वे इनका ज्यादा इस्तेमाल नहीं कर रहे थे।

(12) महबूबनगर में झोपड़ी मे चलाए जा रहे स्कूलों के बच्चो मे अवरुद्धता का प्रतिशत 65 79 था, जब कि मेडक जिले में झोपड़ी में चल रहे स्कूलो के बच्चों में अवरुद्धता 54·26 प्रतिशत थी।

(13) महबूबनगर मे एक-अध्यापक-वाले और अनेक-अध्यापक-वाले प्राइमरी स्कूलों के बच्चों में अवरुद्धता क्रमश: 37.65 प्रतिशत और 28 14 प्रतिशत थी, जब कि मेडक जिले में एक-अध्यापक-वाले और अनेक-अध्यापक-वाले प्राइमरी स्कूलों के बच्चों मे अवरुद्धता क्रमश 43.60 प्रतिशत और 79·77 प्रतिशत थी। तेलगाना प्रदेश मे एक-अध्यापक-वाले स्कूलों और अनेक-अध्यापक-वाले स्कूलो में अवरुद्धता क्रमशः 41·29 प्रतिशत और 32 74 प्रतिशत थी।

(14) जिन स्कूलों के अध्यापकों के मकान गांव के बाहर थे, वहां के छात्रों मे अवरुद्धता का प्रतिशत अधिक था। महबूबनगर और मेडक जिलों के जिन स्कूलो के अध्यापक गाव से बाहर रहते थे वहा के छात्रों में अवरुद्धता क्रमश. 24 71 और 80·16 प्रतिशत थी।

(15) महबूबनगर के मुकाबले मेडक जिले के सभी छात्रों मे अवरुद्धता अधिक थी। महबूबनगर एव मेडक दोनों ही जिलों में जो स्कूल शहरों के निकट थे वहां के छात्रों में अवरुद्धता का प्रतिशत अधिक था।

(16) तेलगाना प्रदेश के जिन गावों में खेती की जाने वाली भूमि का 50 प्रतिशत या उससे अधिक सिंचाई के अतर्गत आ जाता है वहां के छात्रों में अवरुद्धता का प्रतिशत सबसे अधिक था। जिन गांवो मे खेती की जाने वाली भूमि का 10 प्रतिशत या उससे भी कम सिचाई के अतर्गत आता है, वहां के छात्रों में भी अवरोध ज्यादा (46.55 प्रतिशत) था।

निष्कर्ष

ऊपर गिनाए गए खोज के परिणामों के आधार पर नीचे लिखे निष्कर्ष निकाले गए —

(1) ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक-अध्यापक-वाले स्कूलो के मुकाबले एक-अध्यापक-वाले स्कूलों के छात्रों में अवरोध का प्रतिशत ज्यादा पाया गया।

(2) झोपड़ियों मे चल रहे स्कूलों के छात्रों मे अवरोध का प्रतिशत ज्यादा था।

(3) जिन स्कूलो के अध्यापक स्कूल वाले गावो मे ही रहते थे उनके मुकाबले गांव से बाहर रहने वाले अध्यापको के स्कूलों के छात्रों में अवरोध और भी ज्यादा था।

(4) जिन गांवों मे खेती की जाने वाली कुल भूमि के पचास प्रतिशत या उससे अधिक मे सिंचाई की जाती थी, वहां के छात्रों में अवरोध ज़्यादा था।

इस प्रकार ऐसा लगता है कि ग्रामीण क्षेत्रो में प्राइमरी स्कूलो के विशिष्ट लक्षणों का वहा के छात्रों के अवरोध पर कुछ प्रभाव अवश्य है। स्कूलो के विशिष्ट लक्षणो के सर्वेक्षण की खोजों से गांव के प्राइमरी स्कूलों की दयनीय दशा पर जबर्दस्त प्रकाश पड़ता है। गांवों के कुछ प्राइमरी स्कूलों मे बुनियादी जरूरत की चीजें और सुविधाए भी नहीं है। गांवो के अधिकांश प्राइमरी स्कूलों के आसपास स्वस्थ वातावरण, स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक, स्कूलो की पक्की इमारते और उन इमारतो में पीने के पानी की सुविधा भी नही है। मेडक या महबूबनगर के किसी भी स्कूल में सभी जरूरी फर्नीचर या उपकरण (स्कूल नाम पट्टिका, नोटिस बोर्ड, स्कूल का घंटा, राष्ट्रीय झंडा, घड़ी, बक्सा या आल्मारी और दर्पण), शिक्षकों के लिए सुविधाए (मेज, कुर्सी, ब्लैक बोर्ड और झाड़न), छात्रों के लिए सुविधाएं (टाट पट्टी, बैचें, मिट्टी के

घड़े, गिलास, बाल्टी, झाड़ू, रद्दी की टोकरी), शिक्षण साधन (बाल फ्रेम, वर्णमाला का चार्ट, चित्रों वाली किताबें, जिला-राज्य-भारत का मानचित्र और ग्लोब) और प्राथमिक चिकित्सा का बक्सा या खेलों का समान जैसी सामग्री भी नहीं है।

ऊपर गिनाई गई चीजे बच्चो को स्कूल मे लाने के लिए निश्चय ही सहायक होती है। इनसे बच्चे स्कूल मे नियमित रूप से आना चाहते है। निस्संदेह आंध्र प्रदेश की सरकार ने सन 1971 मे अपनी उस नीति को लागू करना शुरू कर दिया था जिसके अतर्गत पूरे राज्य में कक्षा 7 व 10 को छोड़कर किसी भी कक्षा में छात्रों को अगली कक्षा मे जाने से रोका नहीं जा सकता था। हां, उपस्थिति पूरी न होने पर ऐसा किया जा सकता था। दूसरे शब्दो मे कहे, इस नीति से यह उम्मीद की गई थी कि स्कूल स्तर पर, विशेष कर अपर प्राइमरी स्तर पर, छात्रों मे अवरोध को रोका जा सकेगा। शर्मा (1981) ने पता लगाया कि 'न रोकने की नीति' की अवधि के मुकाबले 'न रोकने की नीति के पूर्व' वाली अवधि में स्कूल की पढ़ाई बीच में ही छोड़ देने की प्रवृत्ति अधिक थी। यह प्रवृत्ति 'न रोके जाने की नीति' के दौरान धीरे-धीरे घटती गई है।

अवरोध या दुहराव का तात्पर्य है किसी कक्षा मे छात्रों का असंतोषजनक प्रगति के कारण एक से अधिक शैक्षणिक वर्ष तक बने रहना। प्राइमरी कक्षाओं में छात्रों के अवरोध का कारण उपस्थिति में कमी होना है। कोर्स की अवधि बढाकर अवरोध शैक्षिक क्षति को बढा देता है। बम्बई नगर निगम ने सन 1967 मे जो अध्ययन कराया था उसके अनुसार सन 1950 मे 49 7 प्रतिशत छात्रो ने एक बार फेल होने पर स्कूल छोड़ दिया था और सन 1957 में 92.9 प्रतिशत छात्रों ने। जबकि 1950 मे 6 69 प्रतिशत छात्रो ने पास होने पर स्कूल छोड़ दिया और सन् 1957 मे 3 4 प्रतिशत छात्रों ने।

हालाकि 'न रोके जाने की नीति' यह प्रावधान करती है कि प्राइमरी स्तर पर छात्रों मे अवरोध का प्रभाव क्षेत्र खत्म हो जाएगा, फिर भी स्कूलो के विशिष्ट लक्षण तथा कुछ अन्य कारक अवरोध को बढा देते है। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि गांवों के प्राइमरी स्कूलों में इमारतो, अनेक अध्यापको, अध्यापकों के लिए गाव में ही रहने के मकानो, खेल के मैदानों, पीने के पानी, स्वच्छता की सुविधाओं, फर्नीचर और उपकरणो आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। वर्तमान सुविधाओं को सुधारा जाना चाहिए और स्कूल का समय छात्रो की सुविधा के अनुरूप होना चाहिए। इन कदमो से गांवों के प्राइमरी स्कूलो में छात्रों के अवरोध में अप्रत्यक्ष रूप से कमी लाने में मदद मिलेगी। बुनियादी सुविधाएं जुटाकर गावो के प्राइमरी स्कूल बच्चों के लिए आकर्षक बन सकेंगे और बच्चे नियमित रूप से स्कूल जाने का आनद उठा पाएंगे। इससे छात्रो में शैक्षिक क्षति भी अप्रत्यक्ष रूप से कम की जा सकेगी। □□

संदर्भ

(1) बाम्बे म्यूनिसिपल कार्पोरेशन—'**स्टडी ऑफ इंसीडेंस ऑफ वेस्टेज एंड स्टेगनेशन एंड इफेक्टिवनेस ऑफ आवर एजुकेशनल एफर्ट्स**—' प्राइमरी एजुकेशन डिपार्टमेंट, 1967

(2) एम. बी. बुच—'**ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन**।' बड़ौदा : सी. ए. एस. ई., एम.एस. यूनिवर्सिटी, 1974

(3) रमेशचंद्र शर्मा—'**पॉलिसी ऑफ नॉन डिटेंशन इन आंध्र प्रदेश** : एन एवैलुएशन रिसर्च।' हैदराबाद : एड-मिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज ऑफ इंडिया, 1981

कक्षा में छात्रों की श्रेष्ठतम निष्पत्ति

□ ललित किशोर

व्यवहारवादी मनोविज्ञान अधिगम (शिक्षार्जन) के बारे मे कहता है कि यह शिक्षार्थी के व्यवहार में ऐसा परिवर्तन लाता है जिसे श्रेष्ठतम निष्पत्ति के रूप मे नापा जा सके। कक्षा-शिक्षण के फलस्वरूप यदि शिक्षार्थी विषय वस्तु की दक्षता हासिल कर लेता है तो निष्पत्ति को श्रेष्ठतम कहेगे। और शिक्षार्थी को अपने आप शिक्षार्जन करने देकर तथा पर्याप्त व्यक्तिगत मार्गदर्शन जुटा कर हर छात्र अपेक्षित स्तर का निष्पादन कर सके, ताकि निष्पत्ति-आधारित शिक्षार्जन की परिस्थिति लाई जा सके।

निष्पत्ति-आधारित शिक्षण का आयोजन

निष्पत्ति-आधारित शिक्षण विधियों में अधिकांश कैरोल (1963) द्वारा विकसित विचारो पर आधारित हैं। कैरोल के अनुसार निष्पत्ति-आधारित शिक्षण का आयोजन इन चरणो में करना चाहिए—

(1) यह स्पष्ट कीजिए कि क्या शिक्षार्जन करना है, और निष्पादन का एक स्तर तय कीजिए।

(2) छात्रों को शिक्षार्जन करने के लिए प्रेरित कीजिए।

(3) शिक्षार्जन विकसित करने के लिए शिक्षण प्रदान कीजिए।

(4) विभिन्न छात्रों के लिए समुचित गतियों में सामग्री प्रस्तुत कीजिए।

(5) रेडीनेस टेस्ट्स के माध्यम से छात्रो की प्रगति को जाचिए।

(6) छात्रों की कठिनाइयों का पता लगाइए और उन्हें दूर करने के उपाय जुटाइए।

(7) अच्छी निष्पत्तियो के लिए छात्रो को प्रोत्साहित कीजिए और उनकी प्रशसा कीजिए।

(8) समीक्षा कीजिए और अभ्यास कराइए।

(9) समय के अनुसार शिक्षार्जन की तेज गति बनाए रखिए।

निष्पत्ति—आधारित शिक्षण शुरू करने के लिए किसी कोर्स के विषय तत्व को छोटे छोटे अधिगम खडो में तोड लिया जाता है जिन्हे 'अध्ययन एकक' कहते हैं। छात्र को अध्ययन एककों मे से गुजरने दिया जाता है ताकि वह अपने शिक्षार्जन को दृढ कर सके। जब भी छात्र को लगे कि उसने अपने अध्ययन एकक को दृढ़ कर लिया है तो उसका परीक्षण रेडीनेस टेस्ट्स द्वारा लिया जाता है। यह परीक्षण इस बात की जांच करता है कि छात्र ने तय किए गए स्तर को हासिल कर लिया है या नही। निष्पत्ति के तय किए गए स्तर को यदि छात्र नही हासिल कर पाता तो वह एकक को दुबारा हाथ में लेता है। इस समय वह शिक्षक अथवा तेज छात्रो का व्यक्तिगत मार्गदर्शन ग्रहण करता है। अगले एकक को छात्र तभी हाथ लगाता है जब वह निष्पत्ति के तय किए गए स्तर से कुछ ऊपर के स्कोर के साथ रेडीनेस टेस्ट्स को पास कर लेता है।

रेडीनेस टेस्टिंग

रेडीनेस टेस्ट उस मूल्यांकन विधि को कहते है जो इस बात की जांच करती है कि छात्र ने निष्पत्ति के तय किए गए स्तर को पा लिया है अथवा नही। रेडीनेस टेस्ट स्कोर की तुलना चरम निष्पादन मानक और शिक्षण की गुणवत्ता के साथ की जाती है। जब कोई छात्र विशिष्ट निष्पादन स्तर से ज्यादा टेस्ट स्कोर पा

जाता है तो माना जाता है कि वह अगले अध्ययन एकक का शिक्षार्जन करने के लिए तैयार है। व्हाइट और ड्यूकर (1973) के अनुसार रेडीनेस टेस्टिंग का यह लाभ है कि यह पाठ्यक्रम बनाने वालों को कम से कम मजबूर तो कर ही देती है कि वे स्पष्ट करें कि वे क्या सम्पादित करना चाह रहे हैं और इस प्रकार उनके माने हुए शैक्षिक आदर्श और उसी आदर्श में निहित 'मूल्यों' को समझने में हमारी मदद हो जाती है।

निष्पादन-स्तर को तय करने के लाभ

निष्पादन के किसी स्तर के लिए विद्यार्थियों को उकसाने मे यह लाभ है कि उनमें शिक्षार्जन के लिए अपने आप पहल करने और मार्ग दर्शन ढूंढ़ने की प्रतिबद्धता आ जाती है। साथ ही निष्पादन-स्तर को तय करने से शिक्षक को उपचारीय शिक्षण द्वारा अपना अध्यापन नियोजित करने मे मदद मिल जाती है (रोभी 1971)। इससे न केवल कमज़ोर छात्रों को पहचान लिया जाता है, बल्कि उन्हें जिस व्यक्तिगत मार्गदर्शन की जरूरत होती है उसकी मात्रा का पता भी चल जाता है। इससे एक मानक भी मिल जाता है जिससे अध्यापक अपने ही निष्पादन (अर्थात छात्र की उपलब्धि) को आक सकते है। (पोफैम और बेकर 1970)।

निष्पादन स्तर को तय करने का एक लाभ और भी है। वह यह कि पढाए जा रहे विषय को दृढ करने में छात्र इसकी मदद पा जाते हैं। निष्पादन—आधारित कक्षा का जोर 'व्यवहार वादी उद्देश्यों' और 'छात्रों द्वारा दक्ष की जाने वाली योग्यताओं' पर रहता है। किसी भी अच्छे उद्देश्य को सुस्पष्ट होना चाहिए और छात्रों के शिक्षणोत्तर व्यवहार को 'नापने वाले शब्दों' मे बताने वाला होना चाहिए। स्वच्छ भाषा में व्यक्त किए गए सुस्पष्ट उद्देश्य अध्यापक की मदद न केवल अपने छात्रो की निष्पत्तियों को आंकने में अपितु अपने स्वय के शिक्षण को नियोजित एव आकलित करने में भी करते हैं। □□

संदर्भ

(1) जेम्स एच. ब्लॉक (सम्पा.)—'**मास्टरी लर्निंग : थियरी एंड प्रैक्टिस।**' न्यूयॉर्क, होल्ट, राइनहार्ट एंड विंस्टन, 1971

(2) बी. एस. ब्लूम—'**लर्निंग फॉर मास्टरी**' (एवैलुएशन कमेंट) (2), 1968

(3) बी. एस. ब्लूम आदि—'**हैंडबुक ऑन फॉर्मेटिव एंड समेटिव एवैलुएशन ऑफ स्टूडेंट लर्निंग।**' न्यूयॉर्क, मैक्ग्राहिल, 1971

(4) एम. एल. कैरोल—'**इफेक्टिव गाइडेंस ऑफ द एलीमेंटरी स्कूल चाइल्ड**'। (इन 'टीचर्स एनसाइक्लोपीडिया') एंजिलवुड क्लिफ : प्रेंटिस हॉल, 1966

(5) जॉन सी क्लिफ्ट और ई इमरी—'**ऐसेसिंग स्टूडेंट्स, अप्रेजिंग टीचिंग।**' लंडन : ग्रूम हेल्म, 1981

(6) एफ. एस. केलर—'**गुडबाइ टीचर**' (जर्नल ऑफ एप्लाइड बिहेवियर एनालिसिस, 1), 1968

(7) ललित किशोर—'**द इफेक्टिवनेस ऑफ मास्टरी लर्निंग : ए सेशन ऑफ ट्राइ आउट**' (पाथवेज़), 1982

(8) ललित किशोर—'**लर्निंग फॉर मास्टरी : एन इंस्ट्रक्शनल डिजाइन**' (यूनिवर्सिटी न्यूज) 29, (1), 1983

(9) आर एन. माथुर—'**ऑन इम्प्लीमेंटेशन ऑफ मास्टर लर्निंग स्ट्रैटेजी**' (जर्नल ऑफ हायर एजुकेशन, 4), 1977

(10) आर. एन माथुर—**गाइडलाइन्स टु इम्प्लीमेंटेशन ऑफ आइ. जी. एस. आइ.**' ' न्यू दिल्ली, **एनसीईआरटी**, 1983

(11) एन एन पनगोत्रा और ललित किशोर—'**दि वैल्यू ऑफ मास्टरी लर्निंग प्रोसीजर**' (एजुकेशन रिव्यू, 88 (7))1982

(12) डब्ल्यू. जे. पॉपहम और ई. एल. बेकर—'**इस्टैब्लिशिंग इन्स्ट्रक्शनल गोल्स**' : एन. जे. एजिलवुड क्लिफ : प्रेंटिस हाल, 1970

आंध्र प्रदेश में स्कूल स्तर पर पाठ्यक्रमीय परिवर्तन

□ आर० कृष्णा राव
□ आर० पापा

सन् 1956 में भाषायी आधार पर राज्यो के पुनर्गठन के बाद, आंध्र प्रदेश की सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने माध्यमिक शिक्षा के मुदैलियर आयोग की सिफारिशो के अनुसार स्कूल शिक्षा में बुनियादी परिवर्तन किए। उस समय वहा पर ब्रिटिश परंपरा की शिक्षा प्रणाली चल रही थी। सरकार ने अनेक उच्चतर माध्यमिक और बहुउद्देशीय स्कूल खोले जिनमे व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा को अपेक्षित महत्व दिया गया। प्राइमरी शिक्षा को बुनियादी शिक्षा मे बदला गया। इसके लिए राज्य सरकार ने कक्षा 1 से 12 तक के पाठ्यक्रम में परिवर्तन किए और 10, 11 व 12 कक्षाओ को उच्चतर माध्यमिक कक्षा कहा। उस समय के पाठ्यक्रम में कार्य-अनुभव को आधार नहीं बनाया गया था। इसके लिए सरकार ने लाखो रुपए खर्च कर कार्यक्रम शुरू किया। लेकिन समय बीतने के साथ यह शिक्षा प्रणाली कई कारणो से असफल हो गई। जिन में से कुछ महत्वपूर्ण कारण नीचे दिए जा रहे है—

(1) इस काम मे जो लोग लगे हुए थे उन्होंने बुनियादी शिक्षा के आधारभूत दर्शन को समझने की कोशिश नही की।

(2) यदि उन्होंने उसे कुछ हद तक समझा भी, तो सैद्धांतिक मतभेद के कारण उसे गलत अर्थ प्रदान कर दिए।

(3) बुनियादी शिक्षा की योजना को लागू करने के लिए बहुत बड़ी रकम की जरूरत थी जिसे वित्तीय स्रोत जुटा नहीं पाए।

(4) विभिन्न स्तरो के, लिए योग्य और सुप्रशिक्षित अध्यापकों एवं प्रशासकों की कमी थी।

(5) स्वाधीनता के तुरत बाद ब्रिटिश सस्कृति के पारपरिक अवशेषो के प्रभाव के कारण, भारतीय जन इस स्थिति में नही थे कि शिक्षा प्रणाली में क्रातिकारी परिवर्तनो को स्वीकार कर पाते।

(6) बुनियादी शिक्षा की योजना को लागू करने की जिम्मेवारी जिन लोगों पर थी, उन्होंने महसूस किया कि इस प्रक्रिया में पुनर्निवेशन की कमी थी।

ऐसे सधिकाल मे भारत सरकार ने डा० दौलतसिंह कोठारी की अध्यक्षता मे एक शिक्षा आयोग गठित किया जिसे शिक्षा के सभी स्तरो की प्रक्रियाओं को विस्तृत रूप से जाचने और बुराइयों व कमियो को दूर करने के उपाय सुझाने के लिए कहा गया। सन् 1966 में आयोग ने विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। इसके बाद केन्द्रीय सरकार के मार्गदर्शन में आध्र प्रदेश की सरकार ने आध्र प्रदेश के प्रसंग में शिक्षा आयोग की सिफारिशो को समझने के लिए अनेक शैक्षणिक समितियां बना दी। आयोग की सिफारिशों की समीक्षा और कार्यान्वियन के विभिन्न पक्षों पर विचार विमर्श के बाद अत मे आध्र प्रदेश सरकार ने शिक्षा आयोग की सिफारिशों को काफी हद तक स्वीकार कर लिया।

शिक्षा आयोग (1964-66) की सिफारिशो पर आंध्र प्रदेश की राज्य सरकार ने 10+2+3 प्रणाली को अपना लिया और सभी स्तरों पर पाठ्यचर्या में परिवर्तन किए। इस दिशा मे हुई प्रगति का अध्ययन करने के लिए अनेक मूल्याकन पद्धतिया बनाई गई। ईश्वरी भाई समिति की सिफारिशो पर आधारित कक्षा दस तक के पाठ्यक्रम मे और भी परिवर्तन किए गए। इस सिलसिले मे सरकार ने राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को आवश्यक कार्यवाही करने के अधिकार प्रदान कर दिए। राज्य शै० अ० और प्र० प० ने इस कार्य को एक चुनौती समझा और नए पाठ्यक्रम को विभिन्न चरणों में लाने के लिए प्रयत्न शुरू कर दिए। कक्षा 1 और 2 के नए पाठ्यक्रम को 1979-80 के शैक्षणिक सत्र में, और कक्षा 3 और 4 के नए पाठ्यक्रम को 1981-82 के शैक्षणिक सत्र के दौरान लागू कर दिया गया है। इस प्रकार कक्षा दस तक के नए पाठ्यक्रम को सन 1985 के अंत तक शुरू कर दिया जाएगा। पाठ्यक्रम को सशोधित करने के लिए, राज्य शै० अ० और प्र० प० ने कई उद्देश्य भी बनाए है।

पाठ्यक्रम संशोधन के उद्देश्य

आंध्र प्रदेश मे अपर प्राइमरी स्तर तक की पाठ्यचर्या को सशोधित कर लिया गया है जिसमें निम्नलिखित उद्देश्यो को ध्यान मे रखा गया है—

1. भावी नागरिकों के लिए अपेक्षित ऐसे नये ज्ञान, नई निपुणताओ, अभिवृत्तियों एवं मूल्यों का प्रावधान करना जो अब आवश्यक हो गए हैं क्योंकि—

   (क) हमने अपने समाज को समाजवादी प्रणाली में ढालने और जनतंत्रीय पद्धति पर सरकार को चलाने का सकल्प किया है।

   (ख) हमारे जैसे विकासशील देश में ज्ञान के विविध क्षेत्रो मे और सामाजिक चेतना के हर पहलू मे जो परिवर्तन हो रहे है उन्हें ध्यान मे रखते हुए भावी नागरिको को नई नई जिम्मेवारियां निभानी है और नई नई समस्याओं को झेलना है।

   (ग) बुनियादी और आवश्यक तत्वो की बलि किए बिना बच्चों पर पडने वाले बोधात्मक बोझ को कम करना है।

   (घ) व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के क्षेत्रों में समस्याओ को अधिक निष्पक्ष दृष्टि से समझने की और बौद्धिक तरीके से कार्य करने की जरूरत बढ़ती जा रही है।

   (ङ) औद्योगीकरण और नगरीकरण के दुष्परिणामों से बचने की जरूरत है। साथ ही समाज को आर्थिक उन्नति के लिए जल्दी से तैयार भी करना है।

2. छात्रो के शारीरिक और बौद्धिक विकास के लिए अनुभवो और अवसरो को प्रदान करना।

3. बच्चो मे यथेच्छ चरित्र का विकास करना।

4. बच्चो को कार्य जगत से परिचित कराना तथा उन्हे इस योग्य बनाना कि वे उन बुनियादी कुशलताओ को प्राप्त कर सके जो उन्हें बाद मे उत्पादक कार्यकर्ता या कार्मिक बनने में मदद देगी।

5 बच्चो को इस योग्य बनाना कि वे अभी और भविष्य में भी खुशहाल और स्वस्थ जीवन बिताते हुए समाज को भी कुछ दे सके।

6 बच्चों को इस योग्य बनाना कि वे सुविधा और आत्मविश्वास के साथ भविष्य में ऊची शिक्षा पा सके।

7 उनमें ऐसी भावना पैदा करना कि वे जिस परिवेश मे जनमे और पले बढ़े है उसे अपना समझे और उसको सुधारने की कोशिश करें।

ऊपर के उद्देश्यो और ईश्वर भाई पटेल समिति के सुझाए गए पाठ्यचर्या के ढाचे को ध्यान में रखते हुए, सरकार द्वारा बनाई गई विशेषज्ञ समितियों ने कक्षा 5 से 7 तक के लिए नए पाठ्यक्रम तैयार किए। राज्य

शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने भी पाठ्यचर्या समितियों से निम्नलिखित प्रासंगिक पहलुओं को यथासम्भव शामिल करने की प्रार्थना की—

(1) गांधी और अम्बेडकर की भूमिकाओं को रेखांकित करना तथा छुआछूत, जाति पांति के विचारों को निकाल देना।

(2) संचायक कार्यक्रम का महत्व।

(3) जनसंख्या शिक्षा।

(4) धूम्रपान, मतदान आदि के दुष्परिणाम।

इन उद्देश्यो और शिक्षाविदो द्वारा सुझाए गए विचारों पर राज्य शै. अ और प्र. प ने पाठ्यपुस्तके बनवाई और संशोधित पाठ्यक्रम को चरणबद्ध तरीके से लागू किया।

यथार्थ का ज्ञान रखने वाले अध्यापकों के रूप में संशोधित पाठ्यक्रम को लागू करते वक्त हमने नीचे लिखी समस्याओं को देखा—

(1) पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण के कारण, उचित समय पर लाखों छात्रों को पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध कराना सम्भव नही है।

(2) नए पाठ्यक्रम को प्रभावी तरीके से लागू करवाने के लिए, अध्यापको को शिक्षक सदर्शिकाए मिलनी चाहिए। लेकिन पैसों की कमी के कारण यह नही किया जा सका है।

(3) राज्य और जिला के स्तर के शिक्षा विभाग के कर्मचारी विभिन्न कक्षाओं के लिए नई पाठ्यचर्या के निर्माण और कार्यान्वियन में पूरी तरह से लगे हुए हैं इसलिए वे शिक्षकों के दलों को अभिविन्यास कार्यक्रम के द्वारा प्रशिक्षित करने का समय ही नही निकाल पाते।

(4) प्रशासकीय देरियों के कारण शिक्षा विभाग के कर्मचारी प्रभावी रूप से कार्यान्वियन नहीं कर पा रहे है।

(5) हालाकि सरकार ने पाठ्यक्रम में परिवर्तन कर दिए है लेकिन लोगो ने उसे गभीरता से नही लिया है फलस्वरूप शिक्षको का अभिविन्यास कार्यक्रम यो ही चल रहा है।

(6) नीचे के स्तर के अध्यापको और अध्यापक-शिक्षको के बीच सौहार्द की कमी है।

(7) संशोधित पाठ्यक्रम में कई नए पहलू है। लेकिन गांवो के स्कूलो को उन्हें प्रभावी ढग से पढाने के लिए दृश्य श्रव्य सामग्री नहीं दी गई है।

स्कूल शिक्षा का निदेशालय दसवी कक्षा तक के लिए नए पाठ्यक्रम को लागू करवाता आया है। अभी तक पाठ्यक्रम के परिवर्तनों को सात कक्षाओ मे ही लागू किया जा सका है। बाकी बची कक्षाओं के लिए नए पाठ्यक्रम के निर्माण के प्रयास चल रहे है। जहा तक हमारी जानकारी है, नए पाठ्यक्रम के प्रभाव को जाचने के लिए विभाग ने कोई स्थापित मूल्यांकन प्रणाली विकसित नहीं की है। चूकि मूल्याकन की कोई व्यवस्था नहीं है इसलिए पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन मे पुनर्निवेशन भी नही है। इसे हमारे शिक्षा विभाग का सामान्य कार्य समझा जाता है। किसी भी नई योजना की सफलता के लिए पुनर्निवेशन का कार्य भी प्रायोगिक कार्य के समातर चलना चाहिए, नहीं तो सब किए धरे पर पानी फिर जाता है। हमारी धारणा है कि सरकार या उसके शैक्षणिक निकायो को एक प्रभावी मूल्यांकन तन्त्र या तकनीक का विकास करना चाहिए और सभी नव परिवर्तनों वाले प्रयोगो को कार्यक्रम की उचित समीक्षा के लिए मूल्याकित किया जाना चाहिए। □

शिशु शिक्षा का सार्वजनीकरण

□ नमिता द्विवेदी

भारत के संविधान में कहा गया है कि चौदह वर्ष तक के बच्चों को अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का दायित्व सरकार का है। इसी बात पर बीस सूत्री कार्यक्रम मे भी जोर दिया गया है। केन्द्र और राज्य सरकारें अपने अपने स्तर पर इस उद्देश्य को 1990 ई० तक पा लेना चाहती है। सभी राज्यों में इस दिशा में कार्य हो रहा है। लेकिन लगता है कि अपेक्षित समय तक यह उद्देश्य प्राप्त नही किया जा सकेगा।

प्राइमरी शिक्षा के सार्वजनीकरण की राह में अनेक रोड़े हैं। इन कठिनाइयों को लेकर देश के शिक्षाविद एवं अधिकारी परेशान है। इस विषय पर प्रायः ही कार्य गोष्ठिया आयोजित की जाती है जिनमें अनेक जाने अनजाने मुद्दे उभर कर सामने आते है। सभा, सम्मेलनो में अनेक महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं। इस प्रकार की कई गोष्ठियों मे भाग लेकर मैंने जो ज्ञान अर्जित किया है उसे पाठकों के विचारोत्तेजन के लिए यहा प्रस्तुत करती हू।

स्कूलों में सुविधाओं का अभाव

गांवो के सभी स्कूलों में और शहरो तथा कस्बों के अधिकाश स्कूलों में सुविधाओं का नितात अभाव है। बच्चों को स्कूलो में लाने और वहा उनका मन रमाने के लिए यह जरूरी है कि स्कूलों मे आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध हों। ये सुविधाएं इस प्रकार की हो सकती हैं—

- छात्रों की सख्या के अनुरूप हर स्कूल में पर्याप्त कमरे होने चाहिए।
- हर स्कूल में लाइब्रेरी होनी चाहिए।
- हर स्कूल मे खेलने का मैदान होना चाहिए।
- स्कूल मे चार दीवारी का होना आवश्यक है।
- स्कूल के हर शिक्षक को मेज कुर्सी मिलनी चाहिए।
- बच्चों के लिए कुर्सियां या टाट पट्टी होनी चाहिए।
- हर कक्षा के लिए श्यामपट आवश्यक है।
- श्यामपट पर लिखने के लिए पर्याप्त संख्या मे चाक होने चाहिए।
- विविध विषयो को पढाने के लिए आवश्यक अपेक्षित शिक्षण साधन उपलब्ध होने चाहिए।
- बच्चों को खेलने के लिए खेल की सामग्री का होना भी अत्यत आवश्यक है।
- सभी स्कूलों मे पीने के पानी की व्यवस्था जरूरी है।
- सभी स्कूलों मे शौचालय की व्यवस्था होनी चाहिए।
- नियमित डाक्टरी परीक्षण की व्यवस्था भी निहायत जरूरी है।
- स्कूल के आसपास के पर्यावरण को स्वच्छ रखने की जिम्मेवारी समाज की है।

समाज के कमजोर वर्गो की सहायता

अनुसूचित जाति के बच्चों और गरीब लड़कियो को स्कूल में लाने और पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रेरित कर पाने के काम में बड़ी मुश्किलें हैं। ज्यादातर गरीब अभिभावक सोचते हैं कि आज की पढ़ाई उनकी

आर्थिक दशा नहीं सुधार सकती अतएव यह एक फालतू खर्च या काम है। दूसरी तरफ स्कूलों से बच्चों को निकाल कर वे उनकी मदद से चार पैसे कमा सकते हैं। गरीब और पिछड़े वर्ग के बच्चों को आकर्षित करने के लिए स्कूलों को निम्नलिखित काम करने होंगे—

- बच्चों को आकर्षित करने के लिए स्कूल में ड्रेस, किताबें-कापियां, नाश्ता आदि मुफ्त मिलने चाहिए।
- पढाई के साथ-साथ ऐसे काम भी बच्चों को सिखाए जाएं जिनमें उन्हे कोई हुनर सीखने को मिल सके।
- अभिभावको को प्रेरित किया जाना चाहिए कि वे पढ़ाई लिखाई के फायदों को समझ सकें।
- हर स्कूल में शिक्षक-अभिभावक सघ होना चाहिए जिनकी मदद से बच्चे स्कूल आना नहीं छोड़ेगे।
- जन सचार माध्यमो से इस बात का विस्तृत प्रचार किया जाना चाहिए कि स्कूल में बच्चों को दाखिल कराने से क्या फ़ायदे मिलते है।
- इलाके भर मे स्कूल के बारे में अच्छा प्रचार किया जाना चाहिए।
- सामुदायिक गायन, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि आयोजित कर उनमे हर बच्चे को भाग लेने का मौका देना चाहिए।
- शिक्षकों को गाव के लोगों से मिलते रहना चाहिए और बच्चों को स्कूल भेजने के लिए उन्हे समझाते रहना चाहिए।

अध्यापकों का दायित्व

स्कूलों मे बच्चों को लाने और उन्हे पढाई छोड देने से बचाने के लिए शिक्षक बहुत कुछ कर सकते हैं। वस्तुतः शिक्षक का व्यक्तित्व और व्यवहार इस दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षक की डांट फटकार बच्चो को स्कूल से भगा देती है। उनका प्रेमपूर्ण या मैत्री व्यवहार नन्हे शिशु के लिए आजीवन आदर्श प्रेरक का काम करता है। शिक्षकों के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं--

- शिक्षकों को अपने स्कूल के गाव के हर बच्चे की खबर रहनी चाहिए। कौन कब स्कूल जाने लायक हो जाएगा यह महत्वपूर्ण सूचना स्कूल के लिए बड़ी लाभदायक रहेगी।
- शिक्षको के व्यवहार मे प्रेम, सहानुभूति, मानवता आदि गुणो को झलकना चाहिए।
- शिक्षण-शिक्षार्जन प्रक्रिया मे शिक्षक को अपना सब कुछ लगा देना चाहिए।
- शिक्षको को हर तरह से आदर्शवादी होना चाहिए।
- प्राथमिक स्तर पर भी विषयों के हिसाब से शिक्षक होना चाहिए।
- गावों के स्कूलो में पढाने वाले शिक्षकों को विशेष भत्ता दिया जाना चाहिए। इससे ग्रामीण इलाको मे काम करने की प्रेरणा सभी शिक्षकों को मिल सकेगी।
- गाव के अभिभावकों से शिक्षक को घनिष्ठ सम्पर्क बनाए रखना चाहिए।
- स्कूलों में अध्यापक अभिभावक संघ की साप्ताहिक बैठकें होती रहनी चाहिए।
- अकेले अध्यापक वाले स्कूल नही होने चाहिए। हर स्कूल मे कम से कम तीन शिक्षक अवश्य होने चाहिए।
- शिक्षकों को अपने स्कूल के आसपास ही रहना चाहिए। मीलों दूर से रोज आने की प्रथा बंद की जानी चाहिए।
- स्कूल को केवल स्कूल न होकर गाव का सामुदायिक केन्द्र होना चाहिए।

बच्चों में स्कूल छोड़ देने की प्रवृत्ति

छोटी कक्षाओं मे ही पढ़ाई के बीच मे ही स्कूल जाना बंद कर देने की प्रवृत्ति बडी घातक है। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की राह में यह बहुत बड़ी रुकावट है। इस पर काबू पाना अति आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित सुझाव कारगर होंगे—

- वर्तमान परीक्षा प्रणाली, विशेष कर परीक्षा के आधार पर कक्षा उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण करने की परम्परा हानि पहुंचाने वाली है। इसकी जाँच की जानी चाहिए। आंध्र प्रदेश मे हुए प्रयोग की पृष्ठभूमि मे नई प्रणाली विकसित की जानी चाहिए।
- शिक्षको को रटंत विद्या के तरीके को त्यागना होगा। उसकी जगह दिलचस्प तरीके से शिक्षा प्रदान करना सीखना होगा।
- गृह कार्य दिए जाने की प्रथा समाप्त करनी होगी।
- स्कूल का वातावरण आकर्षक बनाना होगा।
- दंड दिऐ जाने की प्रथा समाप्त की जानी चाहिए।
- समुचित शिक्षण साधनों का विकास करना होगा।
- हर स्कूल में पुस्तक बैक बनाया जाना चाहिए।
- पाठ्यक्रमेतर गतिविधियों पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए।
- सरकार की ओर से ऐसे स्कूलों एव शिक्षकों को पुरस्कृत किया जाना चाहिए जो अपने बच्चों को रोक सकते है।
- स्कूल के समय को गांव की आवश्यकता के अनुसार लचीला होना चाहिए।
- स्कूल का पाठ्यक्रम गांव की आवश्यकताओं के हिसाब से बनाया जाना चाहिए।
- समाजोपयोगी उत्पादक कार्यों को पाठ्यक्रम मे रखा जाना चाहिए।

ऊपर मैंने कुछ सुझाव मात्र ही बताए हैं। वस्तुत: शिक्षक स्कूल और गांव के अनुरूप अपने लिए कार्यक्रम बना सकते है। वही कार्यक्रम अधिक व्यावहारिक सिद्ध होंगे जो सम्बद्ध अध्यापकों द्वारा बनाए जाते हैं। हर स्कूल का अपना अपना कार्यक्रम होगा। □□

शिशु व्यवहार : एक सर्वेक्षण

□ मंजु भंडारी

प्रस्तावना

आधुनिक मनोविज्ञान प्रत्यक्ष व्यवहार का अवलोकन तथा विश्लेषण करके कुछ प्रतिपत्तिया स्थापित करता है। विकासात्मक मनोवैज्ञानिको ने शिशु-व्यवहारों का विभिन्न परिस्थितियों मे अध्ययन किया तथा विभिन्न अवस्थाओं मे उनके बीच एक सातत्य तथा क्रमबद्धता देखने का प्रयास किया। इस कोटि के मनोवैज्ञानिकों मे हरलॉक, टॉमसन तथा क्रो आदि का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। वृद्धि तथा विकास (Growth & Development) के संबंध में इनकी उपपत्तियाँ बहुत कुछ ठीक उतरती है परन्तु पारिवारिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में शिशु-व्यवहार के बारे में कोई निश्चित रूपरेखा ठीक नहीं उतर पाती। प्रत्येक समुदाय की अपनी विशिष्ट संस्कृति होती है और शिशुओं का व्यवहार भी उस संस्कृति-विशेष से प्रभावित हुए बिना नही रहता। भारतीय समुदायों में इस प्रकार के सर्वेक्षण बहुत कम संख्या मे किये गए है। मनोवैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि हेतु इस प्रकार के सर्वेक्षणो की न केवल उपयोगिता है, अपितु अत्यधिक आवश्यकता है।

शिशु-व्यवहार का अध्ययन करने की प्रचलित विधियां हैं –प्रयोगशाला विधि, सहभागी अवलोकन विधि (participatory observation) तथा शिशुओं के संरक्षकों द्वारा प्रदर्शित व्यवहार-अंक विधि। प्रस्तुत सर्वेक्षण हेतु अन्तिम विधि का प्रयोग किया गया है।

अवलोक्य परिस्थितियों का संचयन

लेखिका ने शिशु-विद्यालयों में खेलते हुए बच्चों की क्रियाओं का, परिवारों में विभिन्न परिस्थितियों में शिशुओं के कार्यकलापो का तथा बाजार, सडक मेले, बगीचे एवं सिनेमा घरों में बालकों के व्यवहार प्रतिमानो का अवलोकन किया तथा उसके आधार पर अध्ययन हेतु निम्नांकित छः परिस्थितियो का चयन किया—

(1) नीद से जागने की परिस्थिति।

(2) भोजन करने के समय की परिस्थिति।

(३) सामाजिक अवसर पर माता-पिता के साथ किसी मित्र के यहां मिलने जाने की परिस्थिति।

(4) पार्क मे छुट्टी बिताने हेतु माता-पिता के साथ जाने की परिस्थिति।

(5) सिनेमा हाल मे सिनेमा देखते समय की परिस्थिति।

(6) जब नीद आ रही हो उस समय की परिस्थिति।

उक्त परिस्थितियो में विभिन्न शिशुओं द्वारा प्रदर्शित विभिन्न प्रकार के व्यवहारों की सूची अंकित कर ली गई।

उपकरण निर्माण

शिशु-व्यवहार का सर्वेक्षण करने हेतु उक्त छः परिस्थितियो से सम्बन्धित एक व्यवहार मापक रेटिंग-स्केल तैयार किया गया जिसमें उपेक्षित उत्तरों के रूप मे सामान्यतः पाए जाने वाले (अवलोकित) शिशु-व्यवहारों की सूची कथनों के रूप में दी गई तथा उत्तरदाता द्वारा प्रत्येक कथन को पांच बिन्दुओं के आधार पर अपना उत्तर अंकित करने के लिए

कहा गया। उक्त पांच बिन्दु इस प्रकार थे—

सर्वदा

बहुधा

कभी-कभी

बहुत कम बार

कभी नही

न्यादर्श

उक्त सर्वेक्षण ऐसे 60 परिवारो में किया गया, जोकि मध्यम वर्गीय परिवार कहलाते है तथा जिन परिवारो में 6 महीने से 2 साल तक के शिशु मौजूद थे। ये सभी परिवार एकल परिवार थे, जहा पर पिता किसी सरकारी अथवा अर्द्धसरकारी नौकरी मे थे। इन परिवारो की माताएं पढी-लिखी थीं परन्तु कोई भी नौकरी करने वाली नहीं थी। सभी महिलाएं घर-गृहस्थी देखने वाली महिलाओ की कोटि में आती थीं। किसी भी परिवार मे तीन से अधिक बच्चे नही थे तथा सबसे छोटे बालक की आयु छ. महीने से कम नही थी। यह सर्वेक्षण जयपुर नगर की एक समुन्नत बस्ती में किया गया। न्यादर्श के लिये कोई योजना-बद्ध विधि नही अपनाई गई। न्यादर्श में चयनित माताओं को ऊपर वर्णित रेटिंग स्केल भरने के लिए निवेदन किया गया इस प्रकार सर्वेक्षित आकड़ों का आधार वे साठ उत्तर पत्रावलियाँ है, जिन्हे शिशु-व्यवहार के बारे मे उनकी माताओं द्वारा भरा गया है।

परिणामों का अंकन

परिणामों का अंकन दो रूपों में किया गया है: प्रथम तो प्रत्येक क्रम-निर्धारण-बिन्दु के अन्तर्गत प्राप्त आवृत्ति के रूप मे तथा दूसरा भारित समंक (weighted score) के रूप मे। भारित समक प्राप्त करने के लिए निम्नांकित विधि अपनाई गई।

सकारात्मक परिस्थितियां

1 (अ), 5 (अ), 3 (अ), 3 (ब), 3 (स), 4 (अ),

सर्वदा	— 4
बहुधा	— 3
कभी-कभी	— 2
बहुत कम बार	— 1
कभी नही	— 0

नकारात्मक परिस्थितियां

1 (ब), 2 (स), 4 (ब), 5 (अ), 5 (ब), 5 (स), 6 (अ), 6 (ब)

सर्वदा	— 0
बहुधा	— 1
कभी-कभी	— 2
बहुत कम बार	— 3
कभी नही	— 4

भारित समक कुल परिस्थितियों में अधिकतम 240 हो सकते है तथा न्यूनतम शून्य हो सकता है। इसी प्रकार अधिकतम, मध्यमान 60 हो सकता है तथा न्यूनतम 0। प्रत्येक व्यवहार में न्यूनतम मध्यमान 0 हो सकता है तथा अधिकतम 4 हो सकता है। प्रत्येक व्यवहार के अन्तर्गत 2 मध्यमान सामान्य व्यवहार प्रकट करता है। 3 तथा 4 मध्यमान सुखद तथा स्वस्थ व्यवहार प्रकट करता है और 2 से कम मध्यमान न्यून स्वस्थ तथा अस्वस्थ व्यवहार का द्योतक है। प्रस्तुत सर्वेक्षण में शिशु-व्यवहार को सर्वेक्षित समूह विशेष के सन्दर्भ में समझना चाहिए, किसी व्यक्तिगत परिवार अथवा शिशु के सन्दर्भ में नहीं।

परिणाम

प्रस्तुत सारणी मे विभिन्न परिस्थितियों में शिशुओं के विभिन्न व्यवहारों का संख्यात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

सारिणी

शिशु-व्यवहार से संबद्ध माताओं द्वारा निर्दिष्ट तथ्य

परिस्थिति जन्य शिशु-व्यवहार	सर्वदा	बहुधा	कभी-कभी	बहुत कम बार	कभी नही	योग	कुल भारित समंक	मध्य-मान
1. नींद से जागने की परिस्थिति में								
(अ) वह सदैव मुस्कराते हुए उठता है।	—	—	6		45	60	24	0 4
(ब) वह जागते ही आपको अथवा घर के अन्य वयस्क को पुकारता है।	15	9	30	6	0	60	87	1.45
2 भोजन करने की परिस्थिति में								
(अ) वह निश्चित समय पर ही खाना पसन्द करता है।	27	3	07	6	24	60	123	2.05
(ब) उसे जो कुछ दिया जाए खा लेता है।	0	6	15	30	9	60	78	1.3
(स) बच्चा खाने के लिए मनुहार चाहता है।	6	0	12	9	33	60	180	3.0
3. सामाजिक अवसर पर माता-पिता के साथ किसी मित्र के यहां जाने की परिस्थिति में								
(अ) वह अनजान व्यक्तियों से मिलने में संकोच करता है।	15	0	9	6	30	60	34	1.4
(ब) जब नाश्ता आ जाता है तब वह आप के आदेश का इन्तजार करता है।	9	9	15	12	15	60	105	1.75
(स) वह मेजबान को नमस्कार करता है।	24	0	12	0	24	60	120	2.00
4. पार्क में जाने की परिस्थिति में								
(अ) पार्क में खेलते समय वह अन्य बच्चो के साथ घुल मिल जाता है।	24	6	9	9	18	60	141	2 35
(ब) सिर्फ माता-पिता के साथ ही घूमना पसंद करता है।	12	12	15	9	12	60	117	1.95
5. सिनेमा हाल की परिस्थिति में								
(अ) अंधेरे में डरता व चिल्लाता है।	3	6	27	9	15	60	147	2.45
(ब) सो जाता है।	15	6	9	15	15	60	129	2.15
(स) दूध पीने में या कुछ खाने में व्यस्त रहता है।	30	6	15	6	3	60	66	1.1
6. नींद के समय की परिस्थिति में								
(अ) जब भी उसे नींद आने लगती है वह चिल्लाने लगता है।	15	0	15	6	24	60	144	2.4
(ब) नींद की खुमारी के लिए वह अपनी पीठ पर थपकियां चाहता है।	48	9	3	—	—	60	27	0.45
							1445	24.083

परिणामों की विवेचना

सारणी मे दिये गए परिणामो को देखने से पता चलता है कि भारतीय मध्यम वर्गीय परिवारो के अधिकांश व छोटे बच्चे प्राय मुस्कराते हुए नही उठते। क्योकि जाग कर उठते समय जब वे अपने आपको अकेला पाते है तो असुरक्षा की भावना से संत्रस्त हो जाते है तथा रोकर, चिल्लाकर अथवा मा को पुकार कर वे अपने अकेलेपन की असुरक्षा को मिटाना चाहते है। उक्त सर्वेक्षण के परिणाम यह बतलाते है कि भारतीय मध्यमवर्गीय परिवार के अधिकाश बच्चे सोकर उठते समय इस असुरक्षा से सत्रस्त पाए जाते हैं।

भोजन के बारे में अधिकांश मध्यमवर्गीय परिवारों में शिशुओं का व्यवहार सामान्य पाया जाता है। मध्यम परिवारों में निश्चित समय पर भोजन देने की आदतों के बारे मे कोई निश्चित प्रवृत्ति दिखाई नही देती। लगभग आधे परिवारों के बच्चे निश्चित समय पर खाना तथा नाश्ता करना पसन्द करते है तथा लगभग 50% परिवारो मे खाने व नाश्ते के निश्चित समय निर्धारित नही है। मध्यम परिवारों के शिशु हमेशा जो कुछ उनको खाने को दिया जाए, वह हमेशा ही खाना पसन्द नहीं करते है। खाने के बारे में उनकी पसन्दगियां व नापसन्दगियां भी रहती है। कुछेक परिवारो को छोड़कर अधिकाश परिवारों मे बच्चों को खाना खिलाने के लिये माताओं को विशेष परेशानी नही उठानी पड़ती। कुल मिलाकर भोजन के बारे में मध्यमवर्गीय परिवारों मे शिशु का व्यवहार स्वस्थ तथा सुखद कहा जा सकता है।

सामाजिक व्यवहार के बारे में मध्यमवर्गीय शिशुओं का व्यवहार कम संतोषप्रद कहा जा सकता है। अपरिचित लोगो से मिलने मे प्राय: बच्चे संकोच करते हैं। परन्तु घर पर आने वाले मेहमानो के साथ वे जल्दी घुलमिल जाते है तथा परिवार मे सिखाए गए "नमस्कार" "धन्यवाद" आदि शिष्टाचारी शब्दों का व्यवहार सहज रूप से कर लेते है। मेहमानों के सामने रखे जाने वाले नाश्ते के समय आधे से अधिक बच्चे अपने ऊपर नियन्त्रण नहीं रख पाते। माता-पिता द्वारा सिखाए गए नियत्रित आचरण का पालन लगभग आधे परिवारों में ही सम्भव हो पाता है। बालकों की यह आयु नियत्रित व्यवहार के लिये उपयुक्त नहीं मानी जाती। इसके अलावा मध्यमवर्गीय परिवारो मे शिक्षित महिलाए दमनात्मक विधि द्वारा बालकों का व्यवहार नियन्त्रित करना शायद पसन्द नही करती।

माता-पिता के साथ घूमने जाते समय पैदल चलने वाले छोटे बच्चे प्राय: माता-पिता के साथ-साथ चलना चाहते हैं तथा बड़ी आयु के शिशु स्वतन्त्र रूप से आगे भागना पसन्द करते है अथवा पीछे रहना पसन्द करते है। तथा माता-पिता के अनुशासन से हट कर स्वतन्त्र रूप से चलने का अभ्यास करना चाहते है। (यह बात माताओं के साथ साक्षात्कार द्वारा मालूम हुई) बहुत छोटे शिशु उनसे बडे बच्चो के साथ खेलने में व्यस्त हो जाते है परन्तु समान वय के बच्चे एक दूसरे के साथ घुलने-मिलने मे थोड़ा समय लगाते है। बालकों के पारस्परिक मेल-जोल के सम्बन्ध मे मध्यम परिवार के बच्चों का व्यवहार सामान्य रूप से स्वस्थ कहा जा सकता हैं।

सिनेमा घरों मे 50% बच्चे या तो सो जाते हैं या भयानक दृश्यों को देखकर तथा अंधेरे में अपने आपको असुरक्षित पाकर डरते अथवा चिल्लाते हैं। कुछ अन्य बच्चे ऐसे भी होते हैं जिनको माताएं कुछ खाने-पीने की चीजें देकर अथवा दूध पिलाकर चुप रखती है। सिनेमा हॉल में बच्चों के व्यवहार के बारे में कोई निश्चित प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती।

जब बच्चो को नींद आने लगती है, तब अधिकांश बच्चे थपथपी देकर सुलाए जाते है। कुछ बच्चे सोने से पूर्व चिल्लाते तथा रोते हैं तथा बेचैनी का अनुभव करते है। अधिकांश माताएं उनके इस व्यवहार से अभ्यस्त हो जाती हैं तथा जब-जब बच्चों को बेचैन पाती हैं, उन्हें सुलाने का प्रयास करती हैं।

बच्चों के जीवन को सुखदायी बनाने के लिये माताएं क्या करें ?

उपर्युक्त सर्वेक्षण मे एक बात निश्चित रूप से उभर कर सामने आती है, कि इस आयु के बच्चे असुरक्षा की भावना से संत्रस्त रहते है। यदि हम उन्हे इस असुरक्षा से मुक्त करना चाहें तो उसका प्रथम उपाय है कि बालक को सोते हुए अकेला न छोड़ा जाए। जब बालक के जागने का समय हो उस समय कोई वयस्क व्यक्ति उसके सामने अवश्य होना चाहिये, जो उसके जागने के समय मुस्करा कर उसका स्वागत कर सके। बच्चे दिन भर क्रियाशील रहते है अत: थक जाते है तथा अनेक बार उनके लिये विश्राम आवश्यक होता है, जो नीद के माध्यम से उन्हे प्राप्त होता है। जिस प्रकार बालक को पोषण के निश्चित समय निर्धारित किये जाते है उसी प्रकार उनके विश्राम के समय भी निश्चित किये जा सकते है। शरीर पर मां के हाथों की थपथपी बालकों की सुरक्षा भावना को दृढ़ करती है तथा उसे यह आभास दिलाती है कि उनके पास कोई है। यह एक स्वाभाविक क्रिया है तथा माताओ के लिये इसका उपयोग हानिकारक नही है ।

कुछ व्यस्त माताएं हर समय बच्चे को खाने में जुटाए रखने का प्रयास करती हैं परन्तु इससे बच्चों की पाचन-शक्ति पर बुरा असर पड़ता है तथा उनकी आदतें खराब होती है। वैसे तो सामान्यतया बच्चो की भोजन सम्बन्धी वस्तुओ के बारे मे पसन्दगी तथा नापसन्दगी होती है। वे प्रत्येक वस्तु सहज रूप से खाना पसन्द नही करते तथापि संतुलित एवं उपयुक्त पोषण की दृष्टि से बच्चो को विविध प्रकार की वस्तुएं खाने के लिये देनी चाहिये तथा उनकी पसन्दगी का व्यापक विकास करना चाहिये। बच्चो को मीठी वस्तुए पसन्द होती है। उनकी इस इच्छा की तृप्ति हेतु शर्करायुक्त वस्तु के साथ साथ मीठे फल तथा रस प्रयुक्त किये जा सकते है।

मेहमानो के सामने भोजन सम्बन्धी शिष्टाचार की आदत सतत प्रयास के द्वारा डालनी पड़ती है। इस आदत के डालने में अभ्यनुकूलित वातावरण, अनुकूलित उद्दीपन व अनुक्रिया एवं वांछनीय व्यवहार के लिये उपयुक्त पुरस्कार, यथा समय प्रतिपुष्टि तथा पुनर्बलन आदि प्रयुक्तियों का समय-समय पर उपयोग करना पड़ता है। इस कार्य के लिये माताओं के प्रशिक्षण की भी आवश्यकता अनुभव की जाती है।

सामाजिकता का व्यवहार प्रत्येक बालक के व्यक्तित्व मे भिन्न-भिन्न रूप से विकसित होता है। पारिवारिक वातावरण भी इसमे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। तथा सतत अभ्यास तथा समुचित वातावरण सामाजिकता को बढाने मे सहायक हो सकते है। □□

प्राइमरी स्तर के बच्चों में सृजनात्मक विकास

□ डॉ० वाचस्पति द्विवेदी

सबसे पहले सृजन का स्वरूप तथा सृजन प्रक्रिया जानना आवश्यक है। सामान्यत. हम कह सकते है कि प्रकृति मे जो सरल वस्तु विद्यमान है उनका सृजन प्रक्रिया द्वारा नये स्वरूप मे सयोजन ही सृजन है। कुर्सी, जिस पर हम बैठते है, वृक्ष मे नहीं है जहां से कुर्सी बनाने की लकड़ी ली गयी है अपितु कुर्सी उस व्यक्ति की मौलिक सृजन शक्ति का परिणाम है जिसके मस्तिष्क मे कुर्सी के ढाचे की कल्पना उपजी तथा जिसने उसका आकार तैयार किया। इस प्रकार विश्व की समस्त सृजित वस्तु व्यक्ति के मौलिक चितन के परिणाम है जिन्होंने सामान्य पदार्थो का अपनी मौलिक चिंतन शक्ति के द्वारा सयोजन कर नया स्वरूप प्रदान किया।

सृजन की बहुत सी परिभाषाएं विद्वानो ने दी हैं। सभी मे कुछ अतर होते हुए भी मूलतत्व समान है। इससे सभी सहमत हैं कि सृजनात्मकता एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मौलिक स्वरूप उत्पन्न होते है या अभिव्यक्त होते है। सभी सृजन करने वाले मौलिक चितकों में तथ्यों का सग्रह, विचार (Ideas), प्रत्यय (Concepts) सिद्धात (Principles) तथा बिम्ब (Images) होना आवश्यक है। वह व्यवहृत वस्तुओ मे अपनी मौलिकता के अनुसार नये संबंध जोड़कर मौलिक स्वरूप प्रदान कर देता है। यह प्रक्रिया सृजनात्मकता है तथा समन्वित वस्तु मौलिक चितन का परिणाम है।

फेबन (Fabun) ने सृजन प्रक्रिया की पूर्णता के क्रमबद्ध चरणों का वर्णन किया है। व्यक्ति मे कुछ अपनी अलग मौलिक सृजन की इच्छा होनी चाहिये। इस इच्छा से *व्यक्ति प्रेरणा ग्रहण* करता है। दूसरा चरण है - उसकी तैयारी। इस क्रम में वह अध्ययन के द्वारा अथवा अनुभव द्वारा तद्विषयक सूचनाओं का संग्रह करता है, उन्हे परखता है, प्रयोग करता है तथा उनसे प्राप्त निष्कर्षो पर विचार करता है। इस विश्लेषण के द्वारा अपरिचित वस्तु एव उनके गुण भी परिचित बन जाते है।

सृजन एक समग्र स्वरूप है, किन्तु सुविधा के लिये इसके कुछ अवयव अथवा पूर्व वर्णित चरणो मे विश्लेषण किया जा सकता है। इसके अवयव है—विचारात्मक प्रवाह, लचीलापन अद्वितीयता तथा विविधता एवं विस्तार।

विचारात्मक प्रवाह का तात्पर्य है—वह शक्ति जिसमे विचारों के प्रवाह की निरन्तरता बनी रहती है। उसमे सम्भावनाए, उनके परिणाम तथा अवयवो की निरतरता बनाये रखने की क्षमता होनी चाहिये। यह एक सृजन का अत्यावश्यक अग है। दूसरा अवयव है—लचीलापन। इसके अनुसार सृजन करने वाले व्यक्ति मे समस्या के समाधान के लिये विभिन्न प्रक्रियाओं के प्रयोग की क्षमता होनी चाहिये। उसमें यह इच्छा भी होनी चाहिये कि वह समाधान के लिए दिशा परिवर्तन कर सके तथा प्राप्त सूचनाओं मे आवश्यक सशोधन कर सके। अद्वितीयता का तात्पर्य है—वह शक्ति जिसमे मौलिक, अपरिचित परिणाम उत्पन्न हो सकें। विविधता तथा विस्तार का तात्पर्य

—सृजनकर्ता में वस्तु को विस्तृत करने तथा निश्चित करने की शक्ति होनी चाहिये।

सृजन की विशिष्ट वातावरण मे ही बढ़ने की सभावनाएं अधिक रहती है। सृजन के लिये सोचने तथा तदनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता आवश्यक है ऐसे भी उदाहरण है कि दबावयुक्त वातावरण मे भी सृजन हुए है। किन्तु जहां व्यक्ति को अधिक स्वतन्त्रता है वहा वह अपने विचारों को अधिक विविधता से प्रयोग कर निष्कर्ष निकाल सकता है।

सभी व्यक्तियों मे कुछ न कुछ मौलिकता की मात्रा रहती है। विभिन्न वातावरण में उसकी प्रतिक्रिया से उसकी मौलिकशक्ति का पता चलता है। उचित प्रशिक्षण एव शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की वह शक्ति सृजन के रूप मे प्रकट होती है। ऐसा भी देखा गया है कि बिना प्रशिक्षण एव शिक्षा के भी व्यक्ति के द्वारा मौलिक अविष्कार हुए है। किन्तु उनके सबंध में भी इतना तो निश्चित है कि उन्हे भी किसी न किसी रूप में कही से अनौपचारिक (Informal) प्रशिक्षण अवश्य मिला होगा। यह भी निश्चित है कि प्रशिक्षण अथवा शिक्षा के द्वारा सृजन की संभावनाए बढ़ जाती है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आलोक मे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि बालको मे न्यूनाधिक सृजनशक्ति की मात्रा रहती ही है यदि उनकी क्षमता एवं अवस्था के अनुसार उचित वातावरण की सृष्टि की जाय तो सृजन की संभावनाएं बढ सकती है। सबसे पहले आवश्यकता है विचारों के सग्रह की। इस क्रम में परिचित वस्तुओं के संबंध में पूर्ण विवरण एवं ज्ञान दिये जायें। कृषि और उनके उपकरण, घर में काम आने वाली सामान्य चीजों के निर्मा णकी प्रक्रिया से उन्हें अवगत कराया जाय। उन्हें ऐसे साहित्य से परिचित कराया जाय जो इस दृष्टि से उपादेय हों। अत: आवश्यकता है सबसे पहले ऐसी सामान्य पुस्तकों की जिनमे सहज सरल ढग से उनकी परिचित भाषा में विचारो का विश्लेषण किया गया हो। यह भी आवश्यक है कि सृजन के प्रति रुचि उत्पन्न करने के लिए तथा चिंतन के लिए वर्ग पहेली शब्द रचना, अधूरे चित्र को पूर्ण करना, स्थान परिवर्तन करना, कुछ दिये गये अश पर कहानी बनाना, चित्रों का शीर्षक देना, दिये गये नमूने के आधार पर नया नमूना तैयार करना आदि ऐसे प्रयोग है जो बालकों में सृजन की क्षमता उत्पन्न करने में सहायक हो सकते हैं। यदि बच्चों के सामने इस प्रकार बाल साहित्य उपलब्ध होता हे तो वे उसके आधार पर अपनी सृजन क्षमता बढ़ा सकते है।

विचार सग्रह के बाद सृजन का दूसरा आवश्यक अंग है लचीलापन। अर्थात् प्राप्त निष्कर्षों का इच्छानुसार परिवर्तन कर नई सभावनाए ढूढना। निश्चित लोक से हटकर नये-नये संदर्भों मे प्रयोग कर नये निष्कर्ष निकालने की क्षमता उत्पन्न करने के लिये उन्हे स्वतत्र वातावरण प्रदान किया जाना चाहिये। विभिन्न प्रयोगो के माध्यम से वे कुछ मौलिक चितन करने मे समर्थ होते हैं। बालको मे सृजन के विकास के लिये किये गये कुछ प्रयोगों के द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए है—

(1) बालकों मे सृजन की शक्ति नैसर्गिक रूप से प्राप्त है।

(2) नियमित प्रशिक्षण एव अभ्यास से उनकी इस शक्ति को बढाया जा सकता है।

(3) अवसर दिये जाने पर बच्चे सृजनात्मक शक्ति का प्रदर्शन करते हैं।

(4) स्वतंत्र वातावरण में वे सृजन कार्य में अधिक तत्परता दिखाते हैं।

प्रकृति ने बालकों मे अद्भुत क्षमताएं दी हैं। क्रियाशीलता उनका सहज एवं स्वाभाविक गुण है। प्रत्येक वस्तु को वे अपने अनुभव से जानना चाहते है। उनमे समस्त पदार्थो के बारे मे जिज्ञासा है। उनके प्रश्नों का उत्तर सहज सम्भाव्य नहीं होता। बैठकर केवल लिखना पढ़ना, उनकी प्रकृति एवं रुचि के अनुकूल नही है। इस प्रकार के अध्ययन से उनकी

स्वाभाविक क्षमता तो अवरुद्ध होती ही है उनकेवि कास की गति भी नष्ट हो जाती है। न तो उन्हें आत्माभिव्यक्ति का अवसर मिलता है और न मौलिक चिंतन का ही। इसके विपरीत यदि उन्हें साधनों के माध्यम से अनुभव एव ज्ञान की प्रेरणा दी जाती है जिन्हे वे सक्रिय होकर उपयोग मे लाते है तो उसमे वे अधिक रुचि लेते है। रेलगाडी या हवाई जहाज के माडल को देखकर वे उसके कार्य प्रणाली को जानने में अधिक उत्सुकता दिखाते है उसको चलाने मे उन्हे विशेष आनन्द की अनुभूति होती है और वे अपनी प्रतिभा से कुछ ऐसा संयोजन करने में भी सफल हाते है जिससे वह् कार्यप्रणाली सरल, सुगम बन सकती है। यदि छोटे-छोटे पुर्जों को जोड़कर वे इन वस्तुओं को बनाने में सफल हो जाते है तो उनके आनन्द का ठिकाना नहीं रहता। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि सैद्धान्तिक ज्ञान की अपेक्षा व्यवहार के द्वारा उनमें अध्ययन के प्रति अधिक रुचि उत्पन्न की जा सकती है।

जहां तक बालको मे सृजनात्मक शक्ति के विकास का प्रश्न है हमे उनकी उपर्युक्त सामान्य विशेषताओं को ध्यान मे रखना होगा। सृजन प्रक्रिया के मूल मे अभिरुचि, जिज्ञासा एव पूर्व ज्ञान का विशेष महत्व है। साथ ही साथ शिक्षक, विद्यालय भी प्रमुख भूमिका निभाते है। शिक्षक जितना ही व्यवहार कुशल होगा, जितना ही उसमे प्रेरणा की शक्ति होगी उतना ही वह बालको को अभिप्रेरित कर सकेगा। विद्यालय की साधन सम्पन्नता की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नही। विद्यालय केवल बालको के विश्रामालय नही हैं जहां उन्हे चार छ· घटे बांधकर रखा जाय जिससे उनके माता-पिता को फुर्सत मिल सके। यह तो वह केन्द्र है जहा उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है तथा जीवन के मूल्यो की पहचान करायी जाती है। अतः प्राइमरी विद्यालय को आधुनिक मनोवैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न बनाये जाने की आवश्यकता है। □□

समाचार और विचार

कम खर्च वाले शिक्षण-साधन

सोलन स्थित राज्य शिक्षा संस्थान में 27 से 29 जुलाई 1983 तक एक सम्मेलन जिला स्तर पर कम खर्च वाले शिक्षण-साधनो के विकास पर किया गया जिसमें इस आदर्श योजना के उद्देश्यों, विधियों, शिक्षण-साधनों के निर्माण की सामग्री, और खड/जिला स्तर पर प्रशिक्षित किए जाने वाले अध्यापको पर विचार किया गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत पाच वर्षों के दौरान दस जिलो के बीस हजार अध्यापको को प्रशिक्षित किया जाएगा। इस योजना पर लगभग 35 लाख रुपयों का खर्च आएगा।

इस सम्मेलन मे विचार-विमर्श का मुख्य मुद्दा था—मूल स्तर पर कम खर्च वाले शिक्षण-साधनो के कार्यक्रम का कार्यान्वयन। सम्मेलन के उद्देश्य थे—(क) कक्षा मे कम खर्च वाले शिक्षण-साधनों के निर्माण और इस्तेमाल की भावना को मन मे बैठाना, (ख) शिक्षार्जन को परिवेश के साथ जोडना, (ग) शिक्षण-शिक्षार्जन प्रक्रिया मे बच्चो को शामिल करना, और (घ) इन साधनों को खंड और ग्राम स्तर के स्कूलो तक पहुंचाने के तरीके ढूंढना।

स्वाधीनता-संग्राम पर नया फोलियो

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् भारत के स्वाधीनता सग्राम के इतिहास को दर्शाने वाले एक बहुरंगी प्रकाशन की तैयारी मे लगी है। यह प्रकाशन एक फोलियो के रूप में अलबम के आकार का होगा। इसमे आजादी की लड़ाई की महत्वपूर्ण बातो को चित्रों और आधिकारिक दस्तावेजो के माध्यम से प्रस्तुत किया जाएगा।

हालांकि यह महत्वपूर्ण प्रकाशन हाई स्कूलो और हायर सेकडरी स्कूलों के शिक्षकों और छात्रो को ध्यान में रखकर तैयार किया जा रहा है, फिर भी इसका इस्तेमाल छोटी कक्षाओ के अध्यापक भी कर सकेंगे। पुस्तक के चित्र छोटे बच्चो को आजादी के सघर्ष की कथा को रोचक ढंग से समझा देंगे। अन्य कक्षाओ के बच्चे इसका इस्तेमाल परियोजना कार्यों मे कर सकेंगे। आजकल पाठ्यक्रमों मे इस प्रकार के कार्यकलापो पर बडा जोर रहता है। इस पुस्तक से सबसे ज्यादा लाभ हायर सेकडरी स्कूलो के छात्रो को होगा।

इस प्रकाशन मे भारत के स्वाधीनता संघर्ष के सभी पक्षों और स्थितियो को लिया जा रहा है जिसके लिए नेहरू स्मारक संग्रहालय व पुस्तकालय, गाधी दर्शन सग्रहालय, नेताजी अनुसधान संस्थान, नेशनल लाइब्रेरी जैसी सस्थाओं ने भरपूर सामग्री प्रदान की है। प्रारम्भ मे यह फोलियो अग्रेजी मे प्रकाशित होगा जिसके तुरत बाद हिन्दी सस्करण भी निकाला जाएगा।

साओड़ा बच्चों के लिए प्रवेशिका

देश की अनुसूचित जनजातियों में शिक्षा का प्रचार करने के लिए शिक्षाशास्त्री पूरी तरह लगे हुए है। इसी दिशा में 'सओडा भाषा की प्रवेशिका' प्रकाशित की गई है। प्रकाशन का प्रायोगिक सस्करण अभी अभी निकला है। यह कक्षा एक के साओडा बच्चों के लिए है। साओडा भाषा व उड़िया लिपि मे लिखी गई यह प्रवेशिका भाषा और गणित के पाठो को प्रस्तुत करती है। इसे राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति शिक्षा एकक ने तैयार किया है। प्रारम्भ में इस प्रवेशिका को उड़ीसा के पासलखीमुडी और गुरुपुर जिलों के साठ-साठ स्कूलों मे जाचा परखा जाएगा। प्रायोगिक संस्करण को एक वर्ष तक जाच कर नया संशोधित सस्करण प्रकाशित किया जाएगा।

इसके बाद कक्षा दो की प्रवेशिका दो भागो मे छापी जाएगी और प्रायोगिक स्कूलो के शिक्षको को इस प्रवेशिका के इस्तेमाल मे अभिविन्यस्त किया जाएगा।

कम्प्यूटरों द्वारा शिक्षा

विज्ञान विभाग के लिए 'शिक्षा में माइक्रोकम्प्यूटरो की सामयिक स्थिति' पर एक भाषण का आयोजन किया गया। भाषणकर्ता थे श्री माइकेल अस्तो जो कम्प्यूटर-आधृत शिक्षार्जन के राष्ट्रीय समन्वयक है। उन्होने कहा कि भविष्य मे उन देशो के बीच साफ्टवेयर का सुविधाजनक आदान-प्रदान हो सकेगा जिनमें भाषा की रुकावटें है—

इसी तरह का एक भाषण राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान भाषण माला के अतर्गत भी आयोजित किया गया जिसका विषय था, 'कम्प्यूटरो की सहायता से शिक्षार्जन : सम्भावनाओं का आकलन'। इसके भाषणकर्ता थे डेवॉन (यू० के०) के श्री डेविड स्क्वायर्स जो शिक्षा में कम्प्यूटरो की भूमिका के सलाहकार है। भाषण के बाद श्रोताओं के प्रश्नों के उत्तर देते हुए उन्होने कहा।

आदर्श स्थिति तो यह होगी कि कुछ चुने हुए भारतीय परिस्थितियो वाले परियोजना स्कूलो मे कम्प्यूटरो की सहायता से शिक्षार्जन की व्यवस्था प्रायोगिक तौर पर की जाए क्योकि विशाल स्तर पर इसे शुरू करने का मतलब सारे पाठ्यक्रम मे उलट फेर करना होगा। 'कम्प्यूटरो की सहायता से शिक्षार्जन' का सारा जोर इस बात पर है कि छात्रो को कम्प्यूटरो के इस्तेमाल के आयामो और शक्ति से परिचित कराया जाए साथ ही इसकी सीमाओं से भी अवगत कराया जाए।

इसके पहले छात्रो को फास्ट प्रोग्रामिंग पढ़ाया गया। 'कम्प्यूटरो की सहायता से शिक्षार्जन' खर्च को प्रभावित करता है, इस बात को रेखाकित करते हुए श्री स्क्वायर्स ने कहा कि सस्ते माइक्रो कम्प्यूटरों के कारण सेकंडरी और प्राइमरी स्कूलो मे 'कम्प्यूटरो की सहायता से शिक्षार्जन' को लाना सम्भव हो गया है। "जो तुम किसी और तरह से नही कर सकते, उसे कम्प्यूटर द्वारा कर सकते हो।"

स्त्रियों की स्थिति

'पाठ्यक्रम के माध्यम से स्त्रियो की स्थिति— प्राथमिक शिक्षको के लिए 'सहायिका' नामक पुस्तक बनकर तैयार हो गई है जिसे कई गोष्ठियों व सम्मेलनो में हुए विचार विमर्शों के परिणाम स्वरूप यह स्वरूप मिल सका है। इन गोष्ठियो एवं सम्मेलनो मे विषय विशेषज्ञ, स्कूल अध्यापक, अध्यापक-शिक्षक, पाठ्यक्रम-निर्माता, पाठ्यपुस्तक-लेखक, शैक्षिक, प्रशासक और राष्ट्रीय शिक्षा सस्थान के ससाधन सम्पन्न व्यक्ति शामिल होकर मूल्यो की खोज करते रहे है। यह पुस्तक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् के स्त्री शिक्षा एकक ने प्रायोजित की है। इसमे स्त्रियो की स्थिति के समानुपातिक मूल्यो को दिखाया गया है। पहचाने गए मूल्यो के साथ विषयो के उद्देश्यो को भी इसमे लिया गया है।

इस सहायक पुस्तक का लक्ष्य लड़को व लड़कियों मे अकाट्य प्रवृत्तियां उपजाने के लिए मूल्यो को दर्शाना है। इसमें भाषाओ (हिन्दी, अंग्रेजी, सस्कृत और उर्दू), सामाजिक विज्ञानों (भूगोल, नागरिक शास्त्र और इतिहास), गणित एवं विज्ञानो की प्रोजेक्ट डिजाइनों को प्राथमिक शिक्षकों के लिए दिया गया है।

संक्षिप्त समाचार

पंजाब

पजाब विश्वविद्यालय की खेल-कूद समिति ने सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों (जिनमें लड़के-लड़कियां दोनों ही सम्मिलित हैं) को छात्रवृत्तियां देने का फैसला किया है। अपने बजट में 1983-84 के लिए 40,000 रुपयों का प्रावधान किया है। उम्मीद है कि यह रकम बढ़ाकर 80,000 रुपयों तक

कर दी जाएगी । छात्रवृत्तियां दस महीनों के लिए अर्थात् जुलाई से अप्रैल तक की अवधि के लिए दी जाएगीं।

हरियाणा

हरियाणा सरकार ने राज्य के 884 स्कूलों का दर्जा बढा दिया है। शैक्षणिक सत्र के दौरान 3750 नए शिक्षकों को नियुक्त किया गया है।

आंध्र प्रदेश

राज्य के एक-अध्यापक वाले स्कूलों को दो-अध्यापकों वाले स्कूलों में बदलने के विचार से सोलह हजार शिक्षकों की नई जगहों को आंध्र प्रदेश सरकार ने मंजूरी दे दी है। सरकारी प्रैस विज्ञप्ति के अनुसार राज्य सरकार ने 18 राजकीय डिग्री कालेजों एवं 28 राजकीय जूनियर कालेजों के वर्तमान शैक्षणिक सत्र में खोले जाने की मंजूरी दे दी है।

हिमाचल प्रदेश

हिमाचल प्रदेश सरकार ने प्राथमिक स्तर पर पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण का फैसला किया है। सोलन स्थित राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा बनाई गई शिक्षण सामग्री को अब इस्तेमाल किया जाएगा। यह सामग्री यूनिसेफ परियोजना 'प्राथमिक शिक्षा पाठ्यक्रम नवीकरण' के अंतर्गत बनी है। राज्य सरकार ने आंध्र प्रदेश सरकार से कुछ तेलगु शिक्षक एक वर्ष के लिए राजकीय स्कूलों में तेलगु पढ़ाने के लिए मांगे हैं।

स्कूल साइंस

स्कूल साइंस, विज्ञान-शिक्षा की एक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका है जिसे राष्ट्रीय *शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् प्रकाशित करती है।*

हमारे विद्यालयों मे विज्ञान-शिक्षा, इसकी समस्याए, सम्भावनाएं और शिक्षक तथा छात्र के व्यक्तिगत अनुभवो पर परिचर्चा आदि के लिए स्कूल साइस एक मुक्त मंच है।

शैक्षिक पक्ष के अतिरिक्त इस पत्रिका में प्रेरणा देने वाले रूपक और विज्ञान समाचार होते है जो शिक्षकों और जिज्ञासु छात्रो को विज्ञान की सीमाओ से परिचित कराते हैं। स्कूल साइस द्वारा अन्य नियमित रूपकों (फीचर्स) मे प्रसिद्ध वैज्ञानिको की जीवनी प्रस्तुत की गई है। अब तक इस क्रम मे जुलियन हक्सले, टी० आर० शेशाद्री, अमीदिओ एवोगाद्रो, जक मोनाड, लेव लेन्डो और वार्नरहसनवर्ग को लिया जा चुका है।

हम अनुभवी शिक्षको और उनके छात्रो को स्कूल साइस में उनकी समस्याओं तथा उपलब्धियो आदि के विषय मे लेख भेजने के लिए आमन्त्रित करते हैं। इसमे छात्रों के लिए एक भाग सुरक्षित है जिसके माध्यम से वे देश के अन्य भागो के शिक्षको और छात्रों को सम्बोधित कर सकते है।

आप यह देखेंगे कि स्कूल साइंस शिक्षक और छात्र, संरक्षक और आश्रित सभी के लिए है। यह रुचिकर ढंग से सीखने और सोचने के लिए प्रकाशित की जाती है। इसमे आपका सक्रिय सहयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण एव वाछनीय है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016 के लिए श्री सी० रामाचंद्रन सचिव द्वारा प्रकाशित तथा आरसी प्रेस, नई दिल्ली मे मुद्रित। प्रधान सम्पादक : राजेन्द्र पाल सिंह